UGC CARE LISTED
(Arts & Humanities)

ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882

DP-23

वैदिक वाग् ज्योतिः
Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed/Peer-Reviewed
Research Journal on Vedic Studies

(UGC Approved Half Yearly Journal)

Vol./वर्ष-12 January-June 2024 No./ अंक 22

सम्पादक

प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री

अध्यक्षचर, वेदविभाग, गुरुकुलकांगड़ी (समविश्वविद्यालय)

कुलपति

उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय

हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

(NAAC द्वारा 'ए' ग्रेड प्रदत्त एवं यू.जी.सी. द्वारा पूर्णतः अनुदानित समविश्वविद्यालय)

Gurukula Kangri (Deemed to be University)

Haridwar-249 404 (Uttarakhand) India

http://www.gkv.ac.in

ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882
(UGC CARE listed half yearly journal)
January-June 2024

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Refereed/Peer-Reviewed Research Journal on Vedic Studies

Patrons

Dr. Satyapal Singh, Chancellor, GK(DU), Haridwar
Prof. Somadev Shatanshu,
Vice-Chancellor, GK(DU), Haridwar

Chief Editor

Prof. Dinesh Chandra Shastri
Ex. Head, Dept. of Veda, GK(DU),
Haridwar-249 404 (U.K.) India
Email - dineshcshastri@gmail.com
Tel : +91-9410192541
Vice-Chancellor,
Uttarakhand Sanskrit University,
Haridwar-249402

Advisory Board

Prof. Nicholas Kazanas 'Padm Shri', Athens
Prof. Balram Singh, USA
Dr. Rajendra Ayurvedalankar, Haridwar
Prof. Maan Singh, Roorkee
Prof. Shashi Tiwari, 'President Awardee', Delhi
Prof. Shashi Prabha Kumar, Delhi
Prof. Lekhram Sharma, Amritsar
Prof. Ishwar Bharadwaj, Haridwar
Prof. Bheem Singh, Kurukshetra
Prof. Upendra Kumar Tripathi, Varanasi
Prof. Vedpal (Meerut)
Prof. Renubala, Amritsar
Prof. M.R. Verma, Haridwar
Prof. Pankaj Madan, Haridwar
Prof. L.P. Purohit, Haridwar
Prof. Sunil Kumar, Haridwar
Prof. R.G. Murli Krishna, Delhi
Prof. Madhukeshwar Bhatt, Delhi
Prof. T. Ganesh Pandit, Delhi
Dr. Aparna Dhir, USA
Dr. Anju Kumari
Dr. Udham Singh

Distinguished Advisors

Acharya Balkrishna,
V.C., Patanjali University
Prof. Shrinivasa Varakhedi,
V.C., C.S.U., Delhi
Prof. Prahlad Joshi,
V.C., KBVSASU, Assam
Prof. M.M. Pathak,
V.C., SLBSRSU, New Delhi
Prof. C.G. Vijayakumar,
V.C., MPSVV, Ujjain

Departmental Advisory Board

Prof. Prabhat Kumar

Reviewers

Acharya Balveer, Rohtak
Prof. Ashutosh Gupta, Shrinagar

Finance Advisor

Prof. Devendra Gupta, F.O.
Sh. Naveen Kumar

Business Manager

Department of Veda & Librarian
GKV, Haridwar - 249 404
(Uttarakhand) India

Subscription

Rs. 1200.00 Annual, US $ 120,
Single Copy: Rs. 600.00
Rs. 5000.00 Five Year's
Payment Mode :
D.D. in favour of Registrar,
G.K.V. Haridwar (U.K.)

Published by

Prof. Sunil Kumar
Registrar, GKV, Haridwar - 249 404
(Uttarakhand) India

Printed at

D.V. Printers
97-U.B., Jawhar Nager, Delhi-110007

UGC CARE listed (Arts & Humanities)
ISSN : 2277-4351
RNI : UTTMUL 2012/53882

वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed/Peer-Reviewed Research Journal on Vedic Studies

(UGC Approved Half Yearly Journal)

Vol./वर्ष-12 **January–June 2024** **No./अंक 22**

सम्पादक
प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री
अध्यक्षचर, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय)
कुलपति
उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार
(NAAC द्वारा 'ए' ग्रेड प्रदत्त एवं यू.जी.सी. द्वारा पूर्णतः अनुदानित समविश्वविद्यालय)
Gurukula Kangri Deemed to be University
Haridwar-249 404 (Uttarakhand) India
http://www.gkv.ac.in

वैदिक वाक्

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः।

बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि॥ -ऋ. 3/53/१८

पदार्थः- (बलम्) पराक्रमम् (धेहि) (तनूषु) शरीरेषु (नः) अस्मान् (बलम्) (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद (अनळुत्सु) गवादिषु (नः) अस्माकम् (बलम्) (तोकाय) ह्रस्वाय बालकाय (तनयाय) प्राप्तकौमारयौवनाऽवस्थाय (जीवसे) जीवितुम् (त्वम्) (हि) यतः (बलदाः) (असि)॥

अन्वयः- हे इन्द्र! हि यतस्त्वं बलदा असि तस्मान्नस्तनूषु बलं धेहि। नोऽनळुत्सु बलं धेहि नो जीवसे तोकाय तनयाय बलं धेहि॥

भावार्थः- हे आचार्य! भवान् यस्माच्छरीरात्मबलवानस्ति तस्मादस्मासु पूर्णं शरीरात्मबलं निधेहि॥

पदार्थः- हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले! (हि) जिससे आप (बलदाः) बल के देने वाले (असि) हैं इससे (नः) हम लोगों के (तनूषु) शरीरों में (बलम्) बल को (धेहि) धारण करो और (नः) हम लोगों को (अनळुत्सु) गौ आदिकों में (बलम्) बल को धारण करो, हम लोगों के (जीवसे) जीवन और (तोकाय) छोटे बालक तथा (तनयाय) कौमार अवस्था को प्राप्त पुरुष के लिये (बलम्) पराक्रम को धारण करो॥

भावार्थः- हे आचार्य्य! आप जिससे कि शरीर और आत्मा के बल से युक्त हो इससे हम लोगों में पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को धारण करो॥

द.भा.

वाग्ज्योतिर्निंतरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्

नाना-तर्कैर्वितर्कैर्विबुध-जनमतैर्भूषयल्लेखमालाः
शास्त्राणां दर्शनानां निगमपथजुषां ब्राह्मणानां बहूनाम्।
वाक्यैः सिद्धान्तनिष्ठैः समम् उपनिषदां तत्त्वमाधातुकामम्
वाग्ज्योतिर्वैदिकं तत् प्रसरतु भुवने ज्ञानविज्ञानदं नः॥1॥ (स्रग्धरा)

विद्वद्व्यूहविचारसारसहितं यत् प्राच्यविद्याऽऽश्रितम्
अज्ञानाऽन्धतमोनिवारणपरं सद्-बुद्धिशुद्धि-प्रदम्।
शोधोद्योगपरायणा बुधजना जानन्तु तद् दीपकम्
वाग्ज्योतिर्निंतरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्॥2॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

—प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः

अनुक्रम

वैदिक वाक् *iii*

सम्पादकीय (Editorial) *vii*
महर्षि दयानन्द की 200वीं जयन्ती पर

हिन्दी संभाग

01. **महर्षि दयानन्द का पुनर्मूल्यांकन** 01
- DG ज्ञानचन्द्र

02. **दयानन्द दर्शन की वर्तमान में उपादेयता** 14
–विनय कुमार

03. **राष्ट्रोन्नति हेतु वेद के राष्ट्रीय गीत की उपादेयता** 21
–डॉ. निरुपमा त्रिपाठी

04. **सांस्कृतिक भारत की दृष्टि से पुराण साहित्य का महत्व** 32
–रवि कुमार दूबे

05. **सुख का मूल सनातन धर्म** 41
–डॉ. स्वामी परमार्थदेव

06. **महाभारत में अपरिग्रह का स्वरूप** 49
–सुमित सुहाग

07. **गोदान महादान** –डॉ. विवेक शर्मा 57

08. **व्याकरण की परिभाषाओं की सामाजिक सन्दर्भों में उपयोगिता** 66
–प्रो. सत्यपाल सिंह

09. **अनुसंधान के अपरिहार्य तत्त्व** 74
(भारतीय ज्ञानपरम्परा के आलोक में)
–उर्वशी कुहाड़, –अजय पाल
–सुरेन्द्र कुमार, –रमेश चंद्र कुहाड़

10. **वाक्यप्रमाण-स्वरूपनिरूपण** 88
-डॉ. रामचन्द्र मेघवाल

संस्कृत-संभागः

11. **पाणिनीयधातुपाठेऽपठितानां काशकृत्स्नीयधातुपाठे समुपलब्धानां धातूनां वैदिकप्रयोगाः** 94
- प्रो. दिनेशचन्द्रः शास्त्री
- सुमति

12. **संस्कृतव्याकरणेऽनुबन्धोपयोगिता** 104
-संजय कुमार तिवारी
-प्रो.सत्यपाल सिंहः

13. **अथर्ववेदे अध्यात्मविद्या** 110
-प्रोफेसर अरुणिमा रानी

14. **वाक्सूक्तमनुसृत्य वाक्तत्त्वस्य विवेचनम्** 118
-डॉ. रवीन्द्रकुमारः

English Section

15. **Plant/Ayurveda in beauty contemplation of devotional hymn of Durgāmānasapūjā** **126**
- Dr. Amit Kumar Chauhan

16. **The supremacy of Śabdapramāṇa in Advaita - Some arguments** **136**
- Vishnupriya Srinivasan

17. **Building Ethical and Sustainable Artificial Intelligence through Vedic Science and Engineering** **145**
- Dr. Suyash Bhardwaj

18. **Relevance of Sixteen Hindu Samskār in Shaping Human Values** **165**
- Dr. Udham Singh
- Mr. Narottam Kumar

19. **Evidence of Sāmaveda found from Excavation at Tarighat, Chhattisgarh** **178**
- Dr. Atula Kumar Pradhan

✦✦✦

महर्षि दयानन्द की 200वीं जयन्ती पर-

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द ने जब अपना प्रचार कार्य प्रारम्भ किया, तब भारत-भूमि नाना प्रकार के मत-मतान्तरों से विप्लावित हुई अपने प्राचीन आर्यत्व को भूल चुकी थी। वर्णव्यवस्था जन्म से मानी जाने के कारण, सभी वर्ण अपने कर्मों की उपेक्षा कर रहे थे। बालविवाह, छुआछूत (अस्पृश्यता), सती प्रथा, स्त्री-शिक्षा-विरोध आदि अनेकों कुरीतियाँ धर्म का चोला पहन कर पनप रही थीं। सप्त समुद्रों की यात्रा करने वाले भारतीय सार्थवाहों की सन्तान समुद्र-यात्रा में धर्म के भ्रष्ट होने की कल्पना किए बैठी थी। संकीर्णता जनता के हृदयों पर अधिकार जमाये थी, वेद तो केवल पूजा की वस्तु रह गये थे, जिन्हें पढ़ना मनुष्य की शक्ति के बाहर की वस्तु समझा जाने लगा था। कुछ एक सुधारक-प्रवृत्ति के लोगों ने देश की इस शोचनीय अवस्था को देखकर सुधार करने का प्रयत्न किया था, पर गहरी निद्रा में पड़े इस देश को तो कड़ी चोट की आवश्यकता थी, जो दयानन्द जैसा साहसी पुरुष ही दे सकता था।

वेद को आधारशिला बना कर इस उत्साही ऋषि ने जो क्रान्ति का गान भारतीय-जनता को सुनाया, उसे सुन सभी विस्मयान्वित हो उठे, क्योंकि अंग्रेजी भाषा तथा यूरोपीय शिक्षा से नितान्त अनभिज्ञ हिन्दू संन्यासी समाज-सुधार-विषयक इतने क्रान्तिकारी विचार रख सकता है, इसकी कल्पना भी किसी ने नहीं की थी।

ऋषि दयानन्द में दृढ़निश्चयात्मक बुद्धि थी। उन्हें वेदाध्ययन के क्षेत्र में तथा समाजसुधार के क्षेत्र में अनेक विरोधी शक्तियों का सामना करना पड़ा, पर वह तनिक भी नहीं घबराए। वस्तुतः वह उन साधारण अवसर-वादी मनुष्यों में से नहीं थे, जो बहते पानी के साथ बह जाते हैं और जैसे तैसे, परिस्थितियों के समक्ष घुटने टेक देते हैं। उन्होंने तो परिस्थितियों को बदलना सीखा था, बहते पानी की धारा को मोड़कर उससे सूखती धरती को अभिसिञ्चित करने की ठानी थी। हिमालय की हिमाच्छादित घाटियों के कष्ट उन्हें अपने मार्ग से हटा न सके, ओखीमठ की महन्त पदवी का प्रलोभन, उन्हें अपने ध्येय से विरत न कर सका। जो ठाना था, उसे कार्य रूप में परिणत करके ही उन्होंने चैन लिया। वैदिक मत के प्रचार तथा अवैदिक मतों के खण्डन की भावना जो प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द ने उन्हें चिनगारी के रूप में दी थी, वह प्रज्वलित अग्नि का रूप धारण करके न केवल भ्रान्त विचार-धाराओं के विनाश में ही तत्पर हुई, प्रत्युत सदियों से विलुप्तप्राय वैदिक दीप-शिखा को भी उसने पुनः प्रदीप्त कर दिया। आर्यसमाज की स्थापना द्वारा उन्होंने अपने कार्य को स्थाई रूप दिया ताकि उनका प्रारम्भ किया कार्य निरन्तर बढ़ता रहे।

इसमें सन्देह नहीं कि ऋषि-संचालित आर्यसमाज ने ऋषि के संकल्प को पूर्ण करने में पर्याप्त प्रयत्न किया तथा सफलता भी प्राप्त की। आर्यसमाज के प्रचार द्वारा स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार इत्यादि कार्य इतने लोकप्रिय हो गये कि आज भारत की प्रत्येक विचार-शील संस्था ने इन्हें अपना बना लिया है। सनातन धर्मी भाई जो स्त्रियों को शिक्षा देना पाप समझते थे, आज कन्या-पाठशालाओं तथा महिला कालेजों की स्थापना पर गर्व करते हैं। छुआछूत अब समाप्त प्राय है तथा बाल-विवाह अन्तिम सांस ले रहा है।

इससे क्या समझा जाय कि आर्यसमाज अपना कार्य पूरा कर चुका है? नहीं। समाज-सुधार के साथ-साथ आर्यसमाज की स्थापना का अन्य मुख्य उद्देश्य देश में फैली वेदविषयक भ्रान्तियों को दूर करना था और इस क्षेत्र में अभी पर्याप्त कार्य करना शेष है। ऋषि दयानन्द का ऋग्वेद भाष्य इसी दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास था। उनकी इच्छा ऐसे वैदिक विद्यालयों की स्थापना करने की थी जिनके माध्यम से ग्रन्थों का उच्च-कोटि का अनुसन्धानात्मक अध्ययन सम्भव हो। काशी में ऐसे विद्यालय को स्थापित करने की चेष्टा की गई, पर कारणवश सफल न हो पाई।

आज महर्षि के अनुयायियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस क्षेत्र में ऋषि के संकल्पों को पूरा करें। दयानन्दकृत ऋग्वेदभाष्य की महत्ता में सन्देह नहीं किया जा सकता। पर, यह कथन भी अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि आधुनिक वेदार्थ-पद्धतियों में इसे यथोचित सम्मान नहीं मिल पाया। माधव, सायण आदि के भाष्य विश्वविद्यालयों में अधिक प्रचलित हैं तथा पाश्चात्य-विद्वानों द्वारा प्रसारित शैलियां ही अधिक वैज्ञानिक मानी जा रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज के धुरन्धर विद्वान् वेद के कार्य में जुटकर दयानन्द-शैली की वैज्ञानिकता को सिद्ध करें। कहा जाता है कि ऋग्वेद-भाष्य में दयानन्द की निजी कल्पना तथा चातुर्य का मनमाना प्रदर्शन है। उनकी शैली नियमबद्ध न होकर स्वच्छन्द है, अतः समालोचनात्मक दृष्टि से ग्राह्य नहीं। वस्तुतः ऐसा ही आरोप सायण आदि के भाष्यों पर भी तथा आधुनिक पाश्चात्य-विद्वानों के भाष्य पर भी लगाया जा सकता है, जो प्राक्कल्पित पक्षपातों को लेकर ही वेदार्थ बतलाते हैं। विद्वानों का कर्तव्य है कि वह समय की चेतावनी को समझकर इस कार्य को हाथ में लें और महर्षि की 200वीं जयन्ती पर अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करें। महर्षि दयानन्द पर अनुसन्धान करते हुए विद्वज्जनों के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वे हमेशा यह स्मरण रखें कि महर्षि को जो बात तर्कहीन या मानव के हितार्थ नहीं लगती थी तो वे इसके निराकरणार्थ सन्नद्ध रहते थे। इसका कारण यह है कि वे ऋषियों की ऊहा से अभिभूत थे तथा साधना से उन्हें ऋषित्व प्राप्त था।

- प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (1-13) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

महर्षि दयानन्द का पुनर्मूल्यांकन

- DG ज्ञानचन्द्र *

[आश्चर्यजनक भौतिक आविष्कार और विचित्रतम उपयोगी साधनों का कुशल प्रदायक आज का विज्ञान-मन, प्राण और अध्यात्म के क्षेत्र में रंचमात्र भी कुछ नहीं दे पाया है। परन्तु यदि मानवता के भयानक और प्रतिपल गहराते अन्धकार व विभ्रम से बचना है तो वेद की ओर आना ही पड़ेगा और तब महर्षि दयान्द को ठीक परिप्रेक्ष्य में समझना अनिवार्य होगा। इसी दृष्टि से यह निबन्ध 2009 में DG ज्ञानचन्द्र (श्री अरविन्द चेतना समाज, दिल्ली) ने लिखा था। जिसे महर्षि दयानन्द की 200वीं जयन्ती पर 'वैदिक वाग् ज्योति' के सुधी पाठकों के लिए हम प्रकाशित कर रहे हैं। ये लेखक के अपने विचार हैं। इस लेख में झंकृत विचार सरणि से सभी सहमत हों यह आवश्यक नहीं है। न ही लेखक ने ऐसा आग्रह किया है पुनरपि, यह लेख हमको विचारोत्तेजक लगता है -सम्पादक]

क्या इस सृष्टि का कोई प्राप्तव्य या गन्तव्य है? सृजन सार्थक है या अर्थहीन गति, प्रगति और विनाश ही इसका स्वरूप, स्वभाव और मूल प्रकृति है? समस्त दर्शन, सारे धर्म, समस्त विज्ञान, नैतिक परम्पराएँ और सामाजिक चिन्तन इन मूलभूत प्रश्नों पर ही उन्मेषित होते और अपने स्वकीय, निजी तरीके से अपना विकास करते हैं और अपनी तार्किकता के चूड़ान्त पर पहुँचते हैं। संभवतः सारी ही विचार-सरणियाँ किसी न किसी दृष्टिकोण और लक्ष्यान्त के विचार से सही हैं। पर इन सब भिन्न सही-दृष्टियों और भिन्न चूड़ान्तों और विभिन्न व प्रायः परस्पर विरोधी विचार सरणियों में एक आधारभूत सूत्रता और एक सर्वसमावेशी पराकाष्ठा को प्राप्त किए बिना मानवीय विभ्रम, ऊहापोह, अनिश्चय, अनिर्णय और अत्यन्त पीड़ार्त्त बिखराव से छुटकारा नहीं मिल सकता। यह बिखराव, यह अनिश्चय, यह अनिर्णय और त्रासदायक विभ्रम ही मानव के असंख्य दोषों, रुग्णताओं और अपराध वृत्तियों का कारण है। यद्यपि मनोवैज्ञानिक इस धृष्ट परिस्थिति का समाधान, उपचार तो नहीं कर पाए हैं परन्तु इस बिखराव और इस अनैश्चित्य को समझ तो रहे ही हैं।

महर्षि दयानन्द ने इस स्थिति को अपने गणित से बखूबी समझ लिया था। स्व-चिन्ता से पूर्णतः मुक्त यह संन्यासी सिवाय भारतीय जन और मूलतः विश्व जन

* श्री अरविन्द चेतना समाज, दिल्ली।

के अनवरुद्ध विकास, अविरल उत्थान व उच्चतम परिपूर्णता के हेतु ही श्वास-प्रश्वास लेता रहा। भोजन करता या सोता, चलता या बोलता, पढ़ता या लिखता-समस्त दैनिक-दैहिक, सामाजिक, आध्यात्मिक क्रिया-कृत्यों में दत्त हृदय होकर भी मानव को देवत्व की दिशाओं में ले जाने की चिन्तना में ही उसकी प्रत्येक कोशिका व्यस्त रहती थी।

महामानव महर्षि दयानन्द ने मानवीय समस्याओं के बृहत् पुंज और अमाप्य समूह के समाधान का ज्योतिर्मय पन्थ वेदों में प्राप्त किया। "वेद मानवता को ईश्वरीय-प्रज्ञा दिशा की ओर उन्मुख करने वाले प्रथमतम दिव्य स्रोत हैं"- यह महर्षि को अनुभूति हो गई थी। यह अनुभूति किसी प्रकार का सामयिक या सहसा उठा आवेग-संवेग नहीं था। अंधश्रद्धा और आग्रही साम्प्रदायिक वृत्ति का जड़ता पूर्ण प्रभाव भी नहीं था, बल्कि इसके पृष्ठ में अनेक ऐतिहासिक, घटना प्रधान व चिन्तन और मनन से उत्पन्न उद्घाटनों के प्रभाव थे। साथ ही सहस्त्रों ग्रंथों का अध्ययन, अनेकों वार्तालाप, वाद-संवाद के साथ स्वामी विरजानन्द जैसे विज्ञानी महापुरुष के पास अध्ययन और तपस्या से उत्पन्न परिणाम था। निर्मल और अपूर्वाग्रहग्रस्त मेधा के द्वारा महर्षि वेद के सम्बन्ध में अपने विश्वविख्यात मत पर पहुंचे थे कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"।

महर्षि की वेद-आस्था के विवेचन विश्लेषण और प्रमाण-पुष्टि में बीसियों तर्क और युक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। उनके जीवन व कर्तृत्व में उदाहरण भरे पड़े हैं। परन्तु यहाँ हम अन्य वेदानुसंधानी, वेदार्थ-उद्घाटक विश्व-विश्रुत योगिराज श्री अरविन्द के कुछ संदर्भ वचन उद्धृत करेंगे। महर्षि दयानन्द के जीवन, व्यक्तित्त्व व कर्तृत्व पर आज तक कोई इतना उत्तम, मर्मग्राही और तत्त्वपूर्ण नहीं लिख पाया है जितना श्री अरविन्द ने लिखा है। "दयानन्द" तथा ''दयानन्द एवं वेद'' नामक दो लेखों की एक-एक पंक्ति अपने आप में ही एक ज्योतिर्मयता से संपृक्त है। एक-एक अक्षर अपने चुनाव व चयन में अस्थानान्तरणीय हैं वे लिखते हैं-

"जब मैं दयानन्द के विषय में अपनी भावना को अपने सामने चित्रित करने का प्रयत्न करता हूँ और मुझ पर जो उनकी छाप पड़ी है, उसे ठीक-ठीक रूप देने की चेष्टा करता हूँ तो प्रारंभ में ही इस पुरुष के, इसके जीवन और कार्य के दो महान्, सुस्पष्ट और विलक्षण गुण मेरे सामने आ खड़े होते हैं। वे गुण इसे अपने समकालीन व्यक्तित्वों और साथियों से बिल्कुल अनूठा ही प्रदर्शित करते हैं।"

"महर्षि दयानन्द की कार्यशैली बिल्कुल भिन्न थी। वे ऐसे मानव थे जिन्होंने अपने आपको वस्तुओं की अनिर्धारित आत्मा में आकार-रहित तौर पर नहीं उँडेला था बल्कि वस्तुओं और मनुष्यों पर अपने आकृति की ऐसी अमिट छाप लगा दी थी जैसे पीतल में मुहर लगा दी गई हो। वे इस प्रकार के पुरुष थे जिनके साकार कार्य उनके आत्मिक शरीर से उत्पन्न हुए उनकी सन्तान ही से थे-सुन्दर और बलिष्ठ तथा प्राण से परिपूर्ण, अपने जन्मदाता पिता की हू-बहू-अक्षत छवि। वे ऐसे व्यक्ति थे जो निश्चित तौर पर और साफ-साफ जानते थे कि उन्हें क्या कार्य करने के लिए यहाँ पर भेजा गया है।"

एक विश्वविख्यात साहित्यिक महज्जन, एक उच्चतर स्तर का नवसिद्धान्त प्रस्तोता दार्शनिक और समग्रयोग-पूर्णयोग नामक सर्वसमावेशी तथा पुनः सबसे अलग, विलक्षण योग साधना का जनक तथा भाविष्यक विज्ञानाधारित अतिमानसिक सिद्धान्त का उद्घाटक, श्री अरविन्द जैसा योगी-दार्शनिक और सिद्ध जब इस प्रकार के मार्मिक और मर्मस्पर्शी उत्तम वचन लिखता है तो आप उनके लेखन की उपेक्षा कर ही नहीं सकते, उनकी शाब्दिक अभिव्यक्ति को हल्के रूप से नहीं ले सकते। ऊपर का सम्पूर्ण संदर्भ-लेख अपने आप में कसा हुआ और पूर्णतः निर्दोष आप्त वचन है। परन्तु यह वाक्य पुनः पूर्णतः ध्यान से देखें- "वे ऐसे व्यक्ति थे जो निश्चित तौर पर और साफ साफ जानते थे कि उन्हें क्या कार्य करने के लिए यहाँ पर भेजा गया है"। "भेजा गया है" में महर्षि दयानन्द को स्पष्ट ही एक ईशदूत, एक पैगम्बर, एक मसीहा और एक जगदुद्धारक प्रतिनिधि के रूप में श्री अरविन्द स्वीकारते हैं। यह बहुत अनुपम साथ ही महत्त्वपूर्ण बात है। यही बात दयानन्द के बेमिसाल अनुदाहरणीय व्यक्ति, चरित्र और कर्तृत्व की पुष्ट और प्रबल साक्षी है। इसे इस वाक्य से श्री अरविन्द ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है। "महर्षि के गुण उन्हें अपने समकालीन व्यक्तित्त्वों और साथियों से बिल्कुल अनूठा ही प्रदर्शित करते हैं"। यह महर्षि की निरुपमता और विलक्षणता ध्यान में दी जानी चाहिए।

आखिर किस कार्य के लिए वे महदात्मा सिद्ध पुरुष पृथ्वी पर आए थे, या श्री अरविन्द के शब्दों में भेजे गए थे। वह कार्य बहुसंख्यक लोग समझ नहीं पा रहे हैं। उस दिव्य और महान् ईशमन्तव्य को ग्रहण कर पाने से लोग वंचित रह जाते हैं। वह कार्य न तो पूजा का खण्डन है जो महर्षि के कार्यक्रम का मुख्य व स्पष्ट अंग था। परन्तु केन्द्रीय लक्ष्य से भिन्न है। वह कार्य अवतारवाद का विरोध भी नहीं था। जबकि यह भी महान् प्रबुद्ध व मेधावी महर्षि के शास्त्रार्थों व प्रवचनों का अनुपेक्षणीय हिस्सा है। वह कार्य अछूतोद्धार, महिला जागृति, विधवा विवाह प्रचलन, बाल विवाह की समाप्ति तथा अवैदिक धर्म-सम्प्रदायों का विरोध भी नहीं है। जबकि ये सब

लक्ष्य महर्षि की कार्य प्रणाली और चिन्तन व परिश्रम का प्रमुख अंग थे। ये समस्त कार्य व लक्ष्य महर्षि के केन्द्रीय तत्त्व के सहायक तत्त्व और सम्पूरक तत्त्व होते हुए भी केन्द्रीय तत्त्व नहीं थे। जिस कार्य के लिए वे इस धराधाम पर आए थे या भेजे गए थे वह केन्द्रीय कार्य था और है इसी धराधाम पर पुनः सत्युग, सत्य के और ऋत के कृत युग की स्थापना का बीज वपन करना। मानव को धीरे-धीरे कलियुगी वृत्ति-प्रवृत्ति से मुक्त करते हुए क्रमशः द्वापर मनोवृत्ति से उठाते हुए सत्युगीन शुद्ध-सत्त्व और पारमात्मिक सद्वृत्ति तक ले जाने के लिए सत्युग के बीज को वपित करने के लिए कलिकाल की कठोर-धरा को चीरकर उपज योग्य बनाना और उसमें वह उत्तम स्वर्णिम-स्वर्गिक बीज बो देना। विरोध, खण्डन और शास्त्रार्थों के द्वारा उन्होंने क्षेत्र को तैयार किया। तथा भारत ही नहीं समस्त मानवजाति के पुरातन, दिव्य, ईश्वरीय और अपौरुषेय ग्रंथ के रूप में वेदरूप बीज को पुनः पल्लवित, पुष्पित हो पाने के लिए वपन कर देना। सत्युग के अंकुर फूट सकें और पृथ्वी पर उभर कर शनैः शनैः परिपूर्ण और यौवन से मदमाते वृक्ष के रूप में विकसित हो सकें-यह था उनका केन्द्रीय कार्य और प्रमुखतम ईश-प्रेरित कर्तृत्व। महर्षि ने यह कार्य प्राण-पण से, मन, वचन, कर्म से परिपूर्ण किया। प्रायः 59 वर्ष के जीवन में मात्र 20 के लगभग वर्षों में उन्होंने इतने महान् भागवत कर्म को सम्पन्न कर दिया। इतने अल्पकाल में इतनी सफलता किसी श्रेष्ठतम से श्रेष्ठतम मानव के द्वारा हो पानी संभव नहीं है यदि पीछे ईश्वरीय शक्ति का आश्रय और पारमात्मिक उत्तेजन और उत्साह न हो। जैसा कि श्री अरविन्द ने सावित्री ग्रंथ में लिखा है-

सब कुछ संभव यदि भागवत परस मिल जाए।

(सावित्री प्रथम सर्ग पंक्ति 79)

और "भागवत परस" मिल क्या जाए, महर्षि दयानन्द तो उस 'प्रभु-स्पर्श' को लिए हुए ही पैदा हुए थे। उनके भीतर का विश्वात्मा पर्याप्त जाग्रत था। इसके प्रमाण तो उनके बाल्यकाल की सामान्य घटनाओं तक से प्राप्त हो जाते हैं। 'महर्षि दयानन्द और वेद' पर निबंध लिखते समय श्री अरविन्द अपनी अन्तस्थ भावना इस भांति प्रकट करते हैं-

"महर्षि दयानन्द ने वेद को अपनी दृढ़ आधारशिला के रूप में अपनाया। वे वेद को अपने जीवन का पथ-प्रदर्शक, अपनी आन्तरिक सत्ता का नियम और अपने बाह्य कार्यों का प्रेरणा-प्रदायक तत्त्व मानते थे। यही नहीं बल्कि वे इसे भागवत सत्य की वाणी मानते थे जिसे मनुष्य-मात्र अपने ईश्वर-विषयक ज्ञान के लिए तथा परमात्मा और मानव साथियों के प्रति अपने संबंधों के लिए उचित और दृढ़ आधार बना सकता है।"

महर्षि दयानन्द की प्रबल वेद आस्था व वेदार्थ समर्पण को उपर्युक्त शब्दों में प्रकट कर के निबंध के अन्त में श्री अरविन्द वेद के विषय में अपनी स्वकीय सुदृढ़ आस्था की झलक देते हुए वेदाशय के प्रकटीकरण में महर्षि के अपूर्व व अद्‌भुत योगदान को इस प्रकार शब्दाकार देते हैं-

"मेरा पूर्ण विश्वास है कि वेद की व्याख्या के विषय में महर्षि दयानन्द वेद के सच्चे सूत्रों के सर्वप्रथम आविष्कर्त्ता के रूप में सदैव समादृत किए जाएंगे, भले ही वेद की अंतिम सर्वांगपूर्ण व्याख्या कोई भी क्यों न हो। दयानन्द का प्रत्यक्षदर्शी चक्षु पुराने अज्ञान और युग-व्यापी भ्रांति की अव्यवस्था और अन्धी कालरात्रि को भेद कर सीधे ही सत्य के तल तक जा पहुंचा और उसके मौलिक तत्त्व पर जा टिका। दयानन्द ने उन द्वारों की कुंजी प्राप्त की जिन्हें काल ने बन्द कर दिया हुआ था और उन्होंने उन अवरुद्ध निर्झरों के मुख पर लगी मुहर तोड़ फैंकी।"

कितने ओजस्वी, उज्जवल और उद्‌घाटक शब्द हैं। महर्षि और वेद दोनों के महत्त्व को इस छोटे से पैराग्राफ में कितनी सुन्दरता से श्री अरविन्द ने प्रकट कर दिया है।

अब प्रश्न है कि किस प्रकार वेद नवयुग या नूतन सतयुग के उद्धरण के बीज बन सकते हैं। इसका तर्क और सम्भाव्यता क्या है।

आधुनिक जड़वादी विज्ञान तो विश्व को एक यांत्रिक-गति मान चुका है। तथा चेतना, आत्मा, चैत्य-तत्त्व आदि को विश्वास-गत भ्रांति व अनस्तित्त्व मानता है। उसके रहते और क्रमशः तीव्र दानवीय युगल-चरणों से आगे बढ़ते चले जाने के प्रत्यक्षवादी अनीशवादी काल में आखिर वेद की पुनर्प्रस्थापना कैसे हो पाएगी, यह एक जटिल यक्ष-प्रश्न की तरह आस्थावादियों के सामने खड़ा है। इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम पुनः पूर्व-प्रदत्त श्री अरविन्द के वचन-संग्रह से कुछ शब्द उद्धरित करेंगे।

"भले ही वेद की अंतिम सर्वांगपूर्ण व्याख्या कोई भी क्यों न हो"। अर्थात् वेद की अंतिम और सर्वांगपूर्ण व्याख्या अभी आनी बाकी है। महर्षि की वेद टीकाएँ स्पष्ट ही अधूरी तो हैं ही साथ ही प्रत्येक साधारण जन तक की पहुंच तक ले जाने के प्रयास से प्रेरित सरल व संक्षिप्त रूप में तो ठीक ही हैं। 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में वे स्वयं लिखते हैं कि "चारों वेदों में जो जो विद्या हैं, उनमें से कोई कोई विद्या तो इस वेद भाष्य की भूमिका में 'संक्षेप' से लिख दी है,"...। इस महर्षि लिखित वाक्य में "कोई कोई विद्या" तथा "संक्षेप से लिख दी है" पर ध्यान देना होगा। अर्थात् महर्षि का वेदों का परि लेखन परिपूर्ण नहीं है, संक्षिप्त है तथा अपूर्ण

रह गया है और आगे अधिक लिखने के लिए इसी स्थान पर उन्होंने संकेत दिया है। परन्तु वह कार्य उनकी अकाल हत्या (मृत्यु) के कारण पूर्ण न हो पाया।

भाव यह है कि अधिक विस्तृत और सम्पूर्ण वेदोक्त विद्याओं का परिपूर्ण ज्ञान महर्षि चाहकर भी दे न पाए। दे पाते तो संभवतः हम आधुनिक विज्ञान की स्थापनाओं से तथा जड़वादी वृत्ति से एक सबल दार्शनिक, वैज्ञानिक संघर्ष कर पाते। इसके अतिरिक्त एक व्यवहारिक और संरचना-प्रवण समस्या यह है कि अंग्रेजी का ज्ञान न होने से महर्षि अपने काल की समस्त पाश्चात्य विज्ञान-प्रगति, वैज्ञानिक प्रवृत्ति और परम्पराओं को जान नहीं पाए। इसके अतिरिक्त उनके काल तक आइंस्टीन और बाद के बीसियों वैज्ञानिकों के प्रयोगों और स्थापना का महर्षि को भला ज्ञान होता भी तो कैसे होता। इन महान् अपूर्णताओं को अनेक आर्य-विद्वानों ने परिपुष्ट व परिपूर्ण करने के परिश्रम साध्य प्रयास किए हैं, परन्तु, उनमें महर्षि दयानन्द जैसी तपस्या, तेजस्विता, सत्याश्रय व सत्याग्रह तथा ईश-समर्पण नहीं था। इसके अतिरिक्त वेद का अर्थ एक आत्माध्यायी, आत्मज्ञानी व विश्वात्मा से संपर्क-कृत महात्मा ही कर सकता है, ऐसा पुरातन विश्वास भी है तथा वेद में भी ऐसे संकेत हैं। जैसे-जो परमेव्योमन् को नहीं जानता, उसका ऋचा क्या करे। 'परमेव्योमन्' को मानसिक तर्कों से, साहित्य व व्याकरण की दृष्टि से समझना एक बात है तथा योग सिद्धि से 'परमेव्योमन्' में प्रविष्ट होकर उसका सप्रमाण-प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेना दूसरी बात। महर्षि के पश्चात् के आर्य, टीकाकारों में क्या कोई 'परमेव्योमन्' तथा जहाँ समस्त "देवशक्तियाँ निवास करती हैं" वहाँ कोई आर्य-विद्वान् पहुंचा था इसका कोई प्रमाण नहीं है। अतः समस्त टीकाएँ, व समीक्षाएँ तथा अनुवाद बुद्धि विलास मात्र हैं और तर्क व युक्तियों की सीमाओं से आबद्ध हैं। अतः महर्षि का कार्य अभी पूर्ण हुआ न माना जाएगा। महर्षि योगी थे। उनकी दृष्टि योग सिद्ध दृष्टि थी। उनका समर्पण ईश्वराधारित यौगिक व परिपूर्ण समर्पण था।

स्वामी श्री, महर्षिवर दयानन्द के पश्चात् यदि किसी ज्ञात योग सिद्ध पुरुष ने वेदों पर श्रम किया तथा वेदों के छिपे हुए मूलार्थ व गूढ़ार्थ उद्घाटन करने का प्रयत्न किया तो वे हैं पांडिचेरी के योगीराज श्री अरविन्द। उनके यौगिक सामर्थ्य में संदेह की गुंजाइश, विचिकित्सा की संभावना नहीं है। उनके वेद सम्बन्धी दो प्रमुख ग्रंथ "सीक्रेट आफ दे वेद" (वेदरहस्य) तथा 'हिम्स टु द मिस्टिक फायर (अग्नि मंत्र माला) को पढ़ने से ही महर्षि दयानन्द के मन्तव्य और कार्यश्रम की परिपूरकता व परिपूर्णता स्पष्ट हृद्गत और बुद्धिगत हो जाती है। परन्तु यह तर्क कि महर्षि दयानन्द एवं श्री अरविन्द के अनेकों स्वतंत्र विचारों व वेदार्थ में अन्तर व विरोधाभास अत्यन्त स्पष्ट है तब? परन्तु यह तर्क भी एक कुतर्क ही है। वेद की

गहनता, महानता और इतिहास रहित शाश्वत मंत्र-दृष्टि पर दोनों महापुरुष लगभग सहमत व समान-दृष्टि हैं। परन्तु क्योंकि वेदमंत्र बहुलार्थी व अनेकार्थी व सूत्ररूप से गर्भित आकार व कूटाकृति स्वरूप वाले हैं अत: वेद के अनेक मन्तव्य व अर्थ-विस्तार संभव है। पर वेद ही भारत, विश्व व समस्त मानव के उद्धार के साधन व माध्यम ग्रंथ हैं, इसमें तो इन उभयात्माओं में कोई विरोध नहीं है। श्री अरविन्द का निम्न-प्रदत्त संदर्भ द्रष्टव्य है-

"वेद वह ज्ञान है जिसे पाने के लिए मानव का समस्त चिन्तन-मनन प्रयत्नशील है। 'यस्मिन् विज्ञाते सर्वम् विज्ञातम्'-जिसे जानने से सब कुछ जाना जाता है।"

"मेरा विश्वास है कि भारत वर्ष और विश्व का भविष्य वेद के अन्वेषण और प्रयोग पर ही अवलम्बित है।"

"यह दिव्यवाणी है जो कम्पन करती हुई असीम में से निकलकर उस मनुष्य के अन्त:श्रवण में पहुंची जिसने पहले से ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञान का पात्र बना रखा था।"

श्री अरविन्द की इस आस्थाजन्य वाणी में और महर्षि वर के उस परिपूर्ण कथन में कहाँ भेद है जहाँ वे कहते हैं कि-"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।"

अत: एक वेदार्थ की प्रस्तुति को दूसरे वेदार्थ की प्रस्तुति पर आलोचनात्मक और तुच्छ तुलनात्मक स्तर पर ले आना साम्प्रदायिक एवं व्यक्तिपूजक मनोवृत्ति का परिचायक है। वेद के अंतिम अर्थ तो निश्चय ही कभी न हो पाएंगे। क्योंकि "हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता।" अपुरुष परमात्मा की तरह ही उसकी वाणी भी अपौरुषेय और अनन्त-असीम ही होगी। प्रश्न यह है कि सत्युग की सूत्रधार यह वाणी किस प्रकार सत्युग को अभिव्यक्त करने में सहायक होगी।

श्री अरविन्द के 'दिव्यजीवन' नामक मुख्यतम ग्रंथ में जहाँ-तहाँ वेद मंत्रों के संदर्भ दिए गए हैं। अध्याय के अध्याय यदि गहन और अर्थभेदक दृष्टि से देखे जा सकें तो वैदिक मन्तव्य और वैदिक प्रयोजनों को उनकी विस्तृत स्पष्टता में इस ग्रंथ में देखा जा सकता है। इस ग्रंथ के अंतिम दो-तीन अध्याय तो वस्तुत: ऋग्वेद के अंतिम, 191 सूक्त, संगठन सूक्त की ही अत्यन्त विशाल और विस्तृत व्याख्या व शुभालोचना ही हैं। विज्ञानमय सत्ता और विज्ञानमय समाज की ही कल्पना उन चार ऋग्वेदीय मंत्रों में है जो वस्तुत: अत्यन्त लघु और सूक्ष्म रूप में एक आदर्श मानवता, आदर्श जगत् व आदर्श जीवन की कल्पना से युक्त हैं। वही श्री अरविन्द द्वारा प्रस्तुत अतिमानसिक समाज का प्रारंभिक स्वरूप है।

वेदोक्त गायत्री मंत्र का संदर्भ दिए बिना ही 'दिव्य जीवन' का प्रथम अध्याय गायत्री मंत्र की "धियो यो नः प्रचोदयात्" भावना की ही साहित्यिक, दार्शनिक व आध्यात्मिक व्याख्या है।

इसी संदर्भ में श्रीयुत महर्षिवर दयानन्द के सीमित व सांत मुक्ति के विचार को एक उत्तम और अकाट्य प्रमाण के रूप में लिया जा सकता है। आर्य विद्वानों ने इस अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया। पौराणिक अनन्त मुक्ति व असमाप्य कैवल्य स्थिति पर बौद्ध निर्वाण व जैन कैवल्य ज्ञानात्मक मुक्ति के विचारों का तीव्र प्रभाव है। अद्वैतवादियों, शंकरवादियों के विचार इस विषय पर वेद के अनुकूल नहीं बल्कि प्रतिकूल ही सिद्ध होते हैं। इस सांत व सीमित मुक्ति के विचार को श्री अरविन्द की दृष्टि से ही पूर्णतः समझा जा सकता है और यही महर्षि दयानन्द और श्री अरविन्द की अन्तरात्मा में स्थित ईशादेशों व भागवत्प्रेरणा की समानान्तरता स्पष्ट हो जाती है।

दोनों महापुरुषों के अवान्तर वैचारिक अंतर पर ध्यान देना एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक भूल है। एक व्यवहारिक रूप से दोषपूर्ण अव्यवहारिकता भी है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" में 'बहुधा' शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। बहुधा के कोषगत मूलार्थ हैं-कई प्रकार से, बहुत प्रकार से, भिन्न-भिन्न रूप से या विभिन्न रीतियों से। सत्य सर्वसम्पूर्ण दिव्यता है। श्री अरविन्द भी वेदों में इतिहास नहीं मानते, श्री अरविन्द वेदों को ईश्वरीय आत्म प्रेरणात्मक ज्ञान मानते हैं। श्री अरविन्द वेद को मानवीय उद्धार और उत्थान का साधन और दिव्य ज्ञान का माध्यम मानते हैं। परन्तु श्री अरविन्द प्रचलित अर्थों में, पौराणिक रीति से न तो अवतार मानते हैं और न मूर्ति पूजा। किन्तु अवतार और मूर्तिपूजा पर उनके विचार नए व पर्याप्त भिन्न प्रकार के हैं। सर्व समन्वयवादी श्री अरविन्द समस्त धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृतियों के प्रचलित स्थूल रूप से विरोधी और विनम्र आलोचक हैं। परन्तु इन विषयों पर उनके अपने गहन और व्यापक तात्पर्य हैं। योग के व्यावहारिक और अभ्यास पक्ष पर अहर्निश प्रयोग व परीक्षण करने वाले श्री अरविन्द के विभिन्न विचारों में यदि महर्षि के विचारों से भिन्नता है तो इससे न तो महर्षि दयानन्द त्रुटिपूर्ण ठहरते हैं और न श्री अरविन्द। वाद-विवाद, शास्त्रार्थ व जन-प्रवचन श्री अरविन्द की साधना प्रक्रिया का अंग नहीं रहा। उन्होंने अपने विचार अपने 35 ग्रंथों में ही एक विशिष्ट ऊँचाई और अचिन्त्य गहराई से प्रस्तुत किए हैं। महर्षि के द्वारा प्रवचनों और शास्त्रार्थों में समय और उपस्थिति-परिस्थिति के अनुरूप कहे गए वचनों को एक भिन्न स्तर से देखना-समझना चाहिए। साधारण जनता के सामने मंच पर बोलते समय विषयगत सरलता और सुगमता का ध्यान रखना ही पड़ता है। महर्षि दयानन्द की बहिर्मुखी

सीधी कार्यशैली उनकी विवशता थी। आहूत करने और आमंत्रण करने पर उन्हें युधिष्ठिर की सी विवशता से मंचों और वादावाद सभाओं में जाना ही पड़ता था। गहन योग साधना और एकान्त वैचारिक मनन चिन्तन का जितना सुयोग श्री अरविन्द को मिला, महर्षि दयानन्द को नहीं मिला। फिर अंग्रेजी की उद्‌भट साहित्यिक प्रतिभा से पूर्णतः सम्पन्न श्री अरविन्द अंग्रेजी के अतिरिक्त तीन-चार पाश्चात्य भाषाओं तथा मराठी, गुजराती, हिन्दी, बंगला आदि भारतीय भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। तथा संस्कृत का अंग्रेजी में अनुवाद करने योग्य सामर्थ्य से भी समृद्ध थे। अतः उनकी विचार शैली, व्याख्या शैली और चिन्तनात्मक दिशा भिन्न होनी स्वाभाविक है। अतः इस सब प्रकार की तुलनात्मक दृष्टि ऐतिहासिक व साहित्यिक तो हो सकती है परन्तु आध्यात्मिक कदापि नहीं हो सकती।

वेद रूप महानतम प्रज्ञा-समुद्र के द्वारों पर लगी मुहर-सील को तोड़ने का कार्य तो महर्षि ने ही किया। भारतीय पुराणों के चक्राकार और विभ्रमपूर्ण ऊर्णात्मक विशाल विकृत इन्द्रजाल से महर्षि ने ही भारतीय मनीषा को मुक्त किया। स्त्रियों के विषय की अनेक गर्हित, घृणित और अमानुषिक परम्पराओं के विशाल दुर्ग की प्राचीरों को महर्षि ने ही खंडित और विनष्ट किया। अतः महर्षि की महानता, महर्षि की गरिमा और महर्षि के अभूतपूर्व माहात्म्य से तो कदापि न इन्कार किया जा सकता है और न उसकी उपेक्षा की जा सकती है। नवीन वेदाश्रयी सत्युग का पथ-प्रशस्त करने का श्रेय तो महर्षि दयानन्द का ही है, अकेले महर्षि दयानन्द का। वेद ही उस नवीन सत्युग के निर्देश-ग्रंथ या मैनुअल हैं। परन्तु महर्षि के पश्चात् श्री अरविन्द द्वारा वेद की गहन व्याख्या और वेद के दार्शनिक, आध्यात्मिक, यौगिक विश्लेषण और विवेचन को उसी महर्षि दयानन्द द्वारा प्रारंभ किए गए कार्य की सम्पूरक प्रगति मानकर विचार, चिन्तन व अध्ययन-मनन करना समीचीन है।

वेद के आधार पर सत्युग के आगमन के विचार को महर्षि के सीमित व सान्त मुक्ति के विचार से देखना हमारे तर्क को दृढ़ आधार देता है। परन्तु जैसा कि हमने कुछ पंक्तियों के पूर्व लिखा था कि इस सान्त मुक्ति के विचार को श्री अरविन्द की समग्र योगीय नूतन मानवता के विकास की दृष्टि से ही सटीक रूप से समझा जा सकता है।

"ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" के मुक्ति विषयक अध्याय में महर्षि ने लिखा है- "मोक्ष के साधन में सब दिन प्रवृत्त रहने से .....पांच क्लेश नष्ट हो जाते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश।" ....."इन क्लेशों की शांति से जीवों को मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।" यह मुक्ति का संक्षिप्त वर्णन है। इस सम्बन्ध में "सत्यार्थ प्रकाश" के नवम समुल्लास में महर्षि दयानन्द कहते हैं- "अनन्त

आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीव में नहीं, इसलिए अनन्त सुख नहीं भोग सकता। जिनके साधन अनित्य हैं उनका फल, नित्य कभी नहीं हो सकता।" तथा "जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना है तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।"

मुक्ति का सुख भोग कर पुनः पृथ्वी पर जन्म लेना महर्षि अपरिहार्य मानते हैं। अब प्रश्न यह है कि अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष व अभिनिवेश रूपी आशाओं से मुक्त व स्वच्छ होकर निष्कल्मष होकर जो जीव पृथ्वी पर जन्म लेगा वह भला अविद्या आदि पंच क्लेशों में पुनः क्यों पड़ेगा? निश्चित ही वह उत्तम ज्ञान, कर्म और सामर्थ्य से युक्त होकर ही जन्म लेगा।

ये मुक्त पुरुष जब अधिक संख्या में पृथ्वी पर आएंगे तो एक नव प्रकार का पार्थिव जीवन ही निर्मित करेंगे। बहुसंख्यक मुक्त पुरुषों के द्वारा निर्मित-विकसित नूतन जीवन व्यवस्था कैसी होगी, इस पर महर्षि ने विशेष कुछ मन्तव्य प्रकट नहीं किया या समयाभाव से या किसी भी कारण से नहीं कर सके।

श्री अरविन्द की विज्ञानमय अतिमानसिक मुक्त-जीव समुदाय की प्रकल्पना बहुत विस्तृत और गहन है तथा वह सृजन व जीवन को स्पष्ट और गहन अर्थवत्ता प्रदान करती है। समुचित और सुविचरित दृष्टि से देखें तो महर्षि के सांत-मुक्ति के क्रांतिकारी विचार की परिपूरक प्रकल्पना ही है श्री अरविन्द की यह कल्पना। यह नया अतिमानसिक, विज्ञानमय जीवन ही सत्युग की अवधारणा का स्पष्ट चित्र है। हिरण्मय पात्र मन व अधिमन के ऊपरी ढक्कन को भग्न करके विज्ञान सूर्य की कल्याणमय रश्मियों को उजागर करते हुए मुक्त मानवता इसी भूमि पर निष्कुण्ठ, कुण्ठा और व्यथा रहित स्वर्ग का निर्माण करेगी, ऐसा श्री अरविन्द का भविष्य स्वप्न है। वेद इस सत्युगीन नव-निर्माण के आधारभूत संदर्भ ग्रंथ हैं। परन्तु वेद आज जिस रूप में हमारे समक्ष हैं वह नवयुग निर्माता महर्षि दयानन्द के ही कारण हैं।

महर्षि ने वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना ही आर्यों का परम धर्म कहा है। परन्तु दुःख का विषय है कि दयानन्द का कीर्तन और दिन-रात उनकी शंसा-प्रशंसा को तथा मूर्ति-अवतार आदि मानने वालों की कटुतम निन्दा को ही बहुसंख्यक आर्यों ने अपना धर्म, अपना जीवन-हेतु बना रखा है। अवतार के रूप में श्रेष्ठतम व्यक्ति के प्रति व्यक्तिवादी प्रेम, हीरो-वर्शिप की पौराणिक वृत्ति से अनेकों आर्यों की दयानन्द भक्ति पूरी समान ही है। महर्षि व्यक्तिवादिता, गुरुवाद के अत्यन्त तीव्र आलोचक थे। उसे मानव के विकास की बड़ी बाधा मानते थे। आर्य समाज की स्थापना के समय बम्बई में उन्होंने स्पष्ट कहा था- "मेरे मन्तव्य कोई अद्वितीय व असाधारण नहीं हैं और न मैं सर्वज्ञ ही हूँ।" परन्तु आर्य जन उन्हें अद्वितीय,

असाधारण और सर्वज्ञ मान कर ही व्यवहार करते हैं। वेद के पढ़ने-पढ़ाने व सुनने-सुनाने में समय लगाने की बजाय दयानन्द को और उनकी मात्र खण्डनात्मक बातों को ही समक्ष रखने में दत्तश्रम रहते हैं। कोई स्वतंत्र विचारक एक शब्द भी दयानन्द की आलोचना में लिख-बोल दे तो उसे ध्यान से, प्रेम से सुनकर तार्किक और सम्बद्ध उत्तर देने की बजाय उसके शोणित के प्यासे हो जाते हैं। यह तो सही आर्य दृष्टि नहीं है। वेद पर अन्य विद्वानों के परिश्रम व प्रज्ञापूर्ण ग्रंथों के विषय में अधिकांश को विशेष ज्ञान ही नहीं है। बहुधा ग्रंथ अंग्रेजी में हैं, वहाँ तक उनकी पहुँच कम ही है। भारत के विनाश का कारण बताते हुए आर्य समाज की प्रथम धर्मसभा में महर्षि ने स्पष्ट कहा था- "गुरु के वचनों को सत्य की कसौटी पर मान लिया गया। जिसके परिणाम स्वरूप लोग धर्मान्ध हो गए। उनमें कलह उत्पन्न हो गई। सत्य ज्ञान का विनाश हो गया और वे पूर्वाग्रह ग्रस्त होने लगे। भारत की दुर्दशा वर्तमान में भी इसी के ढंग से हुई और इसी ढंग से इस समाज का रूप भी एक अन्य सम्प्रदाय का हो जाएगा। यह मेरी निश्चित सम्मति है।" कितना भविष्य ज्ञानपूर्ण कथन था। आर्य समाज प्रायः एक सम्प्रदाय ही माना जाने लगा है। वस्तुतः बन ही गया है।

वेदों पर अनुसंधान में मुक्त रूप से समस्त विश्व के वेद पर किए गए कार्यों को ध्यान में लेना होगा। महर्षि एक प्रकाश स्तम्भ हैं, स्वयं-प्रकाश नहीं हैं। महर्षि ईश-दूत हैं स्वयं ईश्वर नहीं। अतः वेद पर नए नए अनुसंधान, नई नई खोज और नए नए आविष्कार होने चाहिए। यही प्रयास भविष्य के सत्युग को समीप लाएगा। यही महर्षि दयानन्द का स्वकीय प्रयोजन था। उन्होने वेद के वकील बनकर वैसे ही बनने के लिए कहा था। स्वयं के वकील बनने के लिए कभी किसी को नहीं कहा था। सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में दिए गए 51 सूत्रों में उन्होंने स्वयं के प्रसार-प्रचार के लिए एक भी शब्द नहीं कहा। 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' के ये 51 सूत्र ही हमारे लिए निर्देशक और गाइड बन जाने चाहिए। बाकी सब बातें अवान्तर विषय हैं। वे व्यक्तिगत रुचि पर आधृत हैं। उन्हें सर्वसामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता।

वेद की महत्ता पर श्री अरविन्द के पूर्व कथित ग्रंथों के अतिरिक्त उनके दो अति महत्त्वपूर्ण ग्रंथ द्रष्टव्य व पठितव्य हैं। अपने गहन योग साधना काल में वे अपने नित्य की साधारण, असाधारण व चमत्कारी अनुभूतियों को एक दैनन्दिनी में लिख लेते थे। अपनी योग साधना के रिकार्डों को पूरी तरह स्पष्ट रूप से उन्होंने वर्णित किया है। "रिकार्ड आफ योग" नामक पुस्तक विश्व इतिहास के अति विचित्र और अति मूल्यवान् ग्रंथ रूप दायभाग हैं। यौगिक साधना की इस प्रकार की डायरी का कोई पूर्व प्रमाण प्राप्त नहीं होता। उसमें स्थान-स्थान पर अपने अनुभवों को वेद

मंत्रों से पुष्ट और समर्थित करके ही उन अनुभवों को श्री अरविन्द ने स्वीकार किया है। वैदिक संदर्भों से भरे पड़े हैं उनके ग्रंथ। एक बार तो उन्होंने ऋग्वेद के 110 सूक्तों का चार दिन में ही वेद की मूल छान्दस् भाषा में विलोडन-मंथन किया। वेदाध्यायी व वेद मंत्रों की महिमा में प्रवेश करने के इच्छुक व्यक्ति को ये ग्रंथ-चुनाव का विषय नहीं है बल्कि ये पढ़ने अपरिहार्य विषय है।

इस सब विवेचन से ज्ञात होता है कि सत्युग आएगा, अवश्य आएगा और कल्पना से कम काल में आएगा। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रारंभित व श्री अरविन्द द्वारा विस्तृत-कृत वेदार्थ ही आनेवाले भविष्य के प्रेरणा ग्रंथ व निर्देश ग्रंथ बनेंगे।

इस सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान प्रगति पर कुछ शब्द कह देना समीचीन होगा। जड़ तत्त्व, भौतिक पदार्थ को सर्वस्व मानने वाले तथा चेतना को भौतिक तत्त्व का अकस्मात् उत्पन्न द्वितीय तत्त्व मानने वाले विज्ञान में साधन, माध्यम और सहायक आविष्कारों पर ही आग्रह है। संसार का हेतु और जीवन का हेतु उनकी प्रायौगिक और पारीक्षणिक सूची में है ही नहीं। अतः उनके द्वारा प्राप्त व प्रदत्त साधन व माध्यम चाहे जितने भी मूल्यवान्, उपयोगी और चमत्कारिक हों, जीवन को हेतु, निमित्त और अर्थवत्ता न दे सकने की उनकी वृत्ति, जीवन को सतत एक दुःस्वप्न बनाकर ही प्रस्तुत कर रही है। साधन भला साध्य कैसे हो सकते हैं। माध्यम भला उद्देश्य कैसे हो सकते हैं। वे मंगल पर जायँ या बृहस्पति पर ये सामर्थ्य अत्यन्त चमत्कार व आश्चर्यपूर्ण होने पर भी उदासी, अवसाद, रुग्णता और मृत्यु आदि की पीड़ाओं के औचित्य और उपचार में विशेष सफल नहीं हो पाती। विश्व क्यों? और हम मनुष्य क्यों? इन प्रश्नों के परिपूर्ण व मतिसंतोषी उत्तरों के बिना मानवीय कर्त्तव्यों का समुचित निर्धारण हो ही नहीं सकता। यहीं पर वेद हमें भरपूर सहायता देते हैं। और वैदिक सहायता के पश्चात् विज्ञान के ये उपादान रूप उपहार भी और अधिक मूल्यवान् हो उठते हैं। वेद की उपयोगिता का विषय अत्यन्त गहन व विस्तृत है। स्थानाभाव से यहाँ वह नहीं दिया जा सकता। परन्तु दो विशेष मानवीय जीवन सार्थक करने वाले लक्ष्यों को मोटे रूप से सामने रख कर हमें वेद के प्रयोजन व उपयोगिता को समझ सकते हैं।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त को पूरा-पूरा ध्यान में लें।

संचेतना का परिवर्धन व संग्रहण प्रथम सूक्त का विषय है जिसे "पोषमेव दिवे दिवे" तथा "वर्धमानं स्वे दमे" जैसे मंत्रों से स्पष्ट किया गया है। चेतना के वर्धन-संग्रहण से दिन प्रतिदिन बढ़ने वाली रयि अर्थात् दिव्यानन्द तथा "स्वयं के गृह" अर्थात् स्वयं की आत्म चैतन्यता में बढ़ने वाले दिव्य अग्रणी या अग्नि तत्त्व की यौगिक प्रक्रिया का ज्ञान-विज्ञान, प्रक्रिया और अभ्यास वेद से ही प्राप्त होगा

अन्यत्र से नहीं। यह है व्यक्तिगत साधन और लक्ष्य। इसके पश्चात् ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त का समष्टिगत उत्तमोत्तम व उत्तरोत्तर विकास का वेदोक्त सामुदायिक लक्ष्य है। ये दोनों लक्ष्य व साधना वेदों में ही निर्मल और अजटिल रीति से प्राप्त है। आधुनिक विज्ञान व मनोविज्ञान अभी तक अपनी जड़ तत्त्वोन्मुखी जड़ीभूत जड़ता से नहीं निकल पा रहे हैं।

इस प्रकार साधन और साध्य का आशागत सम्मिलन जब होगा तब सत्युग का वातावरण और सत्युग की परिस्थिति अधिक दूर न होगी।

सत्युग आएगा ही, आना ही है। सृजन का यही एक मात्र हेतु और ध्येय है। वेदकालीन ऋषिगण ने ईश्वरीय ज्ञान के इस स्रोत-संग्रह को हमारे लिए कृपा पूर्वक संभाल कर रखा हुआ है। महर्षिवर दयानन्द ने पुनः जिसे हमें अनुग्रहपूर्वक सौंपा है।

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (14-20) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

दयानन्द दर्शन की वर्तमान में उपादेयता

-विनय कुमार*

प्रस्तावना- 21वीं सदी के शुरू के दो दशक भारी बदलाव के दशक हैं। वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई उन्नति ने हमारे समाज को बदल कर रख दिया है। यातायात और संचार के क्षेत्र में हुई क्रांति ने विश्व को एक छोटा सा गांव बना दिया है। इससे विभिन्न संस्कृतियां एक-दूसरे के नजदीक आई और एक-दूसरे में घुल मिल गई। एक नए समाज का जन्म हुआ। इस नए समाज में दयानन्द दर्शन की उपादेयता बढ़ गई है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के विचार आज हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। उनका व्यक्तित्व हमें आज उत्तर दिशा में आकाश में चमक रहे ध्रुव तारे की तरह प्रकाश देता दिखाई दे रहा है।

विषय वस्तु- स्वामी दयानन्द सरस्वती जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग हिंदू धर्म के उत्थान में किया। उनके विचारों ने समाज में क्रांति ला दी। शिक्षित और प्रबुद्ध वर्ग उनके पीछे लामबंद हो गया। उन्होंने लोगों का नेतृत्व किया और एक आदर्श समाज बनाने की दिशा में कार्य किया। एक आदर्श समाज के लिए जरूरी है कि लोग आपस में मिल जुल कर रहें। उन्होंने मानव व्यवहार को ही सफलता का मूल मंत्र बताया। उन्होंने अपनी पुस्तकों में एक आदर्श समाज की परिकल्पना की और इस उद्देश्य की प्राप्ति का मार्ग भी बताया।

प्रासंगिकता- स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के समय भारत में अंग्रेजों का राज था। अंग्रेज आर्थिक रूप से तो देश का शोषण कर रहे थे परंतु शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने एक क्रांति को जन्म दिया। शिक्षित व्यक्ति अंधभक्त नहीं होता। वह तर्क को आधार मानकर प्रत्येक वस्तु को देखता है। शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति करते हुए आज हम कम्प्यूटर युग को भी लांघते हुए कृत्रिम होशियारी (आर्टिफिशल इंटेलिजेंस) के युग में पहुंच गए हैं। परंतु 21वीं सदी के तीसरे दशक में भी मानवीय भावनाएं वहीं हैं जहां आज से दो सदी पहले थी। विभिन्न युगों में विभिन्न महापुरुषों ने हमारे समाज का मार्गदर्शन किया। इन महापुरुषों में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। अपने समय में स्वामी दयानन्द जी ने तर्क को आधार

* सहायकाचार्य, हिन्दी, भोजराज गवर्नमेन्ट कॉलेज, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश।

बनाकर धार्मिक क्रियाओं को देखने का आग्रह किया। आज दो सौ वर्ष बाद भी देश की धार्मिक और सामाजिक स्थिति वैसे ही बनी हुई है। वर्तमान समय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के विचार हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। स्वामी जी के समाज दर्शन और व्यवहार संदेश की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

महत्व- अमावस्या की काली घनेरी रात में जब चांद भी नहीं होता, तब उत्तर दिशा में ध्रुव तारा अपने प्रकाश से अपने महत्व का डंका बजा रहा होता है। उसका प्रकाश ही उसकी महानता को सिद्ध कर देता है। स्वामी जी की समाजसेवा व उच्च चरित्र वाले व्यक्तित्व ने उन्हें समाज में पहचान दिलाई। उन्होंने मानवता की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया। आज 21वीं सदी में भी स्वामी जी के समाज दर्शन व व्यवहार संदेश का महत्व बना हुआ है।

मुख्य शब्द- उपादेयता, मार्गदर्शन, आदर्श समाज, नेतृत्व, मानव व्यवहार, सामाजिक, प्रासंगिकता, राष्ट्रभाषा, वैदिक, वर्ण, मूर्तिपूजा, पाखंड, कुरीति, प्रमाण, तर्क, जन्मना, शूद्र, यज्ञोपवीत।

दयानन्द दर्शन की वर्तमान में उपादेयता- स्वामी दयानन्द का जन्म 1824 में काठियावाड़ के मोरवी नामक नगर में एक पुरातनवादी ब्राह्मण परिवार में हुआ।[1] वह रियासत के कर्मचारी थे और शिव भक्त थे। पिता ने उनका नाम मूलशंकर रखा था। चौदह वर्ष की अवस्था में आपने शिवरात्रि के दिन शिवजी की मूर्ति पर एक चूहे को चढ़ते देखा तथा तब आपके मन में मूर्ति के संबंध में शंका उत्पन्न हो गई मूर्ति पूजा पर शंका ही पिता को अप्रसन्न करने के लिए पर्याप्त थी।[2] विवाह से बचने और सत्य की खोज करने के लिए उन्होंने एक दिन स्वयं ही घर को त्याग दिया। बाईस वर्ष सत्य की खोज में लगे रहे। देश के कोने-कोने का भ्रमण करने के उपरांत, अंत में आप मथुरा चले आए और स्वामी विरजानंद नामक एक प्रज्ञाचक्षु संन्यासी से संस्कृत, व्याकरण, और वैदिक साहित्य पढ़ा। स्वामी विरजानंद अंधे थे। परंतु उन्होंने स्वामी दयानन्द की आंखें खोल दी। स्वामी दयानन्द को ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे लगभग 38 वर्ष की अंध कोठरी की कैद से सहसा सूर्य के प्रकाश में लाए गए हों। उनके सब संशय दूर हो गए। स्वामी दयानन्द अपने गुरु से विदा होने लगे तब स्वामी विरजानंद ने उनसे वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने का आग्रह किया।[3] वेद ईश्वरीय ज्ञान है।, अतः स्वयं प्रमाण है।[4] मूर्ति पूजा पुराणों से विहित है, परंतु

---

1. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 132, वर्ष -2016
2. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
3. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
4. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016

वेद विरुद्ध होने से त्याज्य है।[5] वर्ण चार हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। परंतु इसका आधार गुण, कर्म और स्वभाव है, जन्म नहीं। इसका अर्थ यह कि हिंदुओं को वर्तमान जात-पात त्याज्य है।[6] बाल विवाह सर्वथा वेद विरुद्ध है।[7] बाल विधवा विवाह होना चाहिए।[8] सनातनी पंडितों, मुसलमान मौलवियों, ईसाई पादरियों आदि से शास्त्रार्थ करके उन्होंने एक और सिद्धांत ठहराया और वह यह कि संसार के भिन्न-भिन्न धर्म और भिन्न-भिन्न भाषाएं चाहे वे यूरोपीय हों या एशियाई, केवल वैदिक धर्म और संस्कृत भाषा के विकृत रूप हैं। इस प्रकार 1875 में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना कर सबके लिए उसका द्वार खोल दिया और समाज सुधार का स्तुत्य प्रत्यन किया। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' नाम का ग्रंथ लिखा।[9] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस देश में सर्वप्रथम, हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। वेद हिंदी और स्वदेश प्रेम की शिक्षा देकर स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज को सार्वदेशिक बना दिया। सन् 1883 में अजमेर में दिवाली के दिन इस महान विभूति का स्वर्गवास हो गया।[10] भारत में समय-समय पर अनेक समाज सुधारकों ने समाज सुधार का कार्य किया। परंतु महर्षि दयानन्द और उनमें मूल अंतर यह था कि महर्षि दयानन्द ने धर्म के नाम पर चल रहे पाखंड और कुरीतियों को शास्त्रों से सटीक प्रमाण देकर धर्म विरुद्ध सिद्ध किया। साथ ही धर्म के सत्य व सरल स्वरूप को प्रतिपादित किया। इसके परिणामस्वरूप जनता ने महर्षि दयानन्द के लिए सुधारों को बढ़-चढ़ कर स्वीकारा और सुधारों की क्रांति ने भारत के जन-जन को ओट दिया। महर्षि दयानन्द के बाद उनके अनुयायियों ने उनके समाज सुधार के कार्य को आगे बढ़ाया।[11] महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भारत में फैले जातिवाद का हर स्तर पर विरोध किया। महर्षि दयानन्द ने अनेक प्रमाण और तर्क देकर सिद्ध किया कि इन प्रचलित जन्मना जातियों का कोई शास्त्रीय आधार नहीं है और न ही इनका कोई उल्लेख किसी शास्त्र में मिलता है। जन्मना जाति-व्यवस्था वेद विरुद्ध है। इसलिए जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था का निर्माण समूल नाश होना चाहिए। उन्होंने कहा कि गुण-कर्म-स्वभाव आधारित वर्ण व्यवस्था ही वेद सम्मत है।[12] स्वार्थी लोगों ने शूद्रों

---

5. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
6. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
7. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
8. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
9. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
10. राष्ट्र के महान व्यक्तिव, डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ संख्या- 133, वर्ष -2016
11. maharshidayanand.com
12. maharshidayanand.com

के वेद पढ़ने पर रोक लगा रखी थी। महर्षि दयानन्द ने घोषणा की कि वेद पढ़ना प्रत्येक मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है।[13] महर्षि ने कहा कि सब मनुष्यों को बिना भेदभाव के समान अधिकार मिलने चाहिए। कोई व्यक्ति जन्म के आधार पर ऊंचा या नीचा नहीं हो सकता[14] महर्षि ने जन्म के आधार पर छुआछूत का प्रबल विरोध किया।[15] महर्षि दयानन्द ने सभी हिंदुओं से जाति बंधन तोड़कर आपस में विवाह करने का आह्वान किया।[16] एक ओर तो शास्त्रों में नारी को पूज्य बताया गया था जबकि दूसरी ओर नारी की स्थिति पांव की जूती के समान थी। स्वार्थी जनों ने नारी को अधिकारहीन बनाकर उसकी स्थिति पशुओं से भी बदतर बना रखी थी। महर्षि दयानन्द ने एक ओर समाज में फैली नारी शोषक कुरीतियों का विरोध किया, वहीं दूसरी ओर नारी को उसके जन्मसिद्ध अधिकार भी दिए।[17] महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शास्त्रों से प्रमाण देकर घोषणा की कि स्त्री पुरुष समान हैं। उनमें किसी कि स्तर ऊंचा या नीचा नहीं है।[18] महर्षि दयानन्द ने शास्त्रों से प्रमाण देकर सिद्ध किया कि यज्ञोपवीत विद्या कि चिन्ह है और इतिहास में अनेक विदूषी नारियों का वर्णन आता है। अत: पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी यज्ञोपवीत पहनने का समान अधिकार है।[19] स्वार्थी लोगों ने स्त्रियों को असहाय बनाए रखने के लिए उनके पढ़ने लिखने पर रोक लगा रखी थी। कुछ समाज सुधारकों ने बालिकाओं के लिए कुछ पाठशालाएं गोली थी। परंतु ज्यादातर स्त्रियों के लिए पढ़ाई असंभव बात थी। ऐसे में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने नारी को शिक्षा का समान अधिकार था।[20] स्वार्थी लोगों ने भी स्त्रियों के वेद पढ़ने पर रोक लगा रखी थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने घोषणा की कि वेद पढ़ना स्त्री सहित प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।[21] जब नन्हे मुन्ने बच्चों को गोदी में लेकर विवाह कर दिया जाता था। उस काल में सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द जी ने शादी के लिए न्यूनतम आयु (लड़के की 25 वर्ष एवं लड़की की 16 वर्ष घोषित की।) मर्द अनेक स्त्रियों से विवाह कर लेते थे और वे स्त्रियां अनेक दु:ख सहती थी। महर्षि दयानन्द जी ने शास्त्रों से प्रमाण देकर सिद्ध किया कि मर्द-औरत

---

13. maharshidayanand.com
14. maharshidayanand.com
15. maharshidayanand.com
16. maharshidayanand.com
17. maharshidayanand.com
18. maharshidayanand.com
19. maharshidayanand.com
20. maharshidayanandcom
21. aharshidayanand.com

को एक समय में एक ही विवाह करना चाहिए।[22] महर्षि दयानन्द जी ने मांसाहार का कड़ा विरोध किया और शाकाहार को मनुष्यों का भोजन बताया। महर्षि दयानन्द ने सभी प्रकार के नशे का विरोध किया। वस्तुतः समाज सुधारक का जो कार्य कबीर और महानतम कवि तुलसीदास भी नहीं कर सके वह कार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कर दिखाया। स्वामी जी भारतीय धर्म और संस्कृति के नवीनतम बौद्धिक संस्करण थे। मेरी दृष्टि में वे आधुनिक भारत के सबसे बड़े एवं महान समाज सुधारक थे। वे गौतम बुद्ध के बाद सबसे बड़े समाज सुधारक हुए। स्वामी दयानन्द सरस्वती का समाज दर्शन सत्यार्थ प्रकाश के विशेष संदर्भ पर आधारित है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में इस पुस्तक की रचना की। आज 21वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में भी दयानन्द जी का समाज दर्शन अपनी उपादेयता बनाए हुए है। दयानन्द सरस्वती जी 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखते हैं कि- "बुद्धिमान माता पिता को अपनी संतान की शिक्षा की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। तांबे का सोना करना और पारे का चांदी बनाना, उन्हें यह बात मिथ्या जाननी चाहिए। अपने बालकों को हृदय में अच्छी रीति से यह बात निश्चय करानी चाहिए कि वीर्य की रक्षा करने से बुद्धि बड़ती है। क्योंकि वीर्य की रक्षा से बुद्धि, बल पराक्रम और धैर्य आदि गुण अत्यंत बढ़ते हैं। इससे बालकों को बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसमें यह उपाय है कि विषयों की कथा और विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान कभी न करें। श्रेष्ठ लोगों के साथ विद्या का ध्यान करें। विद्या को ग्रहण करने में अपना मन लगाएं।"[23] स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सार्वभौमिक शिक्षा का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि माता पिता तथा राज्य के लिए यह आवश्यक है कि सभी को अनिवार्य रूप से शिक्षित किया जाए। ताकि स्वयं वेदों अध्ययन कर उनके अनुकूल आचरण करें और दूसरों द्वारा दी गई व्याख्या को मानने के लिए बाध्य न हो।[24] स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार शिक्षा जिससे विद्या सभ्यता, धर्मात्मा जितेन्द्रियता आदि की वृद्धि हो और अविद्या दोष दूर हो उसे शिक्षा कहते हैं। विद्या के पांच लक्षण हैं- विद्या प्रदान करना, सभ्य बनाना, धर्मात्मा बनाना, जितेन्द्रियता बढ़ाना और अविद्या से मुक्ति दिलाना। इस प्रकार शिक्षा में लौकिक और परलौकिक सभी चौदह विद्याएं आती हैं। सत्यार्थ प्रकाश के नौवें विभाग में स्वयं स्वामी दयानन्द ने विद्या अविद्या के योग सूत्र के अनुसार अंतर किया है। अविद्या के कारण मनुष्य अनित्य को नित्य और अपवित्र को पवित्र समझता है। जबकि विद्या में दुःखों से

22. maharshidayanand.com
23. सत्यार्थ प्रकाश, दयानंद सरस्वती, पृष्ठ संख्या- 30,31
24. स्वामी दयानंद सरस्वती के शैक्षिक दर्शन का वर्तमान शिक्षा में योगदान- शोधार्थी, प्रतीक त्रिपाठी, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर, छत्तीसगढ़।

छुटकारा मिलता है और इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है।[25] ज्ञान प्राप्ति के बाद स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का संदेश फैलाने और हिंदू धर्म की रुढ़िवादी अतार्किक परंपराओं का विरोध करने का संकल्प किया। हालांकि दयानन्द जी का ब्रह्म समाज से लगाव बहुत ज्यादा था, परंतु वे वेदों की उम्र सर्वोच्चता और आत्मा के संचरण को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। दयानन्द सरस्वती जी संपूर्ण भारत के भ्रमण पर निकल पड़े। उन्होंने हिंदू लोगों में जाकर और तर्क प्रस्तुत कर, हिंदू धर्म पर बोझ बन गई परंपराओं को त्यागने का आह्वान किया। जहां शिक्षित वर्ग से उन्हें समर्थन मिला, वहीं ब्राह्मणों ने उनका विरोध किया। एक हिंदू व्यक्ति का तर्क को आधार मानकर चिंतन करना, ब्राह्मणवाद के लिए बहुत बड़ा खतरा था। उन्होंने दयानन्द के रास्ते में कांटे बोने शुरू कर दिए। दयानन्द जी अब समझ चुके थे कि। हिंदू धर्म में इस तरह जागृति नहीं पैदा की जा सकती। इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से काम किया जाना चाहिए। योजनाबद्ध तरीके से ही वे अपने विचारों और तर्कों को दुनिया के सामने दृढ़ संकल्प के साथ रख सकते थे। अपने जीवन के इस मिशन को पूरा करने के लिए उन्होंने 10 अप्रैल, 1875 को बॉम्बे में आर्य समाज की स्थापना की और विभिन्न स्थानों पर आर्य समाज की शाखाएं स्थापित करने में अपना शेष जीवन व्यतीत किया। दयानन्द के सुधारवादी उत्साह ने रुढ़िवादी हिंदुओं को परेशान किया। तो वहीं शिक्षित और आधुनिकता के पक्षधर हिंदू उनके पीछे लामबंद हो गए। दयानन्द सरस्वती जी शिक्षित और प्रबुद्ध हिंदुओं का नेतृत्व करने में सक्षम थे। उन्हें भारतीय इतिहास के महान नायकों में से एक माना जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। एक नायक के गुण उनमें कूट-कूट कर भरे थे। दयानन्द सरस्वती जी ने पहले अपना लेखन संस्कृत भाषा में शुरू किया था। किन्तु धीरे-धीरे वे अपना लेखन हिंदी भाषा में करने लगे। उन्हें हिंदी भाषा से प्रेम था। उनका हिंदी प्रेम उनके अखंड राष्ट्र के सपने को प्रतिबिंबित करता था। वे भारत की आम भाषा के रूप में अंग्रेजी की बजाए हिंदी भाषा को देखना चाहते थे। उनका लेखन मुख्यतया दो ही भाषाओं में लिखा गया है- संस्कृत व हिंदी। वे हिंदी को बढ़ावा तो देना चाहते थे, परंतु अंग्रेजी का विरोध करके नहीं। हिंदी भाषा के उत्थान के लिए स्वामी दयानन्द जी ने शानदार कार्य किया। हिंदी भाषा उनके इस योगदान के लिए सदा ही उनकी ऋणी रहेगी। दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी पुस्तकों में संपूर्ण वेदों का सार व्यक्त किया है व उसे सरल शब्दों में मनुष्य को आज के समयानुसार समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने लगभग साठ पुस्तकों की रचना की है। दयानन्द सरस्वती जी ने हिंदू धर्म में वेदों के उत्थान, उनकी भूमिका व उनके उद्देश्य के बारे में लोगों को बताने के

---

25. स्वामी दयानंद सरस्वती का शिक्षा दर्शन- प्रोफेसर विजय सिंह माली

लिए 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' पुस्तक लिखी। दयानन्द सरस्वती जी ने युवाओं को अपने व्यवहार और चरित्र को उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रेरित किया। उनके विचार आज भी युवाओं को चरित्रवान बनने के लिए प्रेरित करते हैं। आज 21 वीं सदी में भी युवा उनके विचारों से प्रेरित हैं। आज दयानन्द सरस्वती जी प्रत्यक्ष रूप से न सही परंतु अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय युवाओं को नेतृत्व व मार्गदर्शन कर रहे हैं। दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार उसी व्यक्ति का धर्म श्रेष्ठ है जिसका व्यवहार श्रेष्ठ है। दयानन्द सरस्वती जी ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली की आलोचना की थी। दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार एक शिक्षित व्यक्ति को विनम्र होना चाहिए और अच्छे चरित्र को धारण करना चाहिए। उन्हें वाणी और मस्तिष्क पर नियंत्रण रखना, उर्जावान होना, माता-पिता, शिक्षकों, बड़ों और अतिथि का सम्मान करना और बूरी आदतों से दूर रहना चाहिए।

उपसंहार- स्वामी दयानन्द सरस्वती जी उन सबसे महत्वपूर्ण सुधारकों और आध्यात्मिक बलों में से एक हैं जिन्हें देश ने हाल के दिनों में जाना है। शिक्षा संस्थानों की स्थापना, विशेष रूप से भारत के उत्तरी और पूर्वी हिस्सों में और हरिद्वार में गुरुकुल अकादमी के गठन से हिंदू शिक्षा के प्राचीन आदर्श और परंपराओं को पुनर्जीवित करने के लिए कई समाजवादियों की बहुत ही सही उत्सुकता का प्रतीक है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी भारतीयों के सामाजिक जीवन में एक क्रांति लेकर आए थे। आज स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के देहावसान को डेढ़ शताब्दी बीत चुकी है। अंग्रेज भारत पर शासन कर वापस चले गए। देश को स्वतंत्रता मिले हुए 75 वर्ष से ज्यादा समय हो चुका है। लेकिन आज भी देश की परिस्थितियां एक शताब्दी पूर्व की परिस्थितियों से ज्यादा भिन्न नहीं है। आज का युवा महापुरुषों की तरफ मार्गदर्शन के लिए देख रहा है। वह चलने के लिए एक सच्चा पथ चाहता है। आज का युवा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बताए पथ पर चलकर गर्व महसूस कर रहा है। वर्तमान समय में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का समाज दर्शन समस्त संसार का मार्गदर्शन कर रहा है।

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (21-31) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

राष्ट्रोन्नति हेतु वेद के राष्ट्रिय गीत की उपादेयता

-डॉ० निरुपमा त्रिपाठी

संक्षिप्तिका

आधुनिकतम विचारों के विविध सूत्रों से व्याप्त विश्व के प्राचीनतम ज्ञानकोष वेदों में जीवन के प्रत्येक सन्दर्भों के लिए उपयोगी एवं सार्थक उद्धरण प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद के 12वें काण्ड के प्रथम सूक्त, जिसे पृथिवी अथवा भूमि सूक्त कहा जाता है, में राष्ट्र की सुख-समृद्धि की कामना करने वाली प्रजा के लिए अपने कर्तव्यों के निर्वाह की उत्तम शिक्षा दी गई है। इस सूक्त में किसी विशेष कालखण्ड के किसी राष्ट्रविशेष की उन्नति के उपाय नहीं बताए गए हैं, अपितु सामान्य रूप से एक राष्ट्र की कल्पना करके उसके प्रति आदर रखने वाले लोगों के द्वारा करणीय आदर्श कार्यों का उपदेश दिया गया है। इसी कारण इस सूक्त को राष्ट्रिय गीत कहना समीचीन है। भूमि सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही सात शक्तियों का उल्लेख है जो किसी भी राष्ट्र को धारण करने के लिए आवश्यक हैं। अर्थात् राष्ट्र को अपने अस्तित्व में रहने के लिए इन शक्तियों का आश्रय लेना अनिवार्य है। ये हैं- महान् सत्य, महान् ऋत, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म-शक्ति तथा यज्ञ। मातृभूमि के भक्तों के द्वारा पृथिवी के स्तुतिपरक इस काव्यमय सूक्त के माध्यम से किसी भी राष्ट्र की उन्नति के तत्त्वों का ही गहनता से वर्णन किया गया है। इनका सीधा सम्बन्ध मानव-जीवन से है। मनुष्य की सम्पूर्ण सुख-समृद्धि एवं ऐश्वर्य का आधार भूमि ही है। अतः इसकी महत्ता का गान ही नहीं इसके संरक्षण के उपायों की चर्चा भी आवश्यक है। विवेच्य शोधपत्र में पृथिवी सूक्त में प्रतिपादित राष्ट्रहित के इन सात तत्त्वों को आधार बनाकर उन्नति के विविध उपायों की नवीन एवं प्रासङ्गिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

भूमिका

आधुनिकतम विचारों के विविध सूत्रों से व्याप्त विश्व के प्राचीनतम ज्ञानकोश वेदों में जीवन के प्रत्येक सन्दर्भों के लिए उपयोगी एवं सार्थक उद्धरण सहजता से

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

प्राप्त हो जाते हैं। निरुक्त के टीकाकार स्कन्द माहेश्वर ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि वेद-मन्त्रों की आध्यात्मिक, याज्ञिक आदि अनेक दार्शनिक व्याख्याएं हो सकती हैं-

सर्वदर्शनेषु च सर्वे मन्त्रा योजनीयाः।

आचार्य मनु की यह घोषणा अक्षरशः सत्य है जिसमें उन्होंने कहा है कि वेदज्ञ व्यक्ति सेनाओं का संघटन एवं संचालन तथा सम्पूर्ण भूमण्डल के चक्रवर्ती राज्य का संचालन कर सकता है-

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥[1]

वेदज्ञ व्यक्ति अपने कर्मजन्य सभी पापों को नष्ट कर सकता है। इतना ही नहीं वेदशास्त्र का मर्म समझने वाला व्यक्ति प्रत्येक आश्रम में, इहलोक में रहता हुआ भी मुक्ति प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है-

न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरुचिर्भवेत्।
आज्ञानाञ्च प्रमादाञ्च दहते कर्म नेतरत्॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥[2]

पाश्चात्य चिन्तन को आधार बनाकर ही राजनीति, राष्ट्रप्रेम, मातृभूमि-प्रेम आदि सन्दर्भों की व्याख्या सामान्यतया प्रस्तुत कर दी जाती है, किन्तु कतिपय आधुनिक विचारक भी हैं, जिन्होंने श्रुतियों के विभिन्न सन्दर्भों का तर्कपूर्ण व्याख्यान प्रस्तुत किया है। इनमें महामहोपाध्याय पण्डित विद्याधर शर्मा गौडवेदाचार्य जैसे विद्वान् द्वारा सम्पादित सन्ध्योपासन नामक पुस्तक में गायत्री मन्त्र के सवितुः पद का अर्थ स्थावर-जङ्गम रूप सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाला निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वर, किया गया है। पण्डित दामोदर सातवलेकर जी ने भी अपनी नवीन व्याख्याओं से वेद को अधिक लोकप्रिय बनाया।

इन विद्वानों से प्रेरणा लेकर जीवन के प्रत्येक पक्षों की वेदमूलक तथा वेदों को जीवन के प्रत्येक पक्षों से जोड़ते हुए उनकी अनुसन्धानात्मक एवं तुलनात्मक व्याख्या अपेक्षित है। आज आवश्यकता है वेदोक्त वाक्यों की इस दृष्टि से व्याख्या करने की जिससे सम्पूर्ण मानवता एवं राष्ट्र की व्यवस्था बनी रहे। राष्ट्र की व्यवस्था तथा सुरक्षा राजा के हाथ में है। धर्म परायण होकर ही वह राजा प्रजा को धर्मोन्मुख

---

1. भट्ट रामेश्वर, मनुस्मृति,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2011,12/100।
2. भट्ट रामेश्वर, मनुस्मृति,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2011,12/101,102।

कर सकता है। शुक्रनीति में कहा गया है कि राजा जैसा आचरण करता है उसकी प्रजा भी वैसा ही आचरण करती है। राजा भी अपनी प्रजा के द्वारा किए गए पाप-पुण्य का फल भोगता है-

यस्याश्रितो भवेल्लोकस्तद्वदाचरति प्रजा।
भुङ्क्ते राष्ट्रफलं सम्यगतो राष्ट्रकृतं त्वघम्।।[3]

इसी प्रकार जिस राजा के राज्य में प्रजा अपने अपने धर्म में तत्पर रहती है वह राजा स्वयं धर्म और नीति के मार्ग पर चलता हुआ यशस्वी होता है-

स्वस्वधर्मपरो लोको यस्य राष्ट्रे प्रवर्तते।
धर्मनीतिपरो राजा चिरं कीर्तिं स चाश्नुते।।[4]

स्पष्ट है कि राजा तथा प्रजा दोनों का सदाचरण राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा नामक ऋषियों को सर्वप्रथम वेद का ज्ञान दिया। सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रवाहमान यह ज्ञान-धारा आज भी प्रत्येक सन्दर्भों के लिए उपयोगी है। राष्ट्र की उन्नति की कामना करने वाले लोगों को अपने देश की भूमि के प्रति कैसा आचरण करना चाहिए,यह वेदों में अनेकशः वर्णित है। विशेषरुप से अथर्ववेद के 12 में काण्ड के प्रथम सूक्त, जिसे भूमि सूक्त अथवा पृथिवी सूक्त कहा जाता है, में केवल पृथिवी की वन्दना ही नहीं की गई है अपितु अपनी मातृभूमि के प्रति आदर-भाव रखने वाले लोगों का उसके प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए, इसका भी निर्धारण किया गया है, जिसका पालन करके ही कोई भी राष्ट्र सब प्रकार की सुख समृद्धि से युक्त होकर अपराजेय बन सकता है।

विमर्श का उद्देश्य

पृथिवी सूक्त में एक आदर्श राष्ट्र की जो कल्पना की गई है वह किसी विशेष देश अथवा राष्ट्र की नहीं है। वह अखण्ड भूमण्डल के लिए है। इस सूक्त का देवता अर्थात् उसका प्रधान प्रतिपादन भूमि ही है जिसे धर्मणा धृता कहा गया है, वह औषधियों को भी उत्पन्न करने वाली है-

विश्वस्वं मातरमोषधीनाँ ध्रुवाँ भूमिँ पृथिवीँ धर्मणा धृताम्।
शिवाँ स्योनामनु चरेम विश्वहा।।[5]

---

3. मिश्र जगदीश चन्द्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2009 ई., शुक्रनीति, 4/3/5।
4. मिश्र जगदीश चन्द्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2009 ई., शुक्रनीति, 4/3/6।
5. अथर्ववेद, 12/1/17

कोई भी राष्ट्र धर्म द्वारा ही धारित रहता है। जितनी मात्रा में धर्म हो उतनी ही मात्रा में वह राष्ट्र उन्नति करता है। भूमि सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही सात तत्त्वों का उल्लेख किया गया है जो राष्ट्र की उन्नति के मूल तत्त्व कहे गए हैं। वे हैं- महान् सत्य, महान् ऋत, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्मशक्ति तथा यज्ञ। पृथिवी सूक्त को राष्ट्रीय गीत कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें एक आदर्श राष्ट्र की कल्पना करके उसे उसके राष्ट्रभक्त प्रजाजन द्वारा एक ओर उसकी महिमा का काव्यमय वर्णन है दूसरी ओर राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास के लिए आवश्यक तत्वों पर भी गम्भीरता से प्रकाश डाला गया है। वेद मानव-जीवन के लिए उपदेशक हैं। इस दृष्टि से यह पृथिवी सूक्त रूपी राष्ट्रिय गीत मानव मात्र के लिए है। इसी कारण इसमें वर्णित सात तत्त्वों की वर्तमान प्रसङ्गों के अनुकूल व्याख्या अपेक्षित है।

विमर्श

स॒त्यं बृ॒हदृ॒तमु॒ग्रं दी॒क्षा तपो॒ ब्रह्म॑ य॒ज्ञः पृ॑थि॒वीं धा॑रयन्ति।
सा नो॑ भू॒तस्य॒ भव्य॑स्य॒ पत्न्यु॒रुं लो॒कं पृ॑थि॒वी नः॑ कृणोतु॥[6]

अर्थात् महान् सत्य, महान् ऋत उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ ये सात पृथिवी को धारण करते हैं। हमारे भूतकाल एवं भविष्य काल की पत्नी अर्थात् रक्षा-कर्त्री वह पृथिवी हमारे लिए विस्तृत लोक और स्थान को करे।

सामान्यतया यही धारणा प्रचलित है कि शासक ही राष्ट्र की नियति होता है। किन्तु वेदों का चिन्तन भिन्न है। उसके अनुसार सत्य, ऋत आदि सात तत्त्वों पर ही राष्ट्र की अभिवृद्धि निर्भर है। इन तत्त्वों का महत्त्व राजा और प्रजा दोनों के लिए है।

महान् सत्य

प्रायः कतिपय गुण ऐसे होते हैं जिनकी व्यष्टि की दृष्टि से जितनी उपयोगिता होती है, उतनी ही समष्टि की दृष्टि से भी होती है। सत्य इसी प्रकार का गुण है। सत्य को धारण करना मनुष्य के वैयक्तिक जीवन के सुचारु संचालन के लिए तो आवश्यक है ही, वह राष्ट्र के समष्टिगत संचालन के लिए भी आवश्यक है। सत्य के महत्त्व को समझते हुए ही उपनिषद्कार ऋषियों ने सत्यं वद, सत्यान्न प्रमदितव्यम्,[7]

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः,[8]

---

6. अथर्ववेद, 12 /1
7. गोयन्दका, हरि कृष्ण दास, ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2040, तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/11
8. गोयन्दका, हरि कृष्ण दास, ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2040, मुण्डकोपनिषद्, 3/1/6

तथा का उद्घोष किया है।

आचार्य मनु ने सत्य को दस धर्म-लक्षणों में स्थान दिया है।[9] महाभारत में भी सत्य का महत्त्व प्रतिपादित है। सत्य क्या है इस प्रकार की जिज्ञासा किये जाने पर भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि सम्पूर्ण लोक में समता, दम, त्याग, मात्सर्य आदि सत्य के त्रयोदश स्वरूप हैं, जिनकी प्राप्ति धर्मानुकूल कर्तव्यपालनरूप योग से होती है, यही परम यज्ञ भी है-

सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः।
अमात्सर्यं क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षानसूयता॥

त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश॥

सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च।
सर्वधर्माविरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते॥[10]

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि ने सत्य को पाँच यमों में स्थान दिया है।[11]

साधनपाद के सूत्र सत्य-प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।[12] की व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है कि सत्याचरण का ठीक-ठीक फल यह है कि जब मनुष्य निश्चय करके केवल सत्य को ही मानता बोलता और करता है तब वह जो योग्य काम करता है और करना चाहता है वे वे सफल हो जाते हैं।[13] अथर्ववेद में वरुण को सत्यासत्य का निर्णय करने वाला तथा असत्यभाषी को दण्डित करने वाला कहा गया है।[14] ऋग्वेद में भी शत्रुओं से रक्षा हेतु अग्नि की स्तुति की गई है। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में ऋषियों ने जिस अग्नि को प्रज्वलित किया वे सत्य से परिपूर्ण हैं।[15] पृथिवी सूक्त के मन्त्र में सत्य आदि के

---

9. भट्ट, रामेश्वर, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2011, 6/92
10. महाभारत, शान्तिपर्व, 162/8,9,10
11. श्रीवास्तव, सुरेश चन्द्र, पातञ्जलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी 2008 ई., साधनपाद, 30
12. श्रीवास्तव, सुरेश चन्द्र, पातञ्जलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी 2008 ई., साधनपाद, 36
13. ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका, उपासना प्रकरण
14. अथर्ववेद, 4/16/6
15. ऋग्वेद, 4/25/1,2

साथ बृहद् विशेषण दिया गया है जिसका अर्थ होता है महान्।[16] इस विशेषण का अभिप्राय यही है कि किसी भी राष्ट्र के निवासियों में महान् सत्य रहना चाहिए अर्थात् उनके जीवन का एक भी क्षण सत्य के बिना नहीं रहना चाहिए।

ऋत

सत्य के पश्चात् ऋत को पृथिवी का धारक कहा गया है। ऋत एक महत्त्वपूर्ण वैदिक शब्द है। वेदों में अनेकत्र ऋत और सत्य का प्रायःयुग्म के रूप में प्रयोग मिलता है। परन्तु इनमें भेद है। वेदों में यह शब्द सत्य-ज्ञान का बोधक होता हुआ जगत् के सत्य नियमों का परिचायक हो जाता है। इन्हीं नियमों द्वारा परमात्मा सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करता है। यज्ञ में भी ऋत का सन्निवेश वेदो में किया गया है। यज्ञ की व्यवस्था ऋत पर ही आश्रित है। अग्निसूक्त में अग्नि को गोपा ऋतस्य कहा गया है।[17] पृथिवी तथा द्युलोक ऋत की सत्यता पर ही विस्तृत हैं-

आ यस्तताऩ रोदसी ऋतेऩ नित्यं मृजन्ति।[18]

ऋत का उदय सृष्टि के आरम्भ से ही माना जाता है। यह वह सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक नियम है जिसके द्वारा विश्व नियत रूप से परिचालित होता है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि अपनी-अपनी कक्षा में नियत समय और गति के साथ घूमते हैं। प्रकृति भी इन्हीं नियमों का पालन करती है।[19]

राष्ट्र के लोगों में ऋत होना चाहिए, इसका अभिप्राय यही है कि उन्हें ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाले भौतिक तथा आत्मिक नियमों का सच्चा ज्ञान होना चाहिए जिसके अनुसार उनका आचरण हो सके। मन्त्र में प्रयुक्त वृहद् विशेषण ऋत के साथ भी सम्बद्ध हो सकता है।

उग्रम्

इस शब्द को शक्ति एवं तेज वाले क्षत्रिय का वाचक माना जा सकता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में इसका एक शक्तिशाली जातिविशेष के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है-

---

16. अमरकोष, 3/1/60
17. ऋग्वेद, 1/1/7
18. ऋग्वेद, 5/1/7
19. उपाध्याय बलदेव, संस्कृत-साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी 2001 ई. पृष्ठ, 86

तद् यथा राजानमायान्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽन्नैः पानैरावसथैः प्रतिकल्पन्तेऽयमायात्ययमागच्छतीत्येवं हैवंविदं सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्पन्त इदं ब्रह्मायातीदमागच्छतीति।

तद् यथा राजानं, प्रयियासन्तमुग्राः प्रत्येनसः,.....[20]

ऋग्वेद में एक स्थल पर प्रयुक्त उग्र शब्द शक्तिशाली पुरुष का बोध करा रहा है-

भगमुग्रोऽवसे जोहवीति.....।[21]

ऋग्वेद में ही उग्रदेव का उल्लेख है, जिसे शक्तिशाली रक्षक के रूप में माना जा सकता है।[22] कोष के आधार पर भी उग्र का सम्बन्ध शक्ति ही प्रतीत होता है।[23]

इस प्रकार यदि उग्र को शक्ति का बोधक मान लिया जाए तो इस तत्त्व की आवश्यकता राष्ट्र के संचालन की दृष्टि से अधिक है। राष्ट्र के शासनकर्ता को साधु, असाधु, सज्जन, दुष्ट आदि भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले लोगों से व्यवहार करना होता है। अतः इनसे यथा योग्य व्यवहार हेतु सौम्यता के साथ ही उग्रता की भी आवश्यकता होती है। संस्कृत वाङ्मय में ब्रह्म एवं क्षत्र का वर्णन प्राप्त होता है। ब्रह्म तत्त्व सौम्य और आध्यात्मिकता को सूचित करता है तथा क्षत्र तत्त्व उग्रता, तेज तथा वर्चस्व का प्रतीक है। इन दोनों गुणों का सामंजस्य ही राष्ट्र को कल्याण के मार्ग पर ले जाता है यजुर्वेद में कहा गया है-

यत्र ब्रह्म॑ च क्ष॒त्रं च॑ सम्यञ्चौ॒ चर॑तः सह।
तँ लो॒कं पुण्य॒ं प्रज्ञे॑षं॒ यत्र॑ दे॒वाः स॒हाग्निना॑।।[24]

उग्र का दण्ड से साम्य माना जा सकता है। मनु ने दण्ड को वह आवश्यक तत्त्व बताया है जिसके बल पर राजा अपनी प्रजा पर शासन करता है-

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।[25]

---

20. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4/3/37,38
21. ऋग्वेद, 7/38/6
22. ऋग्वेद, 1/36/18
23. अमरकोष, 1/1/32,1/7/20
24. यजुर्वेद 20 /25
25. भट्ट रामेश्वर, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2011, 7/18

राष्ट्र में इस प्रकार की उग्रता रूप दण्ड का भाव न रहे तो प्रजा निर्भय एवं निशङ्क नहीं रह सकती। यह अनुभवसिद्ध है कि सम्यक् उग्रता के अभाव में ही राष्ट्र पतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। राष्ट्र में अनाचार व्याप्त है। इस पर विराम लगाने के लिए दण्ड-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना आवश्यक है। इसीलिए उग्रता को राष्ट्र को धारण करने वाले तत्त्वों में स्थान दिया गया है।

दीक्षा

किसी कार्य को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प ही दीक्षा है। राष्ट्र की उन्नति के इच्छुक एवं साधक लोगों को स्वयं को सर्वात्मना राष्ट्रहित में समर्पित करना होता है। राष्ट्र के प्रति उनकी संकल्पबद्धता ही दीक्षा है। जिस प्रकार किसी विशेष यज्ञ को सम्पन्न करने से पूर्व यजमान यज्ञ कर्म में दीक्षित होता है, व्रतेन दीक्षामाप्नोति मन्त्र को पढ़कर संकल्पनिष्ठ होता है, उसी प्रकार पृथ्वी को धारण करने वाले क्षत्रिय सम्राट् को भी अपने व्रत की दीक्षा लेनी पड़ती है। यज्ञ दीक्षा के भंग होने पर यजमान जैसे स्वयं को पापिष्ठ अनुभव करता है वैसे ही राष्ट्र-निवासियों को राष्ट्र के उत्थान के प्रति आरम्भ किए गए कार्यों को मध्य में छोड़ देने पर अनुभव करना चाहिए। इसीलिए यह दीक्षा भी एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। दीक्षा का अर्थ पुराने जीवन का समापन तथा नवीन दिव्य जीवन का आरम्भ भी लिया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि-

गर्भो वा एष भवति यो दीक्षते, छन्दांसि प्रविशति, गर्भो दीक्षितः।[26]

अनृत से हटकर ऋत एवं सत्य की ओर प्रवृत्त होना ही दीक्षित होना है। वाजसनेयी संहिता में कहा गया है-

इ॒द॒म॒हमनृ॑तात् स॒त्यमुपै॑मि।[27]

इसी प्रकार ऐतरेय एव कौशितकी ब्राह्मण के अनुसार-

दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्[28]
सत्यं वदति स दीक्षितः[29]

इस प्रकार सत्य और ऋत को धारण करने के लिए दीक्षा की उपयोगिता सिद्ध है।

---

26. शतपथ ब्राह्मण, 3/2 /1/6
27. वाजसनेयी संहिता, 1/5
28. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/6
29. कौशितकी ब्राह्मण,7/6

तप

मातृभूमि का हितचिन्तन करने वाले व्यक्तियों से तपःपूर्ण जीवन-शैली की अपेक्षा की गई है। इसीलिए पृथिवी के धारक तत्त्वों में तप को स्थान दिया गया है। तप से आशय शरीर को पीडित करना नहीं, अपितु कष्ट-सहिष्णुता, सुख-दुःख, शीत-ताप, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वों को सहन करने से है। कष्टों को सहन करते रहने से व्यक्ति को व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रिय कर्तव्य-पालन में सरलता होगी। तप का प्रजनन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। ब्लूमफील्ड के अनुसार तप का अर्थ प्रजनन की इच्छा से उत्पन्न गर्मी अथवा उष्णता है। यह शतपथ ब्राह्मण से भी प्रमाणित होता है जहाँ तप को अग्नि कहा गया है तथा प्रजनन से भी इसका सम्बन्ध बताया गया है-

तपो वा अग्निः।[30]

प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास....., स ऐक्षत कथं नु प्रजायेयेति, सोऽश्राम्यत्, स तपोऽतप्यत सोऽग्नि मे मुखाज् जनयांचक्रे।[31]

इस प्रकार तप नामक तत्त्व राष्ट्र की सृष्टि-प्रक्रिया के निर्बाध चलते रहने की दृष्टि से भी आवश्यक तत्त्व माना जा सकता है।

ब्रह्म

तप के पश्चात् पृथिवी के धारक तत्त्वों में ब्रह्म का स्थान है। केनोपनिषद् में कहा गया है कि जिस तत्त्व का कथन वाक् न कर सके तथा जो वाक् को अभिव्यक्त करता है जो देश-काल से परे है, वह ब्रह्म है।

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।[32]

इसी उपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म बुद्धि, मन और इन्द्रियों से भी सर्वथा अतीत है। स्पष्ट है कि यहां ब्रह्म का अभिप्राय परम तत्त्व परमात्मा से है। संस्कृत वाङ्मय में ब्रह्म के ब्राह्मण, वेद आदि अन्य अर्थ भी प्राप्त होते हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी ब्रह्म शब्द का प्रयोग हुआ है।[33] ऋग्वेद में ब्रह्म अनेक स्थलों पर आया है।

---

30. शतपथ ब्राह्मण, 3/4 /3/2
31. शतपथ ब्राह्मण 2/5/1/1
32. गोयन्दका हरि कृष्ण दास, ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2040, केनोपनिषद्
33. शतपथ ब्राह्मण, 14/6 /10/18

वहाँ ब्रह्मन् पुरोहित अथवा देवताओं की प्रशंसा करने वाला, अर्थ में प्रयुक्त है।[34] पृथिवी सूक्त में पृथिवी को धारण करने वाले जिस ब्रह्म का उल्लेख किया गया है उसका यह अर्थ अधिक समीचीन है कि राष्ट्र के राजा एवं प्रजा में ब्राह्मणत्व अर्थात् वेद, विज्ञान, विद्या और तप आदि गुणों से युक्त ब्रह्म तत्त्व रहना चाहिए। उसकी विद्यमानता से ही व्यक्ति तत्त्वदर्शी बन सकता है तथा ऐसा व्यक्ति ही राष्ट्र-उत्थान में स्वयं को समर्पित कर सकता है।

यज्ञ

ऋग्वेद काल में यज्ञ शब्द यजन, पूजन तथा अग्नि को आहुति देने आदि अनुष्ठानपरक कार्य के लिए ही प्रयुक्त होता रहा है। यजुर्वेद में अनेकशः यज्ञ को सुखकारक, रोगनाशक, दीर्घायु, पूर्णता तथा आनन्द प्रदान करने वाला कहा गया है, विष्णु से यज्ञ की रक्षा हेतु प्रार्थना भी की गई है-

ध्रुवा ऽअ॑सदन्नृ॒तस्य॒ योनौ॒ ता वि॑ष्णो पाहि पा॒हि य॒ज्ञं पा॒हि य॒ज्ञप॑तिं पा॒हि मां य॑ज्ञ॒न्यम्।[35]

ब्राह्मण ग्रन्थों में वाग् घि यज्ञः, आपो वै यज्ञः, यो वै विष्णु स यज्ञःआदि के रूप में इसका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के एक भाष्य में यज्ञ का अर्थ किया गया है कि- सामुदायिकं योगक्षेममुद्दिश्य समुदायांगतया क्रियमाणं कर्म यज्ञ। इसके अनुसार लोकोपकार के उद्देश्य से किया जाने वाला कार्य यज्ञ है। यज्ञ शब्द यज धातु से बना है इसका एक अर्थ संगतिकरण भी होता है। इस दृष्टि से हमारे जो कार्य संगत होकर, मिलकर किए जाते हैं, वे सभी यज्ञ कहलाने के योग्य हैं। इस प्रकार राष्ट्र के लोगों में ऐसी यज्ञशीलता की प्रवृत्ति बनी रहनी चाहिए जिससे वे राष्ट्र-कल्याण में परस्पर सम्मिलित भाव से कार्य करते हुए उसे उन्नति के मार्ग पर सतत ले जाने के लिए प्रयासशील रहें। इसी हेतु पृथिवी को धारण करने वाले तत्त्वों में यज्ञ को भी स्थान दिया गया है।

निष्कर्ष

जिस राष्ट्र के लोगों में यह सातों महाशक्तियाँ विद्यमान रहेंगी अर्थात् जहाँ की भूमि में ये सातों तत्त्व विद्यमान होंगे, वह राष्ट्र सदा स्थिर रहेगा। उसकी उन्नति सदा होती रहेगी और उसके गौरव में भी वृद्धि होगी। इस रूप में पृथिवी सूक्त एक अद्भुत काव्य है, जिसके प्रथम मन्त्र में ही इतना गहन राष्ट्र-कल्याण-चिन्तन है।

---

34. ऋग्वेद, 1/80/1
35. यजुर्वेद, 2/6

यह सूक्त धरती के उपासक राष्ट्र-भक्तों का संगीत है, जो मानवमात्र को मातृभूमि के प्रति समर्पित कर उन्हें उल्लसित करता है। प्रजा के सकल सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य का हेतु एकमात्र हमारी पृथिवी है। अतः इस भाव को अंगीकार करके उसकी भाँति-भाँति से वन्दना तथा उसके सकल गुणों की एकत्र उपस्थापना भूमि सूक्त में की गई है, इस कारण उसे वेद का राष्ट्रिय गीत कहना भी सर्वथा समीचीन है। इस राष्ट्रिय गीत की उपादेयता राष्ट्रहित में असन्दिग्ध है।

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (32-40) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

सांस्कृतिक भारत की दृष्टि से पुराण साहित्य का महत्त्व

-रवि कुमार दुबे*

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उस राष्ट्र का प्राण होती है, जिसके बिना राष्ट्र की कल्पना करना असम्भव है। इस लेख में भारतवर्ष की संस्कृति को दृष्टिगत करते हुये पुराणों के महत्त्व को चित्रित किया जा रहा है।

अधोलिखित श्लोक के आधार पर सत्यवती पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास, जिनको पुराणों का रचयिता कहा जाता है, उन पुराणों का सार कहा गया है-

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्॥

अर्थात् अठारहों पुराणों में परोपकार को पुण्य तथा दूसरों को पीड़ा पहुँचाना ही पाप है। भारतीय संस्कृति के मूल में भी "अहिंसा परमो धर्मः"[1] है। अहिंसा के कारण ही दया से युक्त होकर ऋषि बाल्मीकि एक हिंसक निषाद को शाप देते हुये लौकिक जगत् की पहली कविता की रचना की, जो स्वयं उनके कण्ठ से निकलकर मुख तक आ गयी। श्लोक इस प्रकार है-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥[2]

अर्थात् निषाद के द्वारा क्रौञ्च पक्षियों के जोड़े में से काम भावना से ग्रस्त एक का वध कर दिया गया। यह देखकर ऋषि वाल्मीकि ने निषाद को अनन्त वर्षों तक प्रतिष्ठा न प्राप्त करने का शाप दिया। अर्थात् भारतीय संस्कृति दया, परोपकार आदि से युक्त है।

मुख्य रूप से भारतीय संस्कृति के चार स्तम्भ है- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। प्रथम स्तम्भ धर्म की व्याख्या पुराण तथा अन्य शास्त्रों में अलग-अलग ढ़ंग से की गयी है। श्रीमद्भावगत महापुराण के अनुसार-

---

* शोध छात्र, वैदिक साहित्य, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार।

1. महाभारत अनुशासन पर्व, अध्या० 116, श्लो० 28, गीता प्रेस
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक 15, गीता प्रेस

वेद प्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम।।[3]

अर्थात् वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है वही धर्म है तथा उसके विपरीत अधर्म है।

मनुस्मृति में धर्म के चार मूलतत्व कहे गये हैं-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[4]

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार और अपने आत्मा को प्रिय लगना ये चार धर्म के मूल तत्व हैं।

भारतीय संस्कृति में वेदों की परम प्रामाणिकता जगत विख्यात है। अष्टादश पुराण इन्हीं के स्वारस्य का उपादान करके कथा, आख्यायिका आदि के माध्यम से जनसामान्य को उपकृत करते हैं इसी रहस्य को स्कन्दपुराण में अधोलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है-

तिस्त्रो विद्या इमा मुख्याः सर्वशास्त्र विनिर्णये।
पुराणं पञ्चमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्।।[5]

पुराणों के अनुसार नदी, पर्वत, पशु, पक्षी, हवा-पानी तथा विद्वान्, चाण्डाल आदि सब पूजनीय है तथा सब में सम दृष्टि रखने की प्रेरणा दी गयी है, श्रीमद्भगवतगीता में भी समदृष्टि क लिए अधोलिखित श्लोक है-

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चौव श्वपाके च पंडिताः सम दर्शिनः।।[6]

अर्थात् सौहार्द और समदृष्टि ही सुख का मूलाधार है अतः विद्वान् जन विद्यायुक्त विनम्रब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल सब में समदृष्टि रखते हैं।

पुराण समय की आवश्यकता थी क्योंकि वैदिक भाषा जन सामान्य के लिए दुरूह होने लगी थी और तत्कालिक परिस्थितियों के कारण ही वेद के रहस्य को पुराण कथाओं द्वारा सहज, सरल और सरस रूप में प्रतिपादित करके उसे लोक चेतना में स्थापित किया।

---

3. श्रीमद्भागवत पुराण, षष्ठ स्कन्ध, अध्याय 1, श्लोक 40
4. मनुस्मृति - 2.12
5. स्कन्द पुराण रेवाखण्ड 1, 18
6. श्रीमद्भगवद्गीता 5/18

यों तो श्रीमद्भागवत महापुराण में पुराणों के दस लक्षण बतलाये गये हैं तथापि पुराणों के पाँच लक्षण ही दशो लक्षणों को पूरा करते हैं–

सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ति रक्षान्तराणि च।
वंशों वंशानुचरित संस्था हेतुरपाश्रयः।[7]

उपरोक्त श्लोक के दश लक्षणों को अधोलिखित पुराण के पाँच लक्षणों में संक्षिप्त कर दिया गया है–

सर्गश्चा प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्च लक्षणम्।।[8]

उपरोक्त पाँच लक्षणों को लगभग सभी पुराणों ने स्पष्ट किया है तथा पाँचों लक्षणों में ही कथा व आख्यायिका के माध्यम से चारो पुरुषार्थो को अच्छी तरह से सजाकर रखा गया है। प्रथम लक्षण सर्ग सृष्टि के विषय को स्पष्ट करते हुए पूरी पृथ्वी के नदी, पर्वत, वन, समुद्र, द्वीप, अनेक प्रकार के जीव और वर्षों (देशों) को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत करता है। विष्णु पुराण के सात द्वीपों का उल्लेख निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट होता है–

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलाश्चापरो द्विज।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः।।[9]

प्रस्तुत सात द्वीपों का वर्णन श्रीमद्भागवत पुराण के पाँचवे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय में किया गया है तथा अन्य पुराणों में भी वर्णित है तथापि इनका उचित क्षेत्रफल न मिलने के कारण काल्पनिक कहकर इस पर ध्यान नहीं दिया जाता है। सातो द्वीपों में से तीन की पहचान हो गयी है जिसमें पहला जम्बू द्वीप तथा दूसरा कुश द्वीप, तीसरा शक द्वीप है।

कप्तान स्पीक ने मिश्र देश में बहने वाली अफ्रिकन नील नदी का उद्गम स्थान ढूँढ निकाला जो पुराण के अनुसार कुशद्वीप ही है।[10] कुशदेश तथा कुश के लोगों की जीवन शैली अनेकों पारसी अभिलेखों से प्राप्त हुआ है, अभिलेखों के अनुसार आधुनिक 'नूबिया' ही कुश द्वीप है।[11]

---

7. श्रीमद्भागवत पुराण 12/07/09
8. विष्णु पुराण 03/06/24, मारकण्डेय पुराण 134/13, अग्नि पुराण 01/14, भविष्य पुराण 02/059, वराह पुराण 02/04, स्कन्द पुराण (प्रभाष खण्ड), 02/84 आदि
9. विष्णु पुराण 2/2/5
10. पुराण विमर्श, बलदेव उपा०, प्रकाशन, चौखम्बा विद्याभवन सं० 2018 पृष्ठ 317
11. पुराण विमर्श, बलदेव उपाध्याय

जम्बूद्वीप के भारतादि नौ वर्षों में भारतवर्ष की सीमा अधोलिखित श्लोक से स्पष्ट की गयी है-

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।[12]
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

अर्थात् भारतवर्ष की उत्तरी सीमा हिमालय तथा दक्षिण में समुद्र है। मत्स्य पुराण के श्लोक में भारतवर्ष को हैमवत वर्ष कहकर सम्बोधित किया है-

वसन्ति तेषु सत्वानिनानाजातीनि सर्वशः।
इमं हैमवतंवर्षं भारतं नाम विश्रुतम्।[13]

भारतवर्ष की संस्कृति में ही चार युगों की तथा कल्प, मन्वन्तर की, स्वर्ग, मोक्ष, आश्रम, वर्ण व्यवस्था आदि की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है अन्यत्र कहीं नहीं जिसे विष्णु पुराण के श्लोक द्वारा इस प्रकार से कहा गया है-

चत्वारि भारतवर्षे युगान्यत्र महामुने।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित्।।[14]

भारतवर्ष को ही विष्णु पुराण द्वारा कर्मभूमि बतलाया गया है।[15]

भागवत पुराण के अनुसार भारतवर्ष को पहले अजनाभवर्ष[16] के नाम से जाना जाता था। मत्स्यपुराण में यह वर्णन किया गया है कि प्रजा के भरण पोषण तथा रक्षा करने के कारण मनु को 'भरत' की संज्ञा दी गयी-

भरणात् प्रजानाच्चैव मनुर्भरत उच्यते।
निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम्।।[17]

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार स्वायभुव मनु के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के नाभि, नाभि के पुत्र ऋषभ हुये जिनके सौ पुत्रों में सबसे बड़े भरत का राज्याभिषेक हुआ। इसी राजा भरत के नाम पर अजनाभ वर्ष का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भारतवर्ष के नौ भागों का वर्णन पुराण में इस प्रकार है- (1) इन्द्रद्वीप, (2) कसेरू, (3) ताम्रपर्ण, (4) गभस्ति मान, (5) नागद्वीप, (6) सौम्य, (7) गन्धर्व,

---

12. विष्णु पुराण 02/03/01
13. मत्स्यपुराण अध्याय 111 श्लोक 28
14. विष्णु पुराण 02/03/19
15. विष्णु पुराण 02/03/22
16. भागवत पुराण 05/07/03
17. मत्स्यपुराण 114, 5,6

(8) वारुण, (9) भारत।[18]

इन्द्रद्वीप अन्दमान (इन्द्रद्युम्न), नागद्वीप निकोबार, ताम्रपर्णी (लंका) सिंहलद्वीप, वारुणद्वीप-वोर्नियो और कसेरू-मलयद्वीप आदि को कालिदास के समय दीपान्तर नाम से पुकारा जाता था। भारतवर्ष के पराक्रमी नाविकों ने दुर्गम्य उत्तालतरंगमय सागर को पार करके पूर्वी द्वीपों, जावा सुमात्रा, बोर्नियो, फिलीपाइन्स आदि में अपनी सभ्यता और संस्कृति की पताका फहरायी।

पौराणिक कथा के अनुसार मान्धाता, युवनाश्व के पुत्र थे जो चक्रवर्ती राजा ही नहीं बल्कि सम्राट् थे।[19] केवल भारत का विजेता चक्रवर्ती होता था परन्तु सातों द्वीपों वाली पृथ्वी का विजेता सार्वभौम सम्राट् कहलाता था, जिसके सम्बन्ध में इस प्रकार श्लोक है-

यावत् सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वंतद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।।[20]

अर्थात् मान्धाता के समय में भारतीय संस्कृति पूरे पृथ्वी पर फैली हुयी थी। अन्य भारतवंशी राजा भी चक्रवर्ती हुये जैसे महाराज सगर, राजा रघु आदि जो सूर्यवंशी थे। इसी प्रकार चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा, ययाति आदि पराक्रमी चक्रवर्ती राजा थे।

भारतवर्ष के बाद भद्राश्व वर्ष है जो सम्भवतः चीन देश है। भद्राश्व शब्द का अर्थ कल्याण करने वाला घोड़ा है। मेरू पर्वत को केन्द्र मानकर अलग-अलग दिशाओं में स्थित द्वीपों की स्थिति का वर्णन किया गया है जैसे केतुमाल महाद्वीप, मेरू के पश्चिम में है यह चीन में बहने वाली वंक्षु नदी का प्रदेश है। उत्तरकुरू नामक देश आलताई पर्वत से लेकर उत्तरी समुद्र तक फैला हुआ है।

पुराण साहित्य की दृष्टि में नदियाँ देवी (माँ) और पर्वत रक्षक हैं। नदियाँ मोक्ष देने वाली हैं तो पर्वत गम्भीरता, अडिग, चिन्तामुक्त रहने का संदेश देता है। नदी, पर्वत हमारी भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंग हैं। यजुर्वेद के मन्त्र द्वारा स्पष्ट होता है कि नदियों के संगम स्थलों के आस-पास तथा पर्वत की गुफाओं में ज्ञानी और ऐश्वर्यवान लोग का निवास होता है।[21]

---

18. मत्स्यपुराण 114 - 7,8
19. श्रीमद्भागवत पुराण 09/06/29-30
20. विष्णु पुराण - 04/02/64 तथा वायु पुराण 88-86
21. यजु० 25-15

पुराणों में नद तथा नदियों का विस्तार से वर्णन किया गया है, जिनमें से सिंधु नामक नद का अपभ्रंश हिन्दु शब्द होकर हिन्दुस्थान हो गया। इसका विशाल जल प्रवाह, हिन्दुकुश और अफगानिस्तान के रास्ते से आने वाली यूनानी, ईरानी, उजबेक तथा तुर्की सेनाओं को रोक देता था। सिंधु नद की तरह ही ब्रह्मपुत्र, स्वर्णभद्र आदि महानद हैं। भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि जीवनदायी नदियों को गंगा माँ कहकर उनकी पूजा या सम्मान किया जाता है। सुवास्तु नाम की वैदिक नदी जिसे वर्तमान में स्वात नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस स्वात की घाटी में एक बीर जाति के लोगों का निवास था जिन्हें यूनानियों ने अस्सकेनोई और महर्षि पाणिनि ने 'अश्वकायन'[22] कहा है। अर्थात् नदियों के पास रहने वाले लोग बुद्धिमान और बलवान होते हैं। भारतवर्ष का समृद्ध प्रदेश पंजाब को कहा जाता है जो सिंधु तथा उसकी पाँच सहायक नदियों के बीच का भाग है ये पाँचों नदियाँ इस प्रकार हैं चिनाब जिसका पौराणिक नाम चन्द्रभागा है। रावी जिसका काशिका में उद्धेरावती नाम है। शेष तीन नदियाँ सतलुज, व्यास तथा झेलम हैं।

भारतवर्ष का विश्व प्रसिद्ध कुम्भ मेला पवित्र नदियों में स्नान का एक महान् पर्व है। देवताओं और असुरों द्वारा समुद्र मंथन से अमृत कुम्भ निकला, इस अमृत कुम्भ को असुरों से सुरक्षित रखने के लिए इन्द्र पुत्र जयंत ने अमृत कुम्भ को पृथ्वी पर बारह नदियों में एक-एकदिन छिपा कर रखा। यह देवताओं का एक दिन मनुष्यों के एक वर्ष के बराबर होता है अतः यह बारह वर्ष में एक बार होता है।[23] उत्तर भारत में यह कुम्भ पर्व हरिद्वार, प्रयागराज, उज्जैन तथा नासिक में क्रमशः गंगा, क्षिप्रा तथा गोदावरी नदियों में होता है परन्तु दक्षिण भारत में प्रति वर्ष यही पर्व पुष्कर पर्व के नाम से बारह नदियों में जब बृहस्पति ग्रह मेष राशि में प्रवेश करता है उसके दूसरे दिन से बारह दिनों तक रहता है।

बारह स्थानों तथा नदियों का नाम इस प्रकार से है। मेष राशि में (भागीरथी) हरिद्वार, वृष में (नर्मदा) ओंकारेश्वर, मिथुन में (सरस्वती) कुरुक्षेत्र के पास, कर्क में (यमुना) मथुरा वृंदावन, सिंह में गोदावरी (राजमुन्दरी), आंध्र प्रदेश कन्या में (कृष्णा) (विजयवाड़ा आ०प्र०), तुला में (कावेरी) कुम्भ कोणम, वृश्चिक में (भीमरथी) (गुलवर्गा कर्नाटक), धनु में (ब्रह्मपुत्र) लोहित गंगा गौहाटी, मकर में (तुङ्गभद्रा) मन्त्रालयम (आ०प्र०), कुम्भ में (सिन्धु नद) लेह-लद्दाख, मीन में (प्रणीता) कालेश्वर वारंगलतेलङ्गाना।

---

22. पाणिनी अष्टा० . 04/01/19
23. विष्णु पुराण 1/9

इन्द्र के पुत्र जयन्त ने अमृत कुम्भ को बारह नदियों में अलग-अलग बारह दिन छिपाये थे परन्तु उत्तर भारत का चार महाकुम्भ केवल तीन नदियों में ही किये जाते हैं अर्थात् चौथी नदी पर शोध होना चाहिए। शेष आठ स्नान दिव्य लोकों में माने जाते हैं।

पर्वतों में कैलास पर्वत भारतीय संस्कृति में आध्यात्म का प्रमुख केन्द्र है बल्कि इसे आध्यात्मिक शिखर कहना उचित होगा।[24] पुराणों का सुमेरू पर्वत कैलास ही है। सुमेरू पर्वत को पुराणों में स्वर्ण पर्वत भी कहा गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि सूर्य के प्रकाश में दिन भर में इसका रंग बदलता रहता है। सुबह में गुलाबी रंग, दोपहर में स्वर्ण रंग तथा चाँदनी रात में चाँदी के रंग जैसा दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जैसा कि पुराणों में वर्णन किया गया है कैलास पर्वत भगवान शिव का निवास स्थान है। इसी स्थान पर मानसरोवर तथा राक्षस ताल है।

कैलास पर्वत से सिन्धु नद जिसे तिब्बती भाषा में 'ल्हा-छू' कहते हैं निकलकर वर्तमान में पाकिस्तान कराची में अरब सागर में मिल जाता है। दूसरी नदी सतलुज है जो कैलास से निकलकर हिमाचल प्रदेश के रास्ते सिन्धु में मिल जाती है। इसी प्रकार तीसरी नदी करनाली निकली है जो नेपाल के रास्ते भारत में आकर घाघरा नाम से पुकारी जाती है। यही नदी अयोध्या में पवित्र नदी सरयू है जो विहार के छपरा जिले में गंगा नदी में मिल जाती है। यह वेद की 'शतद्रु' तथा पुराणों की विपासा तथा परूशानी नदी है।

कैलास के दूसरे भाग से ब्रह्मपुत्र नद निकलता है जिसका तिब्बती नाम 'छंग-पो' है, यह तिब्बत को पार करके अरुणाचल और आसाम से बहते हुये गंगा नदी में मिलता है इसका एक नाम लोहित गंगा भी है। यह विश्व प्रसिद्ध सुन्दर वन डेल्ट को बनाता है।

नदियों के स्रोतों को भारतीय संस्कृति के अनुसार जो नाम दिये गये हैं उसका प्रभाव अन्य संस्कृतियों पर भी देखा जाता है। जैसे ब्रह्मपुत्र का स्रोत "अश्व मुख' जिसे तिब्बत में तमचोगखम्बव् कहते है। सतलुज का स्रोत "हस्तीमुख' लंचेन खम्बव्, करनाली का स्रोत "मयूर मुख" मप्चाखम्ब्व्, सिन्ध का स्रोत "सिंह मुख" सींगी खम्बव् आदि है।

---

24. लिंग पुराण पूर्व भाग अध्याय 80, श्लोक नं० 11-12

कैलास पर्वत विश्व के लिये धुरी के समान है। सभी पर्वतों में तथा कैलास में यह विशेष अन्तर है कि एक ही पत्थर में पूरा कैलास पर्वत है। कैलास (शिव जी का निवास) काशी विश्वनाथ (शिव जी का निवास) तथा रामेश्वरम (भगवान श्री राम द्वारा स्थापित) तीनों लगभग एक ही अक्षांश पर एक ही रेखा में स्थित है।

कैलाश पर्वत से सम्बन्धित नाम कैलास देश है, जिसे पुराणें में शिव जी का देश तथा कैलास देश की राजधानी अलकापुरी कहा गया है जिस नगरी को कुबेर की नगरी कहा गया है। कैलास देश वर्तमान में तिब्बत देश है, जिसकी राजधानी ल्हासा है। इसे पृथ्वी का सबसे ऊँचा स्थान या पृथ्वी का छत्र भी कहते हैं। कैलास देश पृथ्वी का स्वर्ग है। बौद्ध, जैन तथा हिन्दू उसी तरह पवित्र मानते हैं जैसे मानव शरीर का मूलाधार और सहस्त्रार चक्र को मेरूदण्ड जोड़ देता है तथा जिस प्रकार जप करते समय माला में बनाया गया पवित्र सुमेरू का अतिक्रमण नहीं करते अर्थात् नहीं लाँघते। **यही विष्णु पुराण में भी वर्णित है कि सुमेरू पृथ्वी का केन्द्र है।**[26] सुमेरू को ही आधार बनाकर पृथ्वी को वर्षों (देशों) में इस प्रकार से बाँटा गया है। मेरू पर्वत से दक्षिण की ओर भारतवर्ष, किंपुरुष वर्ष, हरिवर्ष है। उत्तर की ओर रम्यक वर्ष, हिरण्मय वर्ष उत्तर कुरुवर्ष इन सबके बीच में इलावृत्त वर्ष है।[27] पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर में क्रमशः मंदराचल, गंधमादन, विपुल तथा सुपार्श्व पर्वत है अर्थात् ये सब सुमेरू को चारो तरफ से घेरे हुये है।[28]

भारतीय संस्कृति के पुरुषार्थ चतुष्टय को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने में पुराण साहित्य की प्रमुख भूमिका है मुख्य रूप से पुरुषार्थ चतुष्टय को समझाने वाला आधार ग्रन्थ तो वेद ही है, परन्तु सामान्य जनों को वेद के मन्त्रों का अर्थ समझना दुष्कर है। वेद की भाषा प्राचीनतम होने के कारण अत्यन्त दुरूह है। वेदों में प्रतिपादित तत्व कहीं रूपक शैली में तो कहीं प्रतीकात्मक शैली में है। कतिपयपुराणों के द्वारा वेदार्थ का निरूपण सरल और सुबोध ढ़ंग से किया गया है जिसकी भाषा व्यावहारिक सरल, सहज, बोधगम्य तथा रोचक है।

---

25. लिंग पुराण पूर्व भाग अध्याय 80, श्लोक नं० 11-12
26. विष्णु पुराण 02/02/07
27. विष्णु पुराण 02/02/13-18
28. विष्णु पुराण 02/02/19

इतना ही नहीं बल्कि चारों वेदों का, षड् वेदांगों का तथा उपनिषदों का विद्वान व्यक्ति विचक्षण नहीं हो सकता, यदि वह पुराणों को नहीं जानता। ब्रह्माण्ड पुराण का अधोलिखत श्लोक यह स्पष्ट करता है–

यो वेद चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजाः।
पुराणं नैव जानाति न स स्याद् विचक्षणः॥[29]

29. ब्रह्माण्ड पुराण प्रक्रि 1/170

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (41-48) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

सुख का मूल सनातन धर्म

-डॉ० स्वामी परमार्थदेव*

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम्॥[1]

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥[2]

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान्॥[3]

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥[4]

"जो उच्च पद देनेवाले सनातन देवकी उपासना करता है, वह सुखी और अन्नयुक्त रहता है।" "उस देव को सनातन-पुराणपुरुष कहते हैं, परन्तु वह आज भी नया है।"

अर्थात् संसार के लिए वरणीय यह अग्नि प्रथम धर्म के अनुसार प्रज्वलित की गई है और समिधा आदि के द्वारा अच्छी तरह बढ़ रही है।

देवताओं ने यज्ञ के द्वारा यज्ञ किया। वे प्रथम धर्म थे। ऐसा यज्ञ करके या प्रथम धर्म पालन करके देव महिमा से मण्डित और स्वर्गलोक वासी हुए जहाँ पहले से साध्य और देव विद्यमान थे। प्रथम धर्म में यज्ञ से यज्ञ होता था। सृष्टि रचना के बाद यही प्रथम धर्म शाश्वत धर्म बन गया।

भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है, अनादिकाल से भारतीय ज्ञान परम्परा मानव मात्र के कल्याण के लिए धर्म, ज्ञान का पावन संदेश देती आ रही है। जिसके बिना

---

* सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

1. अथर्ववेद- 10.8.22
2. अथर्ववेद- 10.8.23
3. ऋग्वेद- 3.17.1
4. ऋग्वेद- 10.90.16

मानवीय व्यवहार कदापि यशस्वी नहीं हो सकता। धर्म शब्द को सुनते ही हमारे मन में जो पहला विचार आता है वह प्रचलित मत, पंथ, सम्प्रदाय (हिन्द, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि) के विषय में आता है, लेकिन धर्म वास्तव में वो नहीं है धर्म का सच्चा अर्थ हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों में बहुत ही स्पष्टता से बताया गया है, जो वास्तविक हमारा सच्चा कर्तव्य, आत्म कल्याण से विश्वकल्याण का है, जो मनुष्य जीवन को सार्थक करने वाला है तथा शाश्वत है, सदा रहने वाला है, जो संकीर्ण विचारधारा से तुच्छ स्वार्थ से आसक्ति से सर्वथा मुक्त है।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।[5]

जिस धर्म के विषय में पूर्ण स्पष्ट ज्ञान न होने से मनुष्य अनेक कष्टों को पाता है। परस्पर राग, द्वेष, छल, कपट, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अधर्म, अन्याय, अभाव, आशक्ति आदि दुःखों, द्वन्द्वों, दुर्गुणों में फंस जाता है। स्वयं का जीवन ही निरर्थक, सारहीन बनाता है तथा घर-परिवार, समाज, राष्ट्र की भी हानि करता है, इसलिए ज्ञान के सागर 4 वेद, 6 वेदाङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र धर्म का उपदेश देते हैं, जिनमें वेद प्रमुख हैं अन्य विद्यायें सहायिका हैं।

वैदिक धर्म मनीषियों ने आत्मकल्याण से विश्वकल्याण के लिये अर्थात् व्यष्टि से समष्टि के लिए धर्म का मर्म सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। जिसके धारण करने से मनुष्य मानव से महामानव, वामन से विराट्, नर से नारायण रूप होने का सामर्थ्य पाता है। सनातन धर्म के पालन से ही मानव का जीवन और जगत् अमृतत्व व दिव्यता से परिपूर्ण हो सकते हैं। यथा महाभारत में कहा भी गया है-

"सनातनोऽमृतोधर्मः"[6] "धर्म सनातन अमृत है", **"स हि धर्मः सनातनः"**[7], कर्मधारयसमासलभ्य सनातनधर्म का अर्थ है, सदा रहने वाला धर्म- **'सनातनश्चासौ धर्मश्च सनातनधर्मः', 'सनातनो धर्मः' सदा रहने वाला धर्म सनातन धर्म है।**[8]

धर्मः सनातनः सर्वपापनाशको मोक्षहेतुः"[9] सनातनधर्म सर्वपापनाशक और मोक्ष में हेतु है।"

---

5. याज्ञवल्क्य स्मृति, (आ.अ.उप.प्र. 1/3) डॉ. कमलनयनशर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2016 संस्करण।
6. महाभारत वनपर्व- 313.66
7. महाभारत उद्योगपर्व- 85.7
8. महाभारत उद्योगपर्व- 85.7
9. भस्मजाबालोपनिषत्-1

धर्म शब्द का वास्तविक अर्थ–

धर्मेति धारणे धातुमाहात्म्ये चैव पठ्यते।
धारणाच्च महत्त्वेन धर्म एष निरुच्यते॥[10]

"**धृ**– धातु धारण–पोषण और महत्त्व के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इसी धातु से धर्म शब्द निष्पन्न हुआ है। महत्त्वशील और धारक होने से यह 'धर्म' कहा जाता है।''

धृञ् धारणे धातु से 'मन्' प्रत्यय लगाकर धर्म शब्द बनता है। धृञ् का अर्थ धारण करना है। अर्थात् जिसे धारण किया जा सके वह धर्म है। **धरति धारयति वा लोकम्।** जिसे लोक धारण करे, **ध्रियते लोकः अनेन'' (इति धर्मः।)** जिससे लोक को धारण किया जाये वही धर्म है। **ध्रियते लोकयात्रानिर्वाहार्थं यः सः धर्मः।** जिसे लोकयात्रा का निर्वाह करने के लिए धारण किया जाये। वह ही धर्म है।

महाभारतकार ने धर्म की बड़ी रोचक व्याख्या की है–

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥[11]

"धर्म धारण करता है, अर्थात् अस्तित्व और आदर्श की रक्षाकर अधोगति से बचाता है, इसलिए उसे धर्म कहा गया है। धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रक्खा है। अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता हो, वही धर्म है; ऐसा सत्पुरुषों का निश्चय है।"

महर्षि मनु ने धर्म के 10 लक्षण बताये हैं–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥[12]

"धृति (संतोष), क्षमा, दम (निर्विकार मनः स्थिति, मनः संयम), अस्तेय, शौच (शुद्धि), इन्द्रियनिग्रह, धी (शास्त्रज्ञान), विद्या (आत्मज्ञान), सत्य और अक्रोध इन 10 लक्षणों को धारण करके व्यक्ति सच्चा धार्मिक बनता है। महाभारत में धर्म के 9 लक्षण बताये गये हैं–

अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययनं तपः।
अहिंसा सत्यमक्रोधः क्षमेज्या धर्मलक्षणम्॥[13]

---

10. मत्स्यपुराण– 134.17
11. महाभारत–शान्तिपर्व– 109.11
12. मनुस्मृति– 6.92, आ.सा.प्र. ट्रस्ट, दिल्ली 8वां संस्करण
13. महाभारत, शा.प. 12.17.05, वि.कु. गोविन्दरामहासानन्द, दिल्ली 2017

अर्थात् न दी हुई वस्तु को न लेना, दान देना, अध्ययन करना, तप करना, अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, क्षमा और यज्ञ करना ये 9 धर्म के लक्षण हैं।

धर्मशास्त्रों में जो कुछ कहा गया है उसका आधार वेद ही है। वेदों ने जिस नियम या आचरण को मान्यता दी है उसी आधार पर धर्मसूत्रों के नियमों की रचना हुई है। काल के साथ-साथ वैदिक कर्मों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। तब धार्मिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र एवं श्रौतसूत्रों की सृष्टि हुई ताकि विस्मृतिवश भी धर्मानुष्ठानों में विकृति नहीं आवे। गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वसिष्ठ, विष्णु, हारीत, शंख, लिखित, मानव, वैखानस, अत्रि, उशना, कण्व, कश्यप, गार्ग्य, च्यवन, जातुकर्ण्य, देवल, बुध, वृहस्पति, भरद्वाज, शातातप, सुमन्तु आदि महर्षियों ने धर्मसूत्रों की रचना की।

निरुक्त ने धर्म शब्द का अर्थ **'नियम'** बतलाया है। व्याकरण एवं निरक्त के अर्थों को ध्यान में रखकर धर्म उस नियम को कहा जा सकता है जिसने विश्व को धारण कर रखा है। अतः ऋषियों की वाणी **"धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्"** सत्य प्रतीत होती है।

श्रीमद्भागवतकार ने भी धर्म का मूल वेद को मानकर लिखा है कि-

"वेद प्रणिहितो धर्मोह्यधर्मस्तद्विपर्ययः"[14]

अर्थात् वेद ने जो नियम बनाया है, वही धर्म है, उसके विपरीत अधर्म है।

धर्म के पालन से रक्षा तथा उल्लंघन से नाश होना सुनिश्चित है इसीलिए कहा है-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥[15]

अर्थात् उल्लंघन किया हुआ धर्म ही व्यक्ति को नष्ट कर देता है और धर्म पालना से रक्षित धर्म ही व्यक्ति को सुरक्षित रखता है इसलिए धर्म का सदा पालन करें।

सनातन (शाश्वत) धर्म के विषय में और भी कहा है-

दुर्ज्ञेयः शाश्वतो धर्मः स तु सत्ये प्रतिष्ठितः।
श्रुति प्रमाणो धर्मः स्यादिति वृद्धानुशासनम्॥[16]

---

14. श्रीमद्भागवत- 6.1.40, गीता प्रेस, गोरखपुर 39वां संस्करण।
15. मनुस्मृति- 8.15
16. महाभारत- 197.39

सनातन धर्म को जान लेना कठिन है। वह सत्य में प्रतिष्ठित है। धर्म का प्रमाण वेद है, ऋषियों ने ऐसी शिक्षा दी है-

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः, स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः, कामो धर्ममूलमिंद स्मृतम्॥[17]

श्रुति स्मृति से प्रतिपादित मार्ग का अनुसरण सदाचार एक आत्मा का ज्ञान और शुभ संकल्प से जो इच्छा हो इसी को महर्षि मनु ने धर्म का मूल (जड़) बताया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के दशमसमुल्लास में मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के श्लोकों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि-

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥[18]

इसलिए सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपनी आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिस में न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो! जब कोई मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उस के आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिए वह कर्म करने योग्य नहीं।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥ मनु०॥

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्रीसेवनादि में नहीं फंसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय विना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता है।

अतः आत्म कल्याण से विश्वकल्याण की कामना से वदोक्त कर्म ही स्वधर्म है जिससे भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है।

अतः कहा जा सकता है कि **"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः"**[19] अर्थात् जिससे इहलोक में उन्नति और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। धर्म हमको उत्तरोत्तर उन्नति की ओर प्रवृत्त करता है। महाभारत में कहा है-

---

17. मनुस्मृति- 1.62
18. मनुस्मृति- 2.6
19. वैशेषिक दर्शन- 1.1.2
20. महाभारत शा.प. 28.14

धर्मे वर्धति वर्धन्ति सर्वभूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति हीयन्ते तस्मात् धर्मं प्रवर्धयेत्।।[20]

धर्म की वृद्धि होने पर सभी प्राणी सदा बढ़ते हैं, उसके ह्रास होने पर वे हीन हो जाते हैं, अतैव धर्म को बढ़ाना चाहिए। क्योंकि सम्पूर्ण सुखों का मूल धर्म ही है।

धर्म के बिना कोई सुखी नहीं रह सकता, इसलिए आचार्य चाणक्य भी कहते हैं-

सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलमर्थः (चाणक्यसूत्र 1-2) सुख का मूल धर्म है। धर्म का मूल अर्थ है। 'धर्म' का अर्थ है- अपने-अपने कर्त्तव्य का अनुष्ठान करना। चारों वर्णों एवं आश्रमों द्वारा अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही धर्म कहलाता है। धर्म का ज्ञान वेदत्रयी से होता है। अर्थशास्त्र में कहा गया है- **धर्माधर्मौ त्रय्ययाम्**- अर्थात् धर्म का ज्ञान वेदों से होता है। वेदानुसारिणी स्मृतियाँ भी धर्म का बोध कराती हैं। धर्म, अर्थ के द्वारा ही सब व्यवस्थायें बनती हैं और राष्ट्र में उत्तम शासन एवं धर्म की सुप्रतिष्ठा होती है। भारतीय वाङ्मय में सर्वत्र धर्म को ही सुख का मूल माना है। चरक-संहिता में इस तथ्य को निम्न प्रकार से कहा है-

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मं तस्माद्धर्मपरो भवेत्।।[21]

बिना धर्म के सुख की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए जो अपने जीवन में सुख चाहते हैं उनको धर्म का पालन अवश्य करना चाहिए। महाभारत में कहा है कि-

धर्मं चार्थं च कामं च यथावद्वदतांवर।
विभज्य काले कालज्ञः सर्वान् सेवेत पण्डितः।।[22]

बुद्धिमान धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का सेवन विमर्शपूर्वक यथासम्भव करें। वर्तमान काल में जो कामासक्त, धन के लोभी मनुष्य हैं वे बिना धर्म पालन के सच्चे सुख की कल्पना भी नहीं कर सकते धर्म पूर्वक अर्थ से ही समृद्धि की प्राप्ति होगी।

सर्वथा धर्ममूलोऽर्थो धर्मश्चार्थपरिग्रहः।
इतरेतर-योनी तौ विद्धि मेघोदधी यथा।।[23]

---

21. अष्टाङ्गहृदयम् 2.20 (आ. बालकृष्ण, दिव्यप्रकाशन 2014)
22. महाभारत, शा.प. 12.9.23
23. महाभारत- 34.29

अर्थात् अर्श की जड़ सर्वथा धर्म में है धर्म अर्थ में परिग्रहीत है, उनको ऐसा जानो कि वे दोनों एक-दूसरे के जन्मदाता हैं। जैसे बादल और समुद्र।

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्।।[24]

"जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि चाहता हो, उसे आरम्भ से धर्म का ही आचरण करना चाहिए। जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नहीं होता; वैसे ही धर्म से अर्थ पृथक् नहीं होता।"

धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।।[25]

"धर्म से अर्थ सुलभ होता है, धर्म से काम समुत्पन्न होता है, धर्म स्वयं धर्म ही है; अपवर्गरूप मोक्ष का अभव्यञ्जक भी धर्म ही है।"

निवृत्तिः परमो धर्मो निवृत्तिः परमं सुखम्।
मनसा विनिवृत्तानां धर्मस्य निचयो महान्।।[26]

"निवृत्ति परम धर्म है। निवृत्ति परम सुख है। जो मन सर्वविषयों से निवृत्त हो गये हैं, उन्हें विशाल धर्मराशि की प्राप्ति होती है।"

येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान्।
धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद् धनकाङ्क्षया।।[27]

"धर्म का पालन करते हुए ही जो धन प्राप्त होता है, वही सच्चा है। जो धन अधर्म से प्राप्त होता है, वह धिक्कार देने योग्य है।" परिस्थितियाँ कैसी भी हों।

स्वधर्माद् हि मनुष्याणां चलनं न प्रशस्यते।[28]

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह कभी भी अपने धर्म से विचलित न हो। क्योंकि-

अश्रद्दधाना धर्मस्य ते नश्यन्ति न संशयः।[29]

वे लोग अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं जो धर्म में श्रद्धा नहीं रखते।

---

24. महाभारत.उद्योग- 37.48
25. कूर्मपुराणपूर्व- 2.45
26. महाभारत. अनुशासनपर्व 145 दा.
27. महाभारत-शान्तिपर्व 292.19
28. महाभारत- 34.54
29. महाभारत- 198.44

सनातन धर्म ही सच्चा मानव धर्म है। इससे ही सुख की प्राप्ति होती है जिसके बिना मानवीय नैतिक मूल्यों का निर्वहन ठीक प्रकार से नहीं कर सकते। धर्म के बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र उन्नति के स्थान पर अवनति को प्राप्त होते हैं। वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मप्रेरणा से धर्म का मर्म समझकर जीवन को दिव्य बनाकर इस जगत् को भी दिव्य बनायें। स्वयं भी सुख, शान्ति, आनन्द में रहकर संसार को भी सुख, शान्ति व आनन्द प्रदान करें। संकीर्णभाव से ऊपर उठकर उदारभाव वाले बनें, उच्चभाव चेतना से युक्त व्यक्ति, राष्ट्र सर्वोत्तम, उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं और विश्वकल्याण की पावनी परम्परा का निर्वहन हम कर सकते हैं। सभी प्राणी सुख चाहते हैं जिसकी प्राप्ति सनातन धर्म के पालन से ही होगी।

।। सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।।

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 11, No. 22 (49-56) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

महाभारत में अपरिग्रह का स्वरूप

-सुमित सुहाग*

अपरिग्रह यम का पञ्चम अङ्ग है। परिग्रह = परि- चारों ओर से, ग्रह-ग्रहण करना अर्थात् चारों ओर से ग्रहण करना और उसको छोड़ देना 'अपरिग्रह' होता है (न परिग्रहः = अपरिग्रहः)। अपरिग्रह का भाव यह है कि आवश्यकता से अधिक उपभोग के साधनों का संग्रह नहीं करना चाहिए। अन्यथा उन साधनों को एकत्रित करने में ही बहुत सी शक्ति लग जायेगी, फिर उनकी रक्षा में शक्ति लगेगी और जब वे नष्ट होंगे तो अपार कष्ट होगा। योग दर्शन में अपरिग्रह की व्याख्या करते हुए महर्षि व्यास ने उल्लेख किया है कि **'विषयाणाम् अर्जन-रक्षण-क्षय-सङ्ग-हिंसा-दर्शनाद्-अस्वीकरणम् अपरिग्रहः'**[2] अर्थात् विषयों में उपार्जन, रक्षण, क्षय, हिंसा, दोष देखकर विषय भोग की दृष्टि से उनका संग्रह न करना, 'अपरिग्रह' है। महर्षि दयानन्द सरस्वती अनावश्यक दुर्गुणों के परित्याग को भी 'अपरिग्रह' की श्रेणी में रखते हैं। 'यथा अपरिग्रह' अर्थात् विषय और अभिमान आदि दोषों से रहित होना। (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता, स्वत्वाभिमान रहित होना उपर्युक्त संदर्भ में अपरिग्रह की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि- हानिकारक, अनावश्यक, भौतिक पदार्थ और ईर्ष्या, अभिमान, क्रोध आदि नकारात्मक विचारों को त्याग देना 'अपरिग्रह' कहलाता है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि योगी जब इस अपरिग्रह रूप यम का हृदय से पालन करता है तो इससे वह अपनी अहिंसा के स्वरूप को निखारता हुआ सबके प्रेम और श्रद्धा का पात्र बनता है।

भोजवृत्तिकार ने इसको संक्षेप में इस प्रकार निबद्ध किया है- **"अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः"** अर्थात् भोग-साधनों का स्वीकार न करना 'अपरिग्रह' है।[3] वैदिक संस्कृति में धन-सम्पत्ति, सुख, सुविधाओं को प्राप्त करने का निषेध नहीं है, परन्तु इस संस्कृति में यह निर्देश अवश्य है कि "धन-सम्पत्ति, सुख, सुविधा प्राप्त करना ही आत्मा का अंतिम लक्ष्य नहीं है"। धन-सम्पत्ति को प्राप्त करके, आत्म-साक्षात्कार एवं परमात्मा का साक्षात्कार करें और मोक्ष के परम आनन्द का

---

* शोधार्थी।

2. योगदर्शन व्यास भाष्य 2.30
3. पात.यो.सू. 2.30 पर भोज वृत्ति

उपभोग करें। यही संदेश महर्षि पतंजलि अपरिग्रह के माध्यम से दे रहे हैं कि "आवश्यकता अनुसार धन आदि अर्जित करते हुए मोक्ष की ओर बढ़ते रहो। केवल धनार्जन ही अपना लक्ष्य न बनाओ"।

महाभारत में 'अपरिग्रह' शब्द का प्रयोग कम देखने को मिलता है परन्तु इसके भाव में 'परिग्रह' अर्थात् विषय वस्तुओं का संग्रह न करने का उपदेश बहु स्थानों पर प्राप्त होता है। आदि पर्व में ययाति अपरिग्रह का भाव प्रकट करते हुए बोले-

अनिकेतो गृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः।
ग्राम एव वसन् भिक्षुस्तयोः पूर्वतरं गतः।।[4]

अर्थात् काम वासनाओं से युक्त वृत्तिवाले गृहस्थियों के मध्य ग्राम में ही निवास करते हुए भी जो जितेन्द्रिय और गृहरहित संन्यासी हैं, वही उन दोनों प्रकार के मुनियों (वानप्रस्थी और संन्यासी) में पहले संन्यासी ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। अतः तात्पर्य यह है कि संन्यासी की भाँति सर्वथा उपद्रव शून्य, परिग्रह रहित रहना चाहिये।[5] इसी पर्व में अपरिग्रह के भाव को एक मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा कि- विषयों के भोगने से भोगेच्छा कभी शान्त नहीं हो सकती। जिस प्रकार अग्नि में घृत की आहुति देने से अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती है उसी प्रकार वह भोगेच्छा ओर भी बढ़ती ही जाती है। यहाँ तक कि यदि रत्नों से परिपूर्ण सारी पृथ्वी, संसार का सारा सुवर्ण, सारे पशु और सुन्दरी स्त्रियाँ किसी एक पुरुष को मिल जाय, तो भी वे सबके सब उसके लिये पर्याप्त नहीं होंगे फिर भी अधिक पाने की इच्छा रहती है। इस तथ्य को समझकर शान्ति धारण करते हुए भोगेच्छा को दबा दे अर्थात् भोग्य पदार्थ का संग्रह अधिक न करें।[6]

शान्ति पर्व में युधिष्ठिर अर्जुन से राज्य छोड़कर वन में जाने की इच्छा जाहिर करते हैं क्योंकि वे परिग्रह अर्थात् विषय सुखों का उपभोग नहीं करना चाहते, जिससे बन्धन मुक्त होकर शोक और ममता से ऊपर उठ सके। अतः अर्जुन से परिग्रह के अनेक हानियाँ बताते हुए कहते हैं कि-

---

4. महा.आदि. 92.2
5. एते हि नित्यसंन्यासा दृश्यन्ते निरुपद्रवाः।
   अपरिग्रहवन्तश्च सततं ब्रह्मचारिणः।। महा.शान्ति.10.25
6. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
   हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।। महा.आदि.75.50
   पृथिवी रत्नसम्पूर्णां हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
   नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्।। महा.आदि. 75.51

नहि कृत्स्नतमो धर्मः शक्यः प्राप्तुमिति श्रुतिः।।[7]

परिग्रहवतातन्मेप्रत्यक्षमरिसूदन।
मया निसृष्टं पापं हि परिग्रहमभीप्सता।।[8]

जन्मक्षयनिमित्तं च प्राप्तुं शक्यमितिश्रुतिः।
सपरिग्रहमुत्सृज्यकृत्स्नं राज्यं सुखानि च।।[9]

गमिष्यामि विनिर्मुक्तो विशोकोनिर्ममः क्वचित्।।[10]

अर्थात् श्रुति कहती है कि संग्रह अर्थात् परिग्रह में फँसा हुआ मनुष्य पूर्णरूप से धर्म (परमात्मा के दर्शन) को प्राप्त नहीं कर सकता। इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। मैंने परिग्रह राज्य और धन, ऐश्वर्य, वैभव आदि संग्रह की इच्छा करके केवल पाप कमाया है जो जन्म और मृत्यु का मुख्य कारण है। श्रुति का कथन है कि परिग्रह से पाप ही प्राप्त हो सकता है, अतः मैं परिग्रह छोड़कर सारे राज्य और इसके सुखों को तिरस्कार करके बन्धनमुक्त होकर शोक और ममता से ऊपर उठना चाहता हूँ। तात्पर्य यह है कि कुछ भी संग्रह न रखना, सभी दशाओं में अत्यन्त संतुष्ट रहना तथा कामना और लोलुपता को त्याग देना यही परमज्ञान है और यही सत्य स्वरूप उत्तम आत्मज्ञान है।[11] इहलोक और परलोक के समस्त भोगों का एवं सब प्रकार के संग्रह का त्यागकर के शोकरहित निश्चल परमधाम को लक्ष्य बनाकर बुद्धि के द्वारा मन और इन्द्रियों का संयम करे।[12] अतः यहाँ इसके परिग्रह में सर्वदा हानियाँ तथा भोग्य पदार्थों का अपरिग्रह करने की प्रशंसा की है इसीलिये पराशर जी का भी कहना यही है कि- **'जितेन्द्रियार्थाः परमाप्नुवन्ति'**[13] अर्थात् जिन्होंने श्रोत्र आदि इन्द्रियों और शब्द आदि विषयों पर विजय पा ली है, वे परमपद को प्राप्त होते हैं। जो विषय-भोग रूप पदार्थों का अत्यधिक संग्रह नहीं करता अर्थात् त्यागी पुरुष कभी भी पाप कार्य नहीं कर सकता इसीलिये वह जन्म मृत्यु के बन्धन में नहीं

---

7. महा.शान्ति. 7.40
8. महा.शान्ति. 7.41
9. महा.शान्ति. 7.42
10. महा.शान्ति. 7.46
11. आकिञ्चन्यं सुसंतोषो निराशित्वमचापलम्।
    एतदेव परं ज्ञानं सदात्मज्ञानमुत्तमम्।। महा.वन.213.35
12. परिग्रहं परित्यज्य भवेद् बुद्धया यतव्रतः।
    अशोकं स्थानमाश्रित्य निश्चलं प्रेत्य चेह च।। महा.वन. 213.36
13. महा.शान्ति. 297.2

पड़ता यह सब श्रुति का कथन है।[14] आगे अनुशासन पर्व में उमा महेश्वर संवाद में कहा गया है कि लोभ के कारण पाप कार्य है इसलिए धन-वैभव आदि के लोभ से तृष्णा की कभी तृप्ति नहीं होती है। जब तृष्णा या लोभ को आश्रय मिलता है तो तब प्रज्वलित अग्नि के समान उसकी बुद्धि होने लगती है।[15] अतः शिव जी पार्वती से कहते हैं-

अलं परिग्रहेणेह दोषवान् हि परिग्रहः।
कृमिर्हि कोषकारस्तु बध्यते स परिग्रहात्॥[16]

संवेष्ट्यमानं बहुभिर्मोहात् तन्तुभिरात्मजैः।
कोषकार इवात्मानं वेष्टयन् नावबुध्यसे॥[17]

कुटुम्बं पुत्रदारांश्च शरीरं संचयाश्च ये।
पारक्यमध्रुवं सर्वं किं स्वं सुकृतदुष्कृतम्॥[18]

परिग्रह अर्थात् वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिये, इससे कोई लाभ नहीं होता क्योंकि इस परिग्रह में अनेक दोष भरे हुये होते हैं। हे देवि! जैसे रेशम का कीड़ा परिग्रह के स्वभाव के कारण ही रेशम के सूत्र में बन्धन को प्राप्त होता है वैसे ही संसार में कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, शरीर और संग्रह- सब कुछ पराया है, सब नाशवान् है। इसमें अपना क्या है, केवल पाप और पुण्य। मनुष्य धन का संग्रह करते-करते पहले की अपेक्षा ऊँची धन-सम्पन्न स्थिति को प्राप्त होकर भी कभी तृप्त नहीं होते। वे और अधिक की आशा लिये हुए ही मर जाते है; किंतु विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं तथा वेधन की तृष्णा में नहीं पड़ते[19] इसलिये भी कहा है तृष्णा के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है। जो कार्य आरम्भ करने के सभी संकल्पों को छोड़ चुका है, जिसके मन में कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही

---

14. त्यागवाञ्च पुनः पापं नालंकर्तुमिति श्रुतिः।
त्यागवाञ्जन्ममरणे नाप्नोतीति श्रुतिर्यदा॥ महा.शान्ति.7.38
15. धन लोभेन तृष्णाया न तृप्तिरुपलभ्यते।
लब्धाश्रयो विवर्धेत समिद्ध इव पावकः॥ महा. अनुशासन. दाक्षिणा. पृ. 6011
16. महा. शान्ति. 329.29
17. महा. शान्ति. 329.28
18. महा. शान्ति. 329.32
19. अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः।
अतृप्ता यान्ति विध्वंसं संतोषं यान्ति पण्डिताः॥ महा. शान्ति. 330.19

विद्वान् है और वही पण्डित।[20] संग्रह का अन्त है विनाश, ऊँचे चढ़ने का अन्त है नीचे गिरना, संयोग का अन्त है वियोग और जीवन का अन्त है मरण।[21] गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते है कि मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, आशारहित और संग्रह रहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरन्तर परमात्मा में लगावे[22] तभी वह परमान्नद को प्राप्त करता है। इस प्रकार महाभारत की उपरोक्त शिक्षाएँ अपरिग्रह की वृत्तियों को सुदृढ़ करती है।

अपरिग्रह का फल

महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में अपरिग्रह के अनुष्ठान का फल बताते हुए कहा है कि- **'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः'** अर्थात् **'अपरिग्रह'** के स्थिर हो जाने पर अपरिग्रह के संसिद्ध हो जाने पर जन्म क्यों हुआ, कैसा हुआ इत्यादि बातों का सम्यक् बोध हो जाता है अर्थात् यथार्थ ज्ञान हो जाता है। साधक को चाहिये कि वह पहले बाहरी पदार्थों के परिग्रह करने की वृत्तियों का परित्याग करे, फिर स्त्री-पुत्र आदि का ममत्व छोड़े पुनः अपने शरीर में भी ममत्व करने से बचे तो इस क्रम से शनैः शनैः उसकी वृत्ति अन्तर्मुख होती जायेगी और अन्त में उसके अपरिग्रह के पूर्ण सिद्ध हो जाने पर उसको यह बोध होने लगेगा कि 'मैं कौन था, कैसा था, क्यों था, अब क्या हूँ, कैसा हूँ, क्यों हूँ, आगे क्या हूँगा, कैसा हूँगा, क्यों हूँगा इत्यादि। इसी सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि- अपरिग्रह का फल यह है कि मनुष्य विषयासक्ति से बचकर सर्वथा जितेन्द्रिय रहता है, तब मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझको क्या करना चाहिए अर्थात् क्या काम करने से मेरा कल्याण होगा, इत्यादि शुभ गुणों का विचार उसके मन में स्थिर होता है। महाभारत में भी अपरिग्रह के अनुष्ठान का फल धर्मव्याध ने ब्राह्मण से इस प्रकार कहा-

आकिञ्चन्यं सुसन्तोषो निराशित्वमचापलम्।
एतदेव परं ज्ञानं सदात्मज्ञानमुत्तमम्।।[25]

---

20. सर्वारम्भपरित्यागी निराशीर्निष्परिग्रहः।
    येन सर्वं परित्यक्तं स विद्वान् स च पण्डितः।। महा. शान्ति. 329.14
21. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्।। महा. शान्ति. 330.20
22. योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। महा. भीष्म. 30.10
23. पात.यो.सू. 2.39
24. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका- उपासना विषय
25. महा.वन. 213.35

परिग्रहं परित्यज्य भवेद् बुद्धया यतव्रतः।
अशोकं स्नानमाश्रित्य निश्चलं प्रेत्य चेह च॥[26]
ब्रह्म प्राप्नोति सोऽत्यन्तमसङ्गेन च गच्छति॥[27]

अर्थात् कुछ भी संग्रह न करते हुए सभी दशाओं में अत्यन्त सन्तुष्ट रहना तथा कामना और लोलुपता को त्याग देना- यही परम ज्ञान है और यही सत्यस्वरूप उत्तम आत्मज्ञान है। क्योंकि इहलोक और परलोक के समस्त भोगों का एवं सब प्रकार के संग्रह का त्याग करके शोक रहित निश्चल परम धाम को लक्ष्य बनाकर बुद्धि द्वारा मन और इन्द्रियों का संयम करे। उसी से अनन्त ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। शुकदेव जी को नारद जी ज्ञान का उपदेश देते हुए कहते है कि-

आकिञ्चन्यं सुसंतोषो निराशीस्त्वमचापलम्।
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः॥[28]
परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेन्द्रियः।
अशोकं स्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाभयम्।[29]
निरामिषा न शोचन्ति त्यजेदामिषमात्मनः॥
परित्यज्यामिषं सौम्य दुःखतापाद् विमोक्ष्यसे॥[30]
तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना॥[31]
गुणसङ्गेष्वनासक्त एकचर्यारतः सदा।
ब्राह्मणो नचिरादेव सुखमायात्यनुत्तमम्॥[32]

अर्थात् जो आत्मतत्त्व का ज्ञाता तथा मन को वश में रखने वाला है, उसके लिये यही परम कल्याण का साधन बताया गया है कि वह किसी वस्तु का संग्रह न करे, संतोष रखे तथा कामना और चंचलता को त्याग दे। तात शुकदेव! तुम संग्रह का त्याग करके जितेन्द्रिय हो जाओ तथा उस पद को प्राप्त करो, जो इस लोक और परलोक में भी निर्भय एवं सर्वथा शोक रहित है। जिन्होंने भोगों का परित्याग कर

---

26. महा.वन. 213.36
27. महा.वन. 213.39
28. महा.शान्ति. 229.19
29. महा.शान्ति. 229.20
30. महा.शान्ति. 229.21
31. महा.शान्ति. 229.22
32. महा.शान्ति. 229.23

दिया है, वे कभी शोक में नहीं पड़ते, इसलिये प्रत्येक- मनुष्य को भोगासक्ति का त्याग करना चाहिये। सौम्य! भोगों का त्याग कर देने पर तुम दुःख और संताप से छूट जाओगे। जो अजित (परमात्मा) को जीतने की इच्छा रखता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त और विषयों में अनासक्त रहना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयों में आसक्त न होकर सदा एकान्तवास करता है, वह शीघ्र ही सर्वोत्तम सुख रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। महाभारत में सर्वत्र अपरिग्रह का फल ब्रह्मज्ञान और ब्रह्म भाव की प्राप्ति बताई गयी है। गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण कहते है-

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयायकल्पते॥[33]

अर्थात् अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह का त्याग करके निरन्तर ध्यानयोग के परायण रहने वाला ममता-रहित और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में अभिन्नभाव से स्थित होने का पात्र होता है।

वन पर्व में अपरिग्रह का फल ऋषि मुद्गल की कथा से भी प्राप्त होता है- कुरुक्षेत्र में मुद्गल नामक एक ऋषि रहते थे। जो बड़े धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे। **"शिल तथा उञ्छवृत्ति"**[34] से ही वे जीविका चलाते हुए सदा सत्य बोलते और किसी की भी निन्दा नहीं करते थे। वे अतिथियों के सेवक होते हुए बड़े कर्मनिष्ठ और तपस्वी थे तथा कापोती वृत्ति रूप आवश्यकता के समान थोड़े से ही अन्न का संग्रह करते थे। वे स्त्री, पुत्रादि के साथ रहकर पन्द्रह दिन में जैसे कबूतर दाने चुगता, उसी प्रकार चुनकर एक द्रोण धान का संग्रह करते हुए उससे इष्टीकृत नामक यज्ञ का अनुष्ठान करते थे। इस प्रकार परिवार सहित उन्हें पन्द्रह दिन में एक बार भोजन प्राप्त होता था। इस प्रकार शिल और उच्छवृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले वे धर्मात्मा महर्षि उत्तम रीति से शम, दम आदि नियमों का पालन करते थे। उनकी दृष्टि में निन्दा और स्तुति समान हो गयी। वे मिट्टी के ढेले, पत्थर और सुवर्ण को समरूप समझते थे और विशुद्ध ज्ञान योग के द्वारा नित्य ध्यान में तल्लीन रहते हुए ध्यान से बल पाकर उन्हें उत्तम बोध प्राप्त हुआ और उसके द्वारा उन्होंने सनातन मोक्षरूपा परम सिद्धि प्राप्त कर ली इसीलिये जो परिग्रह-संग्रह, ममता और अहंकार

---

33. महा.भीष्म. 42.53

34. "उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्"। इस कोषवाक्य के अनुसार बाजार उठ जाने पर या खेत कटने पर यहाँ बिखरे हुए अन्न के दाने बीनना 'उञ्छ' कहलाता है और खेत कट जाने पर वहाँ गिरी हुई गेहूँ-धान आदि की बालें बीनना 'शिल' कहा गया है। महा. वन.60.3 की टिप्पणी, पृ.1677

से रहित, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से ऊपर उठे हुए, जितेन्द्रिय तथा ध्यान योग में तत्पर है, वे मनुष्य ही उस ब्रह्म लोक में जा पहुँचते हैं।[35] अतः जो व्यक्ति सदा सांसारिक हानिकारक वस्तुओं और विचारों के संग्रह में आसक्त रहता है, वह अपने स्वरूप को भूल जाता है। विषय भोगों में फँसा हुआ मनुष्य अपनी हानि और लाभ को नहीं जान सकता। अपरिग्रह का पालन करने वाला मनुष्य अपने विषय में जिज्ञासा उत्पन्न करके अपने वास्तविक स्वरूप को जानते हुए ब्रह्मलोक में जाने का समर्थ हो जाता है और जो व्यक्ति अपने स्वरूप को नहीं जानता, वह अपने हित और अहित को कभी भी जान नहीं सकता। जो केवल अर्थ के ही संग्रह की अत्यन्त इच्छा रखने वाला है और धर्म एवं काम का अनुष्ठान नहीं करता है, वह ब्रह्म हत्यारे के समान घृणा का पात्र है और सभी प्राणियों के लिये वध्य है।[36] भीष्म जी के पूछने पर पुलस्त्य जी विभिन्न तीर्थों की यात्रा का माहात्म्य बताते हुए कहते है कि

प्रतिग्रहादपावृत्तःसंतुष्टो येन केनचित्।
अहंकारनिवृत्तश्चसतीर्थफलमश्नुते।।[37]

अर्थात् जो प्रतिग्रह से दूर रहे तथा जो कुछ अपने पास हो उसी से संतुष्ट रहे और जिसमें अहंकार का अभाव हो, वही तीर्थ का फल पाता है।

पाँचों यम 'व्रत' कहलाते हैं और जो साधक इनका जी-जान से पालन करता है- आचरण करता है, वह व्रती कहलाता है। अगर ये ही अहिंसा, सत्य आदि व्रत **'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्'**[38] जाति, देश, काल और समय से अनवच्छिन्न रहकर इनकी सीमाओं के बन्धन से ऊपर उठकर पालन करने पर ये ही व्रत महाव्रत कहलाते हैं। जो साधक को मुक्ति दिलाने वाले होते हैं और इनका पालन करने वाले को महाव्रती कहलाता है।

✦✦✦

---

35. महा.वन.अ. 260-262.47
36. अतिवेलं हि योऽर्थार्थी नेतरावनुतिष्ठति। स वध्यः सर्वभूतानां ब्रह्महेव जुगुप्सितः।। महा.वन. 33.25
37. महा.वन. 82.10
38. पात.यो.सू. 2.31

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (57-65) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

गोदान महादान

- डॉ० विवेक शर्मा

शोधपत्रसार- दान शब्द का सामान्यार्थ है- देना। आदि काल से हमारी धर्म संस्कृति में दान का विशेष महत्त्व है। महाभारत के अनुसार जिन कल्याणकारी एवं बहुमूल्य वस्तुओं का दान किया जाता है, वे हैं- पृथिवी, गौ, सुवर्ण, अन्न, तिल एवं घृतादि द्रव्य। लेकिन सर्वश्रेष्ठ जीव, पतितपावन जीव एवं सर्वोत्तम जीव होने के कारण गौओं का दान ही अनुशंसनीय एवं सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसलिये महाभारत जिसमें बहुत विस्तृत रूप से दान विधि का वर्णन किया गया है, वहाँ कई बार प्रमाणित किया गया है कि गोदान से बढ़कर अन्य कोई दान नहीं हो सकता। हमें विविध शास्त्रों में दृष्टिगोचर होते हैं, इसलिये शास्त्रों में गाय दक्षिणा का ही पर्याय बन चुकी है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक पवित्र मन से गोदान करता है, उसकी इस संसार में एवं मृत्यु के उपरान्त परलोक में सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। गौओं का दान जब किया जाये तो एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि जिस गाय का दान करना हो, वह कैसी हो? उसका स्वरूप कैसा हो? ऐसे प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर हमारे शास्त्रों में दिये गये हैं। हमारे शास्त्रों में कुछ गायों के दान का निषेध भी किया गया है, जिसमें सर्वप्रथम अथर्ववेद में किया गया उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ कहा गया है कि सीङ्गों से हीन, वृद्ध, लङ्गड़ी, काणी तथा अत्यन्त कृश गाय का दान कदापि नहीं करना चाहिये, ऐसा गोदान करने से मनुष्य की अवनति होती है। गोदान के विषय में अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गौ के स्वामी के पास सैंकड़ों याचक भी क्यों न आ जायें लेकिन गौ का दान किसी योग्य विद्वान् को ही करना चाहिये। वेदों ने योग्य को ही गोदान करने की परम्परा को स्थापित करने हेतु स्पष्ट रूप से निर्देशित किया है कि जो किसी योग्य ब्राह्मण को गोदान नहीं करता, वह एक तरह से ब्राह्मणों पर अत्याचार ही करता है। शास्त्रोक्त गोदान विधि की बात करें तो शास्त्रों में विविध प्रकार से गोदान विधियों को प्रदर्शित किया है। किन्तु गोदान की वर्तमान स्थिति जो है वह नितान्त चिन्तनीय है। आज हिन्दु परिवार गोपालन से ही बच रहा है। जब पालन ही नहीं किया जायेगा तो गोदान कैसे सम्भव है। इसे आज

---

* सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला।

सुधारने की आवश्यकता है। गोदान परम्परा के पुनर्स्थापन से ही हमारी संस्कृति की त्याग भावना पुनः सजीव होगी।

कूटशब्द- दान, गोदान, शास्त्रोक्त विधि, दारिद्राय नाशक, हिन्दू परिवार, सुपात्र, संस्कृति, पालन।

सर्वप्रथम दान शब्द की व्याकरणिक व्युत्पति की बात करें तो "दा" धातु से ल्युट् प्रत्यय के संयोजन से दान शब्द निष्पन्न होता है।[1] दान शब्द का सामान्यार्थ है- देना। आदि काल से हमारी धर्म संस्कृति में दान का विशेष महत्त्व है। इसके विषय में तो यहाँ तक कहा जाता है कि दान के बिना धार्मिक कार्य अपूर्ण ही रहते हैं। तैतिरीयारण्यक में दान को तप कहा गया है। दान करना हमारी परम्परा में पुण्य का कार्य बतलाया है। मत्स्यपुराणानुसार दान करने की प्रवृत्ति मनुष्य के लिये सर्वोत्कृष्ट एवं परमकल्याणमयी है।[4] चाणक्य ने भी इसको दारिद्र्य नाशक बतलाया है।[5] चाणक्य, जिन्हें अर्थव्यवस्था का मर्मज्ञ माना जाता है उन्होंने अपनी नीति में स्पष्ट रूप से निर्देशित किया है कि हाथ की शोभा किसी कंगन सदृश आभूषण से नहीं बढ़ती अपितु दान करने से हाथ की शोभा में वृद्धि होती है।[6] हमारी भारतीय संस्कृति में दान की तो इतनी उदात्त महिमा प्रस्तुत की गई है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति दान करते करते निर्धनता को प्राप्त करता भी है तो उस व्यक्ति के दान रूपी सत्कार्य के कारण देवता भी उस व्यक्ति के घर में निवास करते हैं। जिससे उसका निवास देवलोक के सामान हो जाता है। जबकि जिस घर में दान नहीं किया जाता वह घर श्मशान के अतिरिक्त और कुछ नहीं।[7] वेद में वर्णित किया गया है कि कोई भी ब्राह्मण अथवा याचक अग्नि, मित्र, वरुण और काम आदि देवताओं के लिये दान की याचना करते हैं, इसलिये उन्हें दान देना चाहिये।[8] यहाँ वेद के कहने का भाव

---

1. भावे ल्युट् च। अष्टाध्यायी, 03/03/115 ; कृत्यल्युटो बहुलम्। अष्टाध्यायी, 03/03/113।
2. दानं तपो। तैत्तिरीयारण्यकम्, 10/08।
3. दाने हि महती क्रिया। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 09/26।
4. दानं श्रेयस्करं पुंसा दानं श्रेष्ठतमं परम्। मत्स्यपुराणम्, 224/07।
5. दारिद्र्यनाशनं दानम्। चाणक्यनीतिः, 05/11।
6. दानेन पाणिर्न तु कंकणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
   मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन।। चाणक्यनीतिः, 17/11
7. व्ययगुणमपि साधुं कर्मणा संश्रयन्ते, भवति मनुजलोकाद् देवलोको विशिष्टः।
   बहुतरसुसमृद्ध्या मानुषाणां गृहाणि, पितृवनभवनाभं दृश्यते चामराणाम्।। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 06/46
8. अ॒ग्निषोमा॑भ्यां काम॑ाय मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च।
   तेभ्यो॑ याचन्ति ब्राह्म॒णास्तेष्वा वृ॑श्च॒तेद॑दत्।। अथर्ववेदः, 12/04/01/26

यह है कि कोई भी सुयाचक निज स्वार्थवश नहीं अपितु धर्म के स्थापनार्थ दान देने की याचना करता है, इसलिये ऐसे याचकों को दान देना चाहिये एवं दान की परम्परा कभी छूटनी नहीं चाहिये। एवं दान देने से हमारा सनातन धर्म चिर स्थायी रहेगा।

महाभारत के अनुसार जिन कल्याणकारी एवं बहुमूल्य वस्तुओं का दान किया जाता है, वे हैं- पृथिवी, गौ, सुवर्ण, अन्न, तिल एवं घृतादि द्रव्य।[9] इसी सन्दर्भ में महाभारत का ही कथन है कि इस संसार में असंख्य प्रकार के दान किये जाते हैं लेकिन सर्वश्रेष्ठ जीव, पतितपावन जीव एवं सर्वोत्तम जीव होने के कारण गौओं का दान ही अनुशंसनीय एवं सर्वश्रेष्ठ माना गया है।[10] इसलिये महाभारत जिसमें बहुत विस्तृत रूप से दान विधि का वर्णन किया गया है, वहाँ कई बार प्रमाणित किया गया है कि गोदान से बढ़कर अन्य कोई दान नहीं हो सकता।[11] न केवल महाभारत में अपितु गरुड़ पुराण में गोदान को महादान बताते हुये कहा गया है कि जो मनुष्य गोदान करता है, उस दाता के सभी प्रकार के पाप समूल नाश हो जाते हैं। न केवल उसके पाप अपितु उस व्यक्ति के महापाप भी समाप्त हो जाते हैं क्योकि गोदान महादान है।[12] इसी सन्दर्भ में आगे कहा गया है कि गोदान करने से व्यक्ति के सञ्चित कर्म भी समाप्त हो जाते हैं, एवं दान की गई गाय वैतरणी नदी को पार करवा देती है।[13] इसके अतिरिक्त वेदों में निर्देशित किया गया है कि दान करने वाले दाता की यमलोक में भी समस्त कामनायें पूर्ण होती हैं।[14] साथ ही बतलाया गया है कि गोदान करने वाला मनुष्य गोलोक में निवास करता हुआ आनन्द को भोगता है।[15] वेदों में कहा गया है कि गौओं के शरण में सभी लोग जाते हैं। इसलिये जो व्यक्ति गो दान करता है, वह सभी को शरण देने वाला बनता है।[16] महाभारत का कथन है कि गौवें सभी प्राणियों को दूध पिलाती हैं, जिस कारण उन्हें प्राण कहा जाता है।

---

9. धरणी गां हरिण्यं च सिद्धान्नं च तिलान् घृतम्। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, 145
10. दानानामपि सर्वेषां गवां दानं प्रशस्यते।
    गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावनं ह्येतदुत्तमम्।। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 83/03
11. न गोदानात् परं किञ्चिद् विद्यते वसुधामपि। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 76/02
12. तस्य जन्मार्जितपापं तत्क्षणादेवनश्यति।
    तिला गावो महादानं महापातकनाशनम्।। गरुड़पुराणम्, उत्तरखण्डः, 30/05-06
13. उद्धरेदन्तकाले स आत्मानं पापसञ्चयात्। गरुड़पुराणम्, उत्तरखण्डः, द्वितीयांशः, धर्मकाण्डः, 30/51
14. सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे। अथर्ववेद, 12/04/01/36
15. ते तत्र मोदन्ति गवां निवासे। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 102/44
16. गावः शरण्या भूतानामिति वेदविदो विदुः।
    तस्माद् ददाति यो धेनुं शरणं सम्प्रयच्छति।। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 66/50

इसलिये जो व्यक्ति गोदान करता है, वह सक्षात् प्राणों का ही दान करता है।[17] इसके अतिरिक्त वैदिक काल से ही दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों को गौ देने के कई सन्दर्भ हमें विविध शास्त्रों में दृष्टिगोचर होते हैं, इसलिये शास्त्रों में गाय दक्षिणा का ही पर्याय बन चुकी है।[18] शास्त्रों में कहा गया है कि यदि सामर्थ्य हो तो अवश्य गोदान करना चाहिये। यथा अथर्ववेद में निर्दिष्ट किया गया है कि जो किसी लालच के कारण दान योग्य गौओं को दान न करके अपने पास ही रखे, वह पशुओं के क्रोध का पात्र बनता है।[19] साथ ही उसकी गौएँ उसे बहुत कष्ट देती हैं और उस लालची व्यक्ति को गौएँ सन्तानहीन एवं अल्पपशु वाला बना देती हैं।[20] जबकि जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक पवित्र मन से गोदान करता है, उसकी इस संसार में एवं मृत्यु के उपरान्त परलोक में सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं।[21]

गोदान की परम्परा का निर्वहन हमारे शास्त्रों में विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया गया है यथा वाल्मीकि रामायण में वर्णन प्राप्त होता है कि उस काल में लाखों गौएँ विद्वानों को दान दी थीं।[22]

गौओं का दान जब किया जाये तो एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि जिस गाय का दान करना हो, वह कैसी हो? उसका स्वरूप कैसा हो? तो इसका उत्तर होगा कि योग्य गौओं के दान करने का ही महत्त्व है। इसलिये महाभारत में कहा गया है कि योग्य गौओं का दान मनुष्यों को परलोक में पार लगाता है।[23] इस विषय में अथर्ववेद हमें निर्देशित करता है कि विलिप्ती (अधिक घी प्रदान करने वाली), सूतवशा (सेवक के वश में रहने वाली) तथा वशा (सरलता से वश में रहने वाली) गौओं का दान ही अनुकरणीय है।[24] अथर्ववेद के बारहवें काण्ड में वशा (सरलता से वश में रहने वाली) गौ के दान का अत्यन्त महत्त्व बतलाते हुये कहा

---

17. प्राणा वै प्राणिनामेते प्रोच्यन्ते भरतर्षभ।
    तस्माद् ददाति यो धेनुं प्राणानेष प्रयच्छति।। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 66/49
18. दक्षिणा गां ददाति। ऋग्वेदः, 10/107/07
19. हेडः पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम्।
    देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते।। अथर्ववेदः, 12/04/21
20. अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम्।
    ब्राह्मणैश्च याचितामथैना निप्रियायते।। अथर्ववेदः, 12/04/25
21. सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रदुदुषे दुहे। अथर्ववेदः, 12/04/36
22. गवां कोटययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम्। वाल्मीकि रामायणम्, 01/01/94
23. दानं गवां तारयते परत्र। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 57/31
24. विलिप्ती या बृहस्पते यो च सूतवशा वशा। अथर्ववेदः, 12/04/46

गया है कि वशा गौ का दान करने से मनुष्य की सभी प्रकार की कामनायें पूर्ण होती हैं।[25] आगे कहा गया है कि वशा गौ के दान करने से दाता के घर में समृद्धि तथा उसके पशुधन में निर्बाध वृद्धि होती है, ऐसा इसलिये क्योंकि इससे प्राप्त होने वाले गव्य पदार्थों से तृप्त होकर देवता प्रसन्न होते हैं।[26] इसी सन्दर्भ में यहाँ दो अन्य गायों का भी वर्णन प्राप्त होता है कि वशतमा (सभी के वश में रहने वाली) तथा शतौदना (सौ लोगों के लिये पर्याप्त दूध देने वाली) अर्थात् अत्यधिक दूध प्रदान करने वाली गाय का दान सर्वश्रेष्ठ गोदान कहलाता है।[27] दान हेतु योग्य गायों के विषय में महाभारत के कुछ और वर्णनों के अनुसार मनुष्यों को सर्वदैव दुग्धवती, धन द्वारा प्राप्त की गई, विद्या से प्राप्त की गई, विवाह में प्राप्त हुई, कष्ट से मुक्त करवाई हुई एवं अपने पोषण के लिये लायी गई गौओं का दान करना चाहिये। साथ ही हृष्ट-पुष्ट, सरल, युवा और उत्तम गन्ध से युक्त गौओं का दान नितान्त प्रशंसनीय बतलाया है।[28]

हमारे शास्त्रों में कुछ गायों के दान का निषेध भी किया गया है, जिसमें सर्वप्रथम अथर्ववेद में किया गया उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ कहा गया है कि सीङ्गों से हीन, वृद्ध, लङ्गड़ी, काणी तथा अत्यन्त कृश गाय का दान कदापि नहीं करना चाहिये, ऐसा गोदान करने से मनुष्य की अवनति होती है।[29] कठोपनिषद् की कथा में गोदान का सन्दर्भ विश्वविख्यात ही है। इस उपनिषद् के एक मन्त्र में अयोग्य गौओं के दान को निषेध करते हुये कहा गया है कि जो गौवें जल नहीं पी सकतीं, घास चारा खाने में असमर्थ हों, जिनकी इन्द्रियाँ क्षीणता को प्राप्त हो चुकी हों एवं जो गौएँ दूध नहीं दे सकती हों उन गौओं का दान किसी स्थिति में भी नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा गोदान मनुष्य को सुखहीन लोकों को प्राप्त करवाता है।[30]

---

25. सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे। अथर्ववेदः, 12/04/35
26. प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते।
    अथो वशाया स्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात्।। अथर्ववेदः, 12/04/40
27. वशानां वशतमेति। अथर्ववेदः, 12/04/42 ; यो ददाति शतौदनाम्। अथर्ववेदः, 10/09/05
28. अन्तर्ज्ञाताः सक्रयज्ञानलब्धाः प्राणैः क्रीतास्तेजसा यौतकाश्च।
    कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः।
    बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः सर्वाः प्रशंसन्ते सुगन्धवत्य।। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 73/41-42
29. कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति।
    वण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम्।। अथर्ववेदः, 12/04/03
30. पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
    अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्। कठोपनिषद्, 01/01/03

दान योग्य गौ के विषय में जान लेने के बाद दान किसे दिया जाये, यह भी जानना अपेक्षित है। हमारी संस्कृति में माना जाता है कि दान किसी भी वस्तु का क्यों न देना हो, वह दान किसी सुपात्र को ही देना चाहिये। इसलिये हमारे यहाँ यह मान्यता है कि दान तभी पूर्णफलदायी होता है, जब वह सुपात्र को दिया जाता है। वेदों का निर्णय है कि अयोग्य पात्र को कभी भी दान नहीं करना चाहिये, जो अयोग्य को दान देता है उसे देवताओं सहित पृथिवी भी कष्ट देती है।[31] इसलिये गोदान के विषय में अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गौ के स्वामी के पास सैंकड़ों याचक भी क्यों न आ जायें लेकिन गौ का दान किसी योग्य विद्वान् को ही करना चाहिये।[32] वेदों ने योग्य को ही गोदान करने की परम्परा को स्थापित करने हेतु स्पष्ट रूप से निर्देशित किया है कि जो किसी योग्य ब्राह्मण को गोदान नहीं करता, वह एक तरह से ब्राह्मणों पर अत्याचार ही करता है।[33] वेद में तत्त्वज्ञानी व्यक्ति की ही दान लेने के लिये अर्हता निश्चित की है।

य॒ज्ञस्य॒ यो वि॒द्यात्स व॒शां प्रति॑ गृह्णीयात्।[34]

इस मन्त्र से यह अनुभव हो जाता है कि वैदिक काल में यज्ञ कर्ता एवं सब प्रकार की विद्याओं के ज्ञाता को ही गोदान लेने की लिये योग्य माना जाता था। इसी सन्दर्भ में महाभारत में बहुत सुन्दर एवं सार गर्भित रूप से बलताया गया है कि जिसकी आजीविका न्यून हो गई हो अथवा जो कष्टपूर्वक जीवन यापन कर रहा हो उसे गौ दान स्वरूप देनी चाहिये। साथ ही कृषि हेतु, यज्ञ सामग्री हेतु, प्रसूता स्त्री के पोषणार्थ, गुरुदक्षिणा के लिये एवं नवजात शिशु के लालन पालन के लिये गोदान करना उत्तम बतलाया गया है-

वृत्तिग्लाने सीदति चातिमात्रं कृष्यर्थे वा होम्यहेतोः प्रसूतेः।
गुर्वर्थं वा बालसंवृद्धये वा धेनु दद्याद् देशकालेऽविशिष्टे।।[35]

शास्त्रोक्त गोदान विधि की बात करें तो शास्त्रों में विविध प्रकार से गोदान विधियों को प्रदर्शित किया है। वेदों में वर्णित किया गया है कि जो पवित्र मनसा गौओं का दान करता है, वह इस लोक में भोगों को भोगता हुआ, मृत्यु के पश्चात्

---

31. य एवं वि॒दुषेद॒त्त्वाथा॒न्येभ्यो॒ ददद् व॒शाम्।
    दु॒र्गा तस्मा॑ अधि॒ष्ठाने॑ पृथि॒वी स॒हदे॑वता।। अथर्ववेदः, 12/04/23
32. यद॒न्ये श॒तं याचे॑युर्ब्राह्म॒णा गोप॑तिं व॒शाम्। अथर्ववेदः, 12/04/22
33. य ए॑नां व॒निमा॒यन्ति॒ तेषा॑ दे॒वकृ॑ता व॒शा।
    ब्र॒ह्म॒ज्येय॒ं तद॑ब्रुवन य ए॑नां निप्रिया॒यते॑।। अथर्ववेदः, 12/04/11
34. अथर्ववेदः, 10/10/02
35. महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 73/40

भी विविध भोगों को प्राप्त करता है।[36] महाभारत का कथन है कि मनुष्य अपने सामर्थ्य के अनुरुप ही गोदान करे। यहाँ बतलाया गया है कि जिसके पास हजार गौएँ हैं उसे उन गायों का दशांश स्वरूप सौ गौओं का दान करना चाहिये एवं सौ गौओं के स्वामी के लिये दस अथवा पाँच गौओं का दान श्रेयस्कर है।[37] गो दान की महिमा को गाते हुये उचित विधि को व्याख्यायित करते हुये मत्स्य पुराण में कहा गया है कि जो मनुष्य गङ्गा यमुना के सङ्गम तट पर गोदान करता है, उसका तीर्थ पूर्णतः सफल हो जाता है एवं उसे अनन्त पुण्य प्राप्त होते हैं-

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां सम्प्रयच्छति।
स गोरोमसमाब्दानि लभते स्वर्गमुत्तमम्।।[38]

गोदान विधि के ही सन्दर्भ में अथर्ववेद में निर्देशित किया गया है कि जो गौओं को आभूषण से सुसज्जित कर दान करता है, वह मनुष्य दिव्य एवं पार्थिव दोनों प्रकार के भोगों का उपभोग करता है[39] एवं वह मनुष्य सभी लोकों में यश को प्राप्त करता है।[40] वस्तुतः गोदान के ऐसे कई सन्दर्भ हमारे शास्त्रों में वर्णित हैं जो हमें पुनः पुनः गोदान हेतु प्रेरित करते हैं। इस विशद् गोदान परम्परा के गरिमामय व्याख्यान से यह ज्ञात होता है कि गाय हमारी संस्कृति में आरम्भ से ही बहुमूल्य जीव के रूप में सुस्थापित रही है। ऐसा इसलिये क्योंकि हमारी सत्य सनातन परम्परा में अपनी किसी बहुमूल्य वस्तु के ही दान करने का विधान है, जिससे निश्चित होता है कि विविध अनुष्ठानों में दान की जाने वाली गाय निस्सन्देह बहुमूल्य ही समझी जाती रही होगी।

किन्तु गोदान की वर्तमान स्थिति जो है वह नितान्त चिन्तनीय है। आज हिन्दु परिवार गोपालन से ही बच रहा है। जब पालन ही नहीं किया जायेगा तो गोदान कैसे सम्भव है। हमारी हिन्दु संस्कृति के विविध अनुष्ठानों में जो गोदान का विधान है, वह निरन्तर क्षय को प्राप्त हो रहा है। क्योंकि आज गोदान करने वाले यजमान के पास दान करने के लिये गाय नहीं है। वह यदि किसी तरह से दानार्थ गाय का प्रबन्ध

---

36. स तांल्लोकान्समान्प्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः। अथर्ववेदः, 10/05/01/06
37. यो गोसहस्री शतदः समां समां। गवां शती दश दद्याच्च शक्त्या।
    तथा दशभ्यो यश्च दद्यादिहैकां। पञ्चभ्यो वा दानीशीलस्तथैकाम्।। महाभारतम्, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व, 102/43
38. मत्स्यपुराणम्, 105/13
39. स तांल्लोकान्त्समान्प्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।
    हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम्।। अथर्ववेदः, 10/05/01/06
40. लोकान्त्स सर्वामाप्नोति यो ददाति शतौदनाम्।। अथर्ववेदः, 10/05/01/10

कर भी ले तो जिसे दान दिया जाता है वह ब्राह्मण भी गोपालन से बचने के लिये दान नहीं लेना चाहता। यह गोदान परम्परा की दुर्गति है। इसे आज सुधारने की आवश्यकता है। गोदान परम्परा के पुनर्स्थापन से ही हमारी संस्कृति की त्याग भावना पुनः सजीव होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्निपुराणम्, आचार्यशिवप्रसादद्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
- अग्निपुराण, महर्षिकृष्णद्वैपायन व्यास, सम्पादक श्री बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, प्रथम संस्करण 1961।
- अथर्ववेद संहिता, सन्- 2005 प0 श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, उत्तरप्रदेश।
- अथर्ववेद, भाष्यकार सायण, सम्पादक विश्व बन्धु, प्रकाशक- विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर, प्रथम संस्करण 1961।
- गरुड़ पुराण, कोड 1773, प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।
- गरुड़ पुराण, सन्- 1968, प० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, वेद नगरस बरेली, उत्तरप्रदेश।
- यजुर्वेद, भाष्यकार श्रीपाददामोदर सातवलेकर, प्रकाशक- वसन्त श्रीपाद सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल पारडी।
- ईशादि नौ उपनिषद्(कोड- 66), हरि कृष्ण गायेन्दका, प्रकाशक- गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् 2070।
- ऋग्वेद, भाष्यकार श्रीपाददामोदर सातवलेकर, प्रकाशक- वसन्त श्रीपाद सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल पारडी, 1985।
- गौ अङ्क, कोड 1773, प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।
- चाणक्यनीतिदर्पणः, डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशक, वाराणसी।
- ब्रह्मपुराणम्, प० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, वेद नगरस बरेली, उत्तरप्रदेश।

- महाभारत (षष्ठ खण्ड) अनुशासन- स्वर्गारोहण, कोड- 37 महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर।
- वाल्मीकि रामायण, कोड 77, प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।
- विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्, डॉ० अशोक चटर्जी शास्त्री, गङ्गानाझा ग्रन्थ माला वाराणसी।
- वेदों में आयुर्वेद, डॉ० कपिल देव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद् ज्ञानपुर भदोही।

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (66-73) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

व्याकरण की परिभाषाओं की सामाजिक सन्दर्भों में उपयोगिता

-प्रो. सत्यपालसिंहः*

मुख्य शब्द- पाणिनि, शास्त्रीय भाषा, परिभाषेन्दुशेखर, सामाजिक व्यवहार, पारिभाषिक शब्दों।

सारांशिकाः - पाणिनि ने अपने व्याकरण की कृत्रिम शास्त्रीय भाषा की सूक्ष्मता, गहनता और जटिलता को ध्यान में रखकर व्याकरण को समझने और समझाने के लिए स्वयं अष्टाध्यायी में अनेक परिभाषाओं का प्रणयन किया है। इसी प्रकार उत्तरवर्ती विद्वानों ने भी अनेक परिभाषाओं का प्रणयन किया, जिनका संग्रह नागेश भट्ट ने परिभाषेन्दुशेखर में किया है। इन परिभाषाओं का सामान्य व्यवहार और बोल-चाल की भाषा से कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। परन्तु आचार्यों द्वारा प्रणीत ये परिभाषाएं व्याकरण के समान ही सामाजिक सन्दर्भों में समान रूप से उपयोगी हैं, तथा सामाजिक व्यवहार में आने वाली विसंगतियों और जटिलताओं को सुलझाने के कार्य में भी महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं। इन परिभाषाओं में महामनीषी चिन्तकों का सामाजिक चिन्तन पदे-पदे परिलक्षित होता हुआ देखा जा सकता है। यही इस आलेख का विषय है।

भाषा एक सामाजिक सम्पत्ति है तथा समाज-व्यवस्था हेतु अपरिहार्य तत्त्व है। समग्र व्यवहार, ज्ञान का सम्प्रेषण और संवाद, आदान-प्रदान और संवर्धन मात्र पर ही आश्रित है। अखिल ब्रह्माण्ड को समझने के लिए यदि कोई एकमात्र साधन हो सकता है तो वह भाषा ही हो सकती है। यहाँ पर पूछा जा सकता है कि यदि मात्र भाषा ही निखिल ब्रह्माण्ड को समझने के लिए पर्याप्त है तो विज्ञान और तकनीक की क्या आवश्यकता और उपयोगिता रह जाएगी? यह सत्य है कि ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए विज्ञान ही एकमात्र विश्वसनीय साधन माना जाता है। परन्तु विज्ञान की आधारभूमि तो भाषा ही है फिर चाहे वह मानवीय व्यवहार की भाषा हो या फिर मानव द्वारा विकसित विज्ञान के संकेतों की भाषा हो या दूरसंवेदन तकनीक से संवलित संगणक कम्प्यूटर की भाषा हो। इसलिए भाषा को

* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

समय, ज्ञान-विज्ञान, व्यवहार और विकास का साधन कहना सर्वथा उचित और युक्ति-युक्त है। जहाँ भाषा अन्य सभी विषयों को समझने और परस्पर व्यवहार का एकमात्र सरलतम साधन है, वहीं भाषा स्वयं अपने विश्लेषण का और व्यवहार में प्रयुक्त शब्दों वाक्यों और वाक्यार्थों में आने वाली जटिलताओं के विश्लेषण का भी साधन है। इसलिए भाषा के स्वरूप और संरचना को समझने के लिए आज तक जो प्रयास हुए या किये गये, वे सब भाषाविदों के द्वारा भाषा को आधार बना कर ही किये गये हैं। पाणिनि और उनकी परम्परा में आने वाले वैयाकरण भाषाविद् भी इसका अपवाद नहीं हैं। संस्कृत भाषा के विश्लेषण हेतु निर्मित व्याकरण की संरचना में पाणिनि ने जिस भाषा का प्रयोग किया वह संस्कृत के आधारभूत तत्त्वों, नामत; धातु, प्रत्यय, क्रियापद, कारक-व्यवस्था, वाक्य-संरचना आदि से युक्त होने पर भी उससे भिन्न एक कृत्रिम नवीन भाषा थी। जिसमें उन्होंने नए पारिभाषिक शब्दों, परिभाषाओं और तकनीक का अनूठा प्रयोग किया है। पाणिनि के व्याकरण को समझने और समझाने के लिए उत्तरवर्ती विद्वानों ने भी अनेक परिभाषाओं का प्रणयन किया, जिनका संग्रह नागेश भट्ट ने परिभाषेन्दुशेखर में किया है। इन परिभाषाओं का निर्माण विशुद्ध रूप से पाणिनि की कृत्रिम शास्त्रीय भाषा की सूक्ष्मता, गहनता और जटिलता को ध्यान में रखकर किया गया है।

चूंकि भाषा एक सामाजिक संस्थागत व्यवस्था और सम्पत्ति है। सभी वैयाकरण, चाहे वे महर्षि पाणिनि हैं या परवर्ती पतंजलि आदि, सभी उसी समाज द्वारा स्वीकृत भाषा के माध्यम से ही अपने दैनन्दिन व्यवहारों और कार्यों को सम्पन्न करते थे। ऐसी स्थिति में इन आचार्यों द्वारा प्रणीत परिभाषाओं, जो कि मात्र संस्कृत भाषा के व्याकरण में प्रयुक्त विविध प्रक्रियाओं, सूत्रों और तत्सम्बद्धजटिलताओं को सुसंगत रूप से सुलझाने के लिए बनाई गई है, में प्राय: उन सिद्धान्तों का और व्यावहारिक युक्तियों का प्रयोग हुआ है जो व्याकरण के समान ही सामाजिक सन्दर्भों में समान रूप से उपयोगी है, तथा सामाजिक व्यवहार में आने वाली विसंगतियों और जटिलताओं को सुलझाने के कार्य में भी महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं। इन परिभाषाओं में महामनीषी चिन्तकों का सामाजिक चिन्तन पदे-पदे परिलक्षित होता हुआ देखा जा सकता है।

इस आलेख में स्थालीपुलाकन्याय से कुछ परिभाषाओं की सामाजिक सन्दमों में व्यावहारिक उपयोगिता, सामाजिक महत्व और उनमें निहित गहन सामाजिक विज्ञान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

परिभाषेन्दुशेखर में पठित प्रथम परिभाषा "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्" एक ज्ञापकसिद्ध परिभाषा है। "लण्"[1] सूत्र में णकार के उपदेश

1. महेश्वरसूत्र 6

द्वारा इसका ज्ञापन होता है। जिसकी उपयोगिता 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः"[2] सूत्र में देखी जा सकती है। जहाँ सूत्र में पठित अण् प्रत्याहार के विषय में सन्देह होने पर कि यहाँ अण् का ग्रहण होगा या लण् सूत्रस्थ णकार से होगा या ञमङणनम् के णकार से। एकमात्र व्याख्यान ही इस विषय में निर्णायक है कि लण् सूत्रस्थ णकार से निष्पन्न अण् का ही अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र में ग्रहण होता है ञमङणनम्[3] के मकार से निष्पन्न का नहीं। इसी प्रकार 'स्वरितेनाधिकारः"[4] सूत्र की व्यवस्था से स्वरितयुक्त पद का अधिकार उत्तरवती सूत्रों में जाएगा यह तो विदित होता है परन्तु उसकी अन्तिम सीमा क्या है? वह अधिकार कहाँ तक जाएगा? इसकी कोई व्यवस्था न होने से व्याख्यान ही एकमात्र शरण है। अर्थात् व्याख्यान से ही जान पाते हैं कि अमुक् स्वरितचिह्न युक्त पद की अनुवृत्ति अमुक् सूत्र तक ही जाती है।

सामाजिक सन्दमों में इस परिभाषा की उपयोगिता और महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए एक छोटी-सी कहानी जो मैंने बचपन में सुनी थी आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ।

एक बार एक बहुत बड़े सेठ मृत्यु शय्या पर पड़े अन्तिम प्रयाण के समीप थे। परन्तु प्राणशरीर को छोड़ने को तैयार नहीं थे। उन्हें चिन्ता सताए जा रही थी कि उनके इतने विशाल व्यापार को उनके पुत्र सम्भाल सकेंगे या नहीं। पिता की इस और मनस्थिति को भांपकर उनके चारों पुत्रों ने निवेदन किया है पिताजी हमारे लिए अन्तिम आदेश और शिक्षा क्या हैं। आप के निर्देशों और शिक्षाओं पालन करते हुए आपके बाद भी अपने जीवन को सुख और समृद्धि से सम्पन्न व्यतीत करना चाहते हैं। सेठ जी ने कहा, पुत्रो! आज आपको सुख और समृद्धि का सूत्र देता हूँ जिसके पालन से आपका वाणिज्य और व्यापार अहर्निश परम वृद्धि को प्राप्त होगा, आप स्वस्थ रहेंगे और सब प्रकार की समृद्धि से युक्त प्रतिष्ठित जीवन यापन कर सकेंगे। सेठ जी ने अन्तिम शिक्षा के रूप में जो आदेश या उपदेश उन पुत्रों को दिया वह इस प्रकार था – "छाया आइयो छाया जाइयो, मीठा करके भोजन खाइयो"। अर्थात् हमेशा छाया में आना, छाया में जाना और मीठा करके भोजन खाना। इतना कहकर सेठ जी ने शरीर त्याग दिया। पुत्रों ने पिता की अन्तिम शिक्षा पर अक्षरशः आचरण प्रारम्भ कर दिया। वे प्रतिदिन सूर्योदय के पश्चात् सोकर उठते। नित्य-कृत्यों से निवृत्त होकर दिन में दश-ग्यारह बजे अपने काम पर जाने के लिए निकल पड़ते। जब वे घर से चलते तो चार अलग-अलग सेवक हाथ में बड़ा-सा छाता लेकर

---

2. अष्टाध्यायी 1.1.69
3. महेश्वरसूत्र 7
4. अष्टाध्यायी 1.3.11

उनके साथ में चलते, जिससे वे छाया में जाने की अपने पिता जी की आज्ञा का पालन कर सकें। इसी प्रकार वे सायं चार-पाँच बजे के बीच अपने व्यापार-कार्यों को बन्द करके उन सेवकों के साथ पुनः छत्र की छाया में घर वापिस आ जाते। उन चारों ने अपने-अपने घरों में अपनी पत्नियों और पाचकों को आदेश दिया कि घर में भोजन में मीठा अवश्य होना चाहिए, क्योंकि यह उनके पिता की अन्तिम इच्छा है। घर में इस आदेश का बड़ी श्रद्धा से पालन होने लगा। भोजन में खीर, हलुआ, रसगुल्ला, जलेबी, पेड़े, रबड़ी और न जाने क्या-क्या मिष्ठान्न प्रतिदिन उनकी पाकशाला में बनने लगे। समय बीतता गया दुकान देर से खुलने के कारण व्यापारी और ग्राहक उनके पास आने कम हो गए और उन चारों की समृद्धि विनष्ट होती चली गई। परिवार के अधिकतर सदस्य अधिक मीठा खाने से और अनियमित दिनचर्या से प्रायः अस्वस्थ रहने लगे। परन्तु उन्होंने पिता की अन्तिम इच्छा पूरी करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। धीरे-धीरे व्यापार ठप्प होता चला गया और सारी सम्पत्ति बिक गई। सभी पुत्रों के मन में बार-बार एक ही प्रश्न उठता था कि कहीं पिता जी के आदेश और अन्तिम इच्छा का पालन करने से तो ये दुर्दशा नहीं हो रही है? कहीं पिता जी अन्तिम समय में हमसे रुष्ट तो नहीं थे जो ऐसी शिक्षा दे गए कि हम विपन्नता और महान् कष्ट की स्थिति में पहुँच गए। समस्या गहन थी परिस्थिति विकट थी और समाधान कुछ भी सूझ नहीं रहा था। स्थिति यह आ गई कि मीठा भोजन तो क्या चटनी से सूखी रोटी भी मिलनी कठिन हो गई। अकस्मात् एक दिन एक विद्वान् संन्यासी कुछ वर्षों के बाद उनके द्वार पर पहुँचे जो उनके पिता के समय भी आते रहते थे। घर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था और परिवार के लोगों के स्वास्थ्य को देखकर वे समझ गए कि घर में सब कुछ ठीक नहीं है। उन्होंने चारों और उनकी पत्नियों को बुलाकर पास बैठाया, कुशल क्षेम पूछा। सेठ के पुत्रों ने साधु को पिता की अन्तिम इच्छा के विषय में बताया और अपने मन में उठ रही आशंका कि पिता की अन्तिम इच्छा का पालन ही तो उनकी विपन्नता का कारण नहीं है? को उनके सामने रखा। संन्यासी विद्वान् थे उन्होंने विचार किया कि कोई भी पिता अपनी सन्तान का अहित चिन्तन नहीं कर सकता। सम्भवतः ये उनके आदेश को ठीक से समझ नहीं सके हैं। "सर्वतो विजयमिच्छेत् शिष्यात् पुत्रात् पराभवम्" की वैदिक भावना उनके मनो-मस्तिष्क को आन्दोलित और उद्वेलित करने लगी। संन्यासी ने श्रेष्ठि-पुत्रों से कुछ प्रश्न उनके पिता के विषय में पूछे। क्या उनके पिता जी छाता लगाकर छाया में ही आना-जाना करते थे? क्या वे प्रतिदिन हलुआ, खीर, रसगुल्ला आदि मीठा भोजन ही करते थे? पुत्रों ने बताया कि वे तो हमेशा प्रातः चार बजे उठकर नित्य-कर्मो से निवृत्त होकर सूर्योदय से पहले ही दुकान पर चले जाते थे उन्हें छाते की आवश्यकता ही नहीं होती थी। वे सुबह प्रातःराश में जो कुछ उनकी माता जी

देती थी उसे ही खाकर चले जाते थे। दोपहर के लिए भी थोड़ा सा भोजन साथ में ले जाते थे, उसमें भी मीठा होना आवश्यक नहीं था। रात में अन्धेरा होने पर ही वे दुकान बढ़ाकर (बन्द करके) घर वापिस आते थे। वे प्रायः आते ही कहते थे बहुत जोर की भूख लगी है, भोजन तैयार है तो दे दो। हमारी माता जी उस समय सामान्य भोजन दाल-चावल, सब्जी-रोटी आदि ही उन्हें देती थी। भोजन में मीठा होना आवश्यक नहीं था। भोजन के बाद हमेशा वे कहते थे कि भोजन बहुत स्वादिष्ट और सुरुचिकर था। भोजन करके आनंद आ गया। सेठ के विषय में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर सुनकर संन्यासी समझ गए कि ये श्रेष्ठि-पुत्र अपने पिता के सन्देश को ठीक से समझे नहीं हैं। इसीलिए इनके मन में सन्देह पैदा हुआ है और ये इस विपन्नता की स्थिति को प्राप्त हुए हैं। विद्वान् संन्यासी वैयाकरण भी थे। भगवान् पतजलि द्वारा लण् सूत्र पर पठित परिभाषा "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्"[5] में उन्हें श्रेष्ठि-पुत्रों की समस्या का समाधान मिल गया। संन्यासी ने कहा कि तुम सब व्यर्थ ही अपने पिता की अन्तिम इच्छा पर सन्देह कर रहे हो। वस्तुतः तुमने उन शब्दों का जो अर्थ लिया वह ठीक होते हुए भी वह नहीं था जो तुम्हारे पिताजी को अभीष्ट था। उनका आशय तो यह था कि सूर्योदय से पहले छाया में अर्थात् प्रातः सबसे पहले जाकर अपनी दुकान खोलना, जिससे प्रातः शीघ्र आने वाला ग्राहक मात्र आपकी दुकान खुली पाकर आपके ही पास आएगा और आपके व्यापार में वृद्धि होगी। जब सायं सूर्यास्त के पश्चात् तारों की छाया में आप वापिस लौटकर आएंगे तो सायं देर से आने वाला ग्राहक भी अन्य दुकानों को बन्द पाकर आपके पास ही आएगा और आपके व्यापार की वृद्धि होगी। मीठा भोजन खाने का आशय भी तुमने ठीक से नहीं समझा। उनका आशय था कि जब खूब जोर से भूख लगे क्षुधा तीव्र हो उठे तब यदि खाओगे तो वह आपको सुमधुर और सुरुचिकर लगेगा और ठीक से पचेगा भी। इससे आप सब स्वस्थ रहेंगे। विद्वान् संन्यासी के द्वारा किया गया सेठ के शब्दों का यह व्याख्यान श्रेष्ठिपुत्रों की आँखें खोल देने वाला था। श्रेष्ठि-पुत्रों ने संन्यासी द्वारा व्याख्यात सेठ के अन्तिम उपदेश के अनुरूप आचरण प्रारम्भ किया और कुछ ही समय में उनका व्यापार फिर से दिन-दुगुनी और रात चौगुनी उन्नति करने लगा। प्रकृत परिभाषा की सामाजिक सन्दर्भों में दिखाई देने वाली यह उपयोगिता इसकी पृष्ठभूमि में निहित महामनीषियों के सामाजिक चिन्तन को ही रेखांकित करती है।

एक अन्य परिभाषा "यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते"[6] का आशय है कि व्याकरण शास्त्र में जो आगम होते हैं उनका ग्रहण आगमी के ग्रहण से स्वतः

5. परिभाषेन्दुशेखर परिभाषा-1
6. वही परिभाषेन्दुशेखर परिभाषा- 11

हो जाता है। अलग से उनके कथन की आवश्यकता नहीं होती। सामाजिक व्यवहार में भी यह परिभाषा उतनी ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है जितनी कि व्याकरण की प्रक्रिया में। जैसे "लिख् इट्+ तुमुन्" इस स्थिति में आर्धधातुक के रूप में इट् सहित तुमुन् प्रत्यय का ग्रहण प्रकृत परिभाषा की व्यवस्था से सम्भव ही है क्योंकि इट् अपने आप में स्वतः आर्धधातुक संज्ञक नहीं होता। यहाँ "आर्धधातुकस्येड् वलादेः"[7] इट् आगम वलादि आर्धधातुक तुमुन् प्रत्यय को हुआ है। इसलिए वह अपने आगमी तुमुन् के ग्रहण से गृहीत होता हुआ आर्धधातुक परे रहते होने वाले कार्यों में व्यवधान उत्पन्न नहीं करता। इसीलिए इट् सहित तुमुन् परे रहते लिख् धातु को लघूपध गुण होकर लेखितुम् प्रयोग सिद्ध होता है। समाज में देखा जाता है कि जब किसी उत्सव में किसी को सपरिवार निमन्त्रित किया जाता है और यदि कोई अतिथि उस परिवार में अकस्मात् आ जाता है तो वह अतिथि भी निमन्त्रित परिवार के साथ निमन्त्रित माना जाता है। उस अतिथि का भी वैसे ही भोजन आदि से स्वागत सत्कार किया जाता है जैसे निमन्त्रित परिवार के अन्य सदस्यों का। इस प्रकार प्रकृत परिभाषा सामाजिक सम्बन्धों और व्यवहारों को परिभाषित करने में भी महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाती है, जो इन परिभाषाओं में निहित सामाजिक चिन्तन की पृष्ठभूमि के कारण ही सम्भव है।

इसी प्रकार "व्यपदेशिवद्भाव एकस्मिन्"[8] परिभाषा भी सामाजिक सम्बन्धों और व्यवहारों को परिभाषित और नियन्त्रित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करती है। व्यपदेशी शब्द का अर्थ है -वि विशिष्टः अपदेशः व्यवहारः यस्यास्ति सः व्यपदेशी तद्वत् व्यपदेशीवद्। अर्थात् एक असहाय में भी मुख्य व्यवहार वाले के समान कार्य निष्पन्न हो जाता है। पणिनि का सूत्र "आद्यन्तवदेकस्मिन्"[9] भी इसी बात को कहता है। लोक में ज्येष्ठ और कनिष्ठ दोनों सापेक्ष शब्द हैं। कोई भी व्यक्ति कनिष्ठ की अपेक्षा ज्येष्ठ और ज्येष्ठ की अपेक्षा से कनिष्ठ होता है। इन दोनों शब्दों का प्रयोग अकेले व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। जैसे किसी के अनेक पुत्र होने पर किसी एक के लिए वह कहता है कि यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र है, दूसरे के लिए कहता है यह मेरा मध्यम पुत्र है और सबसे छोटे के लिए कहता है कि यह मेरा कनिष्ठ पुत्र है। तार्किक दृष्टि से एकमात्र पुत्रवान् व्यक्ति अपने अकेले पुत्र के लिए इन सापेक्ष शब्दों ज्येष्ठ या कनिष्ठ आदि का प्रयोग नहीं कर सकता। परन्तु लोक-व्यवहार में यह देखा जाता है कि अकेले पुत्र के लिए भी यही मेरा ज्येष्ठ पुत्र है। यही मेरा कनिष्ठ पुत्र है, ऐसा व्यवहार स्वीकार्य होता है। इस व्यवहार के साधुत्व का आधार

---

7. अष्टाध्यायी 7.2.35
8. परिभाषेन्दुशेखर परिभाषा 32
9. अष्टाध्यायी 1.1.21

व्यपदेशिवद्भाव एकस्मिन् परिभाषा ही है, जो एक ही वर्ण में समुदायत्व का आरोप करके अदन्तत्वादि व्याकरण में निष्पन्न व्यवहारों को भी तार्किक आधार प्रदान करती है।

एक अन्य परिभाषा "असिद्धं बहिरङ्गम् अन्तरङ्गे"[10] का व्याकरण में प्रयोजन बहिरङ्ग की अपेक्षा अन्तरङ्ग कार्य की बलवत्ता को प्रदर्शित करना है। यह परिभाषा लोक में भी उतनी ही सार्थक और चरितार्थ होती है जितनी कि व्याकरण में। लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि व्यक्ति बहिरङ्ग कार्यों की अपेक्षा अन्तरङ्ग कार्यों को वरीयता देता है। व्यक्ति सबसे पहले प्रातः उठकर स्वशरीर से सम्बद्ध अन्तरङ्ग कार्यों मुखप्रक्षालन, दन्तधावन, उषःपान, स्नान आदि को सम्पन्न करता है, तदनन्तर बाह्य पारिवारिक और सामाजिक कार्यों को करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा का निर्माण यद्यपि व्याकरण की प्रक्रियाओं में कार्यों के पौर्वापर्य निश्चय के लिए हुआ है. तथापि सामाजिक सन्दर्भों में भी इसका महत्त्व और उपयोगिता सर्वथा स्वीकार्य और अपरिहार्य है।

इसी प्रकार अन्य अनेक परिभाषाएं हैं जिनकी सामाजिक उपयोगिता और महत्त्व हमारे दैनन्दिन व्यवहार में भी परिलक्षित होता है। ऐसी ही कुछ अन्य परिभाषाओं का उल्लेख मात्र किया जा रहा है जिनकी उपयोगिता और महत्त्व को विस्तार से रेखांकित किया जा सकता है। "गौणमुख्ययोः मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः"[11] परिभाषा का बहुधा लोकव्यवहार में भी उपयोग देखा जाता है। जहाँ गौण और मुख्य में प्रतिस्पर्धा होने पर मुख्य को महत्त्व दिया जाता है।

"एकदेशविकृतमनन्यवत्"[12] परिभाषा की प्रवृत्ति लोक-व्यवहार में पदे-पदे देखी जा सकती है। किसी व्यक्ति का कोई अंग-भंग होने पर भी वह व्यक्ति वही माना जाता है।

प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः[13] लोक में इस परिभाषा का प्रयोग बहुधा दृष्टिगोचर होता है। जब प्रधान और अप्रधान में से एक का चयन करना होता है तो निःसन्देह प्रधान का ही चयन किया जाता है और उसमें ही कार्य की निष्पत्ति होती है। "सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य"[14] किन्हीं के दो सन्निपात सम्बन्ध से उत्पत्ति स्थिति उन अपने निमित्तभूत सम्बन्धियों के परस्पर सम्बन्ध के विनाश किा

10. परिभाषेन्दुशेखर परिभाषा 50
11. परिभाषेन्दुशेखर परिभाषा 15
12. परिभाषेन्दुशेखर परिभाषा 37
13. वही 106
14. वही 86

कारण नहीं बनती। "येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति"।[15] जिस विधि की अवश्य प्राप्ति रहने पर जिस विधि का विधान किया जाता है वह आरभ्यमाण विधि उस अवश्य प्राप्त विधि की बाधिका होती है। लोक में सामान्य रूप से किसी कार्य का विधान करके उसी परिस्थिति में विशेष विधान के द्वारा उसका बाध देखा जाता है। भाष्य में उल्लिखित तक्रकौण्डिन्यन्याय इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। 'ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय'[16] अर्थात् ब्राह्मणों को भोजन में दही दी जाए और कौण्डिन्य को तक्रं छाछ दी जाए यहाँ दही प्रदान-विधि कौण्डिन्य के लिए भी ब्राह्मण होने के कारण, सामान्य रूप से विहित है, जिसका विशेष रूप से कौण्डिन्य को तक्र-प्रदान रूप विशेष विधि से बाध हो जाता है। इसे परिभाषा के लौकिक महत्त्व और सामाजिक चिन्तन का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि व्याकरण के ग्रंथों में संगृहीत परिभाषाओं में अनेक परिभाषाएं ऐसी हैं जिनका सामाजिक और दैनन्दिन के व्यावहारिक जीवन में भी उतनी ही उपयोगिता है, जितनी कि व्याकरण की शब्द-साधन प्रक्रिया में। इस प्रकार व्याकरण की परिभाषाओं में निहित सामाजिक चिन्तन और उनकी सामाजिक सन्दर्भों में उपयोगिता को पदे पदे सुस्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

✦✦✦

15. वही 58
16. महाभाष्य

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (74-87) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

अनुसंधान के अपरिहार्य तत्त्व

(भारतीय ज्ञानपरम्परा के आलोक में)

-उर्वशी कुहाड़*
-अजय पाल**
-सुरेन्द्र कुमार***
-रमेश चंद्र कुहाड़****

प्रस्तावना

अपने आस पास के पर्यावरण तथा घटने वाली घटनाओं के बारे में जानने की प्रवृत्ति संभवतः प्रायः सभी जीवों में देखी जाती है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जीवों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से अपने भोजन ओर सुरक्षा के संदर्भों में होती है परन्तु भोजन और सुरक्षा आदि के अतिरिक्त, मनुष्यों में यह प्रवृत्ति ज्ञान की पिपासा के संदर्भ में भी देखी जाती है। ज्ञानपिपासा की यह प्रवृत्ति ही मनुष्य के सन्धान (Search) और अनुसन्धानों (Research) का मूल है। मनुष्य ने आरम्भ से ही अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुरूप संधान और अनुसंधान की प्रक्रिया को जारी रखा है। यह ब्रह्मांड और इसका ज्ञान अनंत है अतः मनुष्य के सामने इस ब्रह्मांड के सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थों को जानने के विषय में चुनौती निरंतर बनी रहती है। इस चुनौती को स्वीकार करके उसका समाधान खोजने की प्रवृत्ति के चलते ही मनुष्य का अस्तित्व सुरक्षित है। अतः आरम्भ से ही मनुष्य इस जगत् में अपनी आध्यात्मिक, अधिदैविक तथा आधिभौतिक समस्याओं के समाधान के सन्दर्भ में धर्म, दर्शन, भौतिक विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान से सम्बद्ध ज्ञानराशि के सृजन

* अंग्रेजी विभाग, राम लाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय साउथ कैंपस, नई दिल्ली - 110021
** योग विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा - पिनकोड-123029
*** संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक, हरियाणा-124001
**** शारदा स्कूल ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रिसर्च, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा यूपी

के साथ साथ अपने जीवन की सुगमताओं के लिए उपयोगी तकनीकी का विकास करता रहा है। इस के परिणाम स्वरूप आज मनुष्य विशाल संसाधनों के अतिरिक्त विस्तृत और महान् ज्ञान का उत्तराधिकारी है।

भारत में सन्धानानुसन्धान की यह प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है। इस देश की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसके प्रमाण हमारे वेद हैं। ऋग्वेद को विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ कहा जाता है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा का अभिन्न अंग है जो भारतीय दर्शन और जीवन में रचा बसा है। ऋग्वेद में वर्णित ऋचाओं की रचना किसी व्यक्ति ने नहीं की बल्कि उनके ऋषियों को मंत्रद्रष्टा कहा गया है। इसका अर्थ है कि उन्होंने इन्हें ध्यानस्थ होकर देखा और अनुभव किया। इसी कारण भारतीय साहित्य आज भी विश्व के उच्चतम साहित्यों में से एक है। इसमें वेद, उपवेद, वेदांग, उपांग, वाल्मीकिकृत रामायण, व्यासकृत महाभारत, तथा गीता इत्यादि प्रमुख हैं। ये ग्रन्थ उन साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों तथा आचार्यों की महानता की कहानी कहते हैं जो युगों-युगों से मानव का पथ प्रशस्त करते आए हैं। इतना उच्च कोटि का साहित्य सृजन करने के लिए उन व्यक्तियों में एकाग्रचित होकर प्रकृति के गहनतम रहस्यों को जान लेने का ज्ञान और विज्ञान अवश्य रहा होगा, इसीलिए उनके संपर्क में आने वाले व्यक्तियों में भी वही परिवर्तन परिलक्षित होने लगे जो कि प्रखर मानवीय व्यक्तित्व के गुण होते हैं। यह हमारे उन महान् ऋषियों और पूर्वजों का व्यक्तित्व और कर्तृत्व ही था कि उन्होंने अपने ज्ञान और विज्ञान के बल पर ऐसी विधाओं की रचना की जो अमूल्य हैं और जिनकी तुलना आज का कोई भी साहित्य नहीं कर सकता। आज से हजारों वर्ष पहले हमारे ऋषियों ने यह रचनाएँ करके सिद्ध कर दिया कि वह प्रखर प्रतिभा संपन्न अध्यात्म विज्ञान के स्रष्टा और प्रणेता थे। प्राचीन ऋषियों के ज्ञान चक्षु खुले होते थे। इसलिए वे ऐसी खोज कर पाए जो अद्‌भुत एवं अद्वितीय थीं। परमाणु सिद्धांत और गति के नियमों का सिद्धांत जैसी खोजें सबसे पहले ऋषि कणाद (200 ईसा पूर्व) ने की थीं, जिनके बारे में हमने अध्ययन किया कि ये सिद्धांत क्रमशः 19वीं और 17वीं शताब्दी में जॉन डाल्टन और सर आइजैक न्यूटन द्वारा दिए गए थे। राइनोप्लास्टी मोतियाबिंद सर्जरी के अनुप्रयोग एवं औषधीय पौधों के लाभ (600 ईसा पूर्व) सुश्रुत द्वारा; ऋषि सुरपाल द्वारा संक्रमित पौधों की रक्षा के लिए जीवाणुरोधी कीटनाशक और कृमिनाशक के रूप में हर्बल मिश्रण का उपयोग; रोगाणुओं और उनके प्रकारों और मानव स्वास्थ्य और अन्य सामग्रियों पर प्रभावों के बारे में सबसे पहले ऋषि कण्व, अगस्त्य, चरक और सुश्रुत द्वारा किए गए अवलोकन, ऋषि कण्व का सिद्धांत है कि सूक्ष्मजीव रोग उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। अन्य खोजें जैसे चरक (200 ईसा पूर्व) और दृढबल (400 ईस्वी) द्वारा संतुलित आहार की अवधारणा और खाद्य

पदार्थों का विभाजन; कागज, कांच, मिट्टी के बर्तन, आभूषण बनाना, कपड़ों की रंगाई और चमड़े की टैनिंग (प्राचीन काल); सौंदर्य प्रसाधन, इत्र, साबुन जैसी सामग्री, मादक की तैयारी (संस्कृत साहित्य); पौधों से प्राप्त औषधियों का निर्माण, शोरा (पोटेशियम नाइट्रेट) की खोज और गनपाउडर (रसोपनिषद्) का निर्माण; चरखा एक स्वदेशी रूप से आविष्कार किया गया उपकरण है, जिसका लगभग 500 ई.पू. (नीधम); विभिन्न प्रकार के आसवों के आसवन के लिए स्टिल्स का विकास (150BC-150AD); आर्यभट्ट द्वारा स्थानीय मान अंकन (5वीं ईक्युटरी); शून्य का प्रतीक ब्रह्मगुप्त (छठी शताब्दी); पिंगल द्वारा बाइनरी नंबर; ब्रह्मगुप्त, जयदेव और भास्कराचार्य द्वारा एल्गोरिदम की चक्रवाल विधि; भास्कराचार्य द्वारा सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के परिक्रमण समय की गणना; आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित हेलियोसेंट्रिक सिद्धांत और आगे सौर और चंद्र ग्रहण, दिन की अवधि के साथ-साथ पृथ्वी और चंद्रमा के बीच की दूरी के बारे में भविष्यवाणी की गई; मुगल काल (लुकमान) के दौरान बीस अन्य ग्लोब (सीमलेस मेटल ग्लोब) मास्टर पीस बनाने के लिए लॉस्ट-वैक्स कास्टिंग की विधि का अन्वेषण; 1780 के दशक के दौरान आयरन-केस्ड रॉकेट विकसित करना; सर सी.वी. रमन द्वारा प्रभाव रमन (1928); 'बोस-आइंस्टीन कंडेनसेट' और 'बोसोन' कण का आविष्कार एस.एन. बोस द्वारा (1928); मेघनाद साहा द्वारा साहा आयनीकरण समीकरण (1920); होमी भाभा द्वारा इलेक्ट्रान की स्थिति और स्कैटरिंग (1935); स्टैस्टिकल मेथडोलॉजी में शोध - पी.सी. महालनोबिस द्वारा फ्रैक्टाइल ग्राफिकल विश्लेषण (1958); सी.आर.राव (1945) द्वारा सांख्यिकीय अनुमान में विभेदक ज्यामितीय विधियों का परिचय, ऋषियों की अन्य कई अद्भुत खोजों की तरह और महान् भारतीय वैज्ञानिकों ने आधुनिक समय की खोजों के मार्ग प्रशस्त किए हैं जिनका अनुसरण करके, इन क्षेत्रों में पाश्चात्य वैज्ञानिक भी अद्भुत खोज कर पाए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय ज्ञान और शोध की परंपरा अत्यंत प्राचीन होने के साथ साथ अत्यंत समृद्ध भी है। भारत के प्राचीन ऋषियों और आचार्यों द्वारा खोजी गयी ज्ञान संपदा का जब हम सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करते हैं तब हमें कुछ ऐसे अपरिहार्य तत्वों का बोध होता है जिनके बिना महत्वपूर्ण शोध कार्य करना संभव नहीं है। वर्तमान काल में अनेक अनुसंधाता विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान के कार्य में लगे हुए हैं और अनेक नए अनुसंधाता का इस कार्य में प्रवृत्त होना चाहते हैं। उन्हीं को ध्यान में रखकर इस शोध पत्र में भारतीय आचार्यों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान परंपरा के आलोक में अनुसंधान के अपरिहार्य तत्वों का उल्लेख किया जा रहा है जिनको आधार बनाकर अनुसंधानकर्ता अपने अनुसन्धान को गुणवत्तापूर्ण और उपयोगी बना सकते हैं।

अनुसन्धान और विचिकित्सा (सन्देह)

किसी भी नए तथ्य को जानने की इच्छा, सन्देह के बिना नहीं होती और बिना प्रबल इच्छा के कोई भी कार्य अच्छी प्रकार से सम्पादित नहीं होता। वास्तव में संदेह भरे प्रश्न ही शोधकार्य का मूल होते हैं। प्राचीन भारतीय ऋषियों और आचार्यों के शास्त्रों को देखने से यह ज्ञात होता है कि ये अनुभूत सत्य के साक्षात्कार से पहले उनके मनों में संदेह से भरे प्रश्नों ने जन्म लिया। को ददर्श प्रथमं जायमानम्- पहले उत्पन्न होने वाले को किसने देखा? (ऋग्वेद 1.140.4) को अद्धा वेद इह प्रवोचत कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः- कोई ऐसा है, जो यह जानता हो और बता सके कि यह सृष्टि कहां से पैदा हुई? (ऋग्वेद 10.129.6), येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये, अस्तीत्येके नायमस्तीति चौके-देह के समाप्त होने पर कोई कहते हैं कि आत्मतत्त्व है और कोई कहते हैं कि नहीं है (कठोपनिषद् 1.1.20)। इस प्रकार किसी भी सत्य अथवा तथ्य की खोज के लिए शोधार्थी के मन में संदेह भरे प्रश्नों का उपजना अपरिहार्य है।

अनुसन्धान और जिज्ञासा

सन्देह भरे प्रश्न, मनुष्य के मन में उसकी निवृत्ति के लिए कुछ नया जानने की इच्छा (जिज्ञासा) उत्पन्न करते हैं। अपने संदेह भरे प्रश्नों को जीवित रखते हुए उनके उत्तर जानने की प्रबल इच्छा शोध के लिए बहुत आवश्यक है। संदेह भरे प्रश्न (विचिकित्सा) अनुसंधान का बीज हैं और जिज्ञासा बेल है। बीज को उत्साह और श्रद्धा का खाद पानी न मिले तो वह अंकुरित होकर बेल नहीं बनता और बिना बेल के बीज से सीधे फल प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार विचिकित्सा के साथ जिज्ञासा भी अनुसन्धान के लिए अत्यंत आवश्यक तत्त्व है। अथातो धर्मजिज्ञासा (जैमिनि, पूर्वमीमांसा 1.1.1) अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (बादरायण, उत्तरमीमांसा 1.1.1) दुःखत्रयाभिघातात् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ (ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, 1) इस प्रकार अनुसन्धान का फल प्राप्त करने के लिये अनुसन्धाता में जानने की प्रबल इच्छा होनी ही चाहिए।

अनुसन्धान और पारिस्थितिकी

पुरातन अनुसंधान कर्ता प्रकृति के साथ संतुलन साध कर कार्य करते थे जिसके कारण उन्हें प्रकृति से भरपूर ऊर्जा मिलती थी। इसी कारण नभ, जल और थल तीनों स्थल पर्यावरण के अनुकूल थे। नदियां सदानीरा थीं, झीलें और तालाब स्वच्छ जल के स्रोत हुआ करते थे। हवा में कोई भी प्रदूषण विद्यमान नहीं था। इस तरह से उन्होंने सृष्टि के पदार्थों का प्रयोग करके जियो और जीने दो का सिद्धांत

चरितार्थ किया। प्रकृति की इन जीवनदायिनी शक्तियों का साक्षात्कार करके ही हमारे ऋषियों ने इनमें देवत्व की स्थापना की। (यजुर्वेद 14.20) हमें आज भी अपने ज्ञान और विज्ञान को आगे बढ़ाने के लिए जिस ज्ञान की सबसे बड़ी आवश्यकता है, वह यही है कि हम स्थायी ऊर्जा और पारिस्थितिकी तंत्र को बनाये रखते हुए अपने अनुसंधान को आगे बढ़ाएं।

अनुसन्धान और मानवता

हमारे पूर्वजों के साहित्य सृजन और नए ज्ञान के अन्वेषण का एक ही उद्देश्य था कि वे मानवता की सेवा करना चाहते थे। समाज में सौहार्द, सामंजस्य एवं एकता बनाए रखना चाहते थे। हमारे पूर्वजों ने इतने सुंदर ग्रंथों की रचना करने के बाद भी कभी भी उसे केवल अपने लाभ के लिए प्रयोग न करके समाज हित में उपयोग करने की सहमति प्रदान की। उनके द्वारा लिखा गया साहित्य आज के वैज्ञानिकों का भी पथ प्रशस्त करता है और उन्हें नए अनुसंधान करने की प्रेरणा देता है। ऋषियों द्वारा किया गया कार्य उन्हें धन अर्जन करने के लिए नहीं बल्कि विश्व की सेवा करने के लिए प्रेरित करता था। (कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्) लेकिन आज अनुसंधान और क्रियाकलापों को देखकर लगता है कि वास्तव में हम न समाज की सेवा कर पा रहे हैं और न ही राष्ट्र का हित, क्योंकि दिन प्रतिदिन मानव के चिंतन और चरित्र के स्तर में गिरावट आती जा रही है। मिलावट, चोर बाजारी, घूसखोरी, बेईमानी मनुष्य का चरित्र बन चुका है। वस्तुतः नैतिक अनुसंधान आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, उच्च शिक्षण संस्थाएं और अनुसंधान संस्थान लगातार नैतिक अनुसंधान पर बल दे रहे हैं। इसी के लिए कई समितियों का निर्माण किया गया, जिनमें से अनुसंधान नैतिकता समिति एक है। जिसकी अनुमति के बिना कोई भी अनुसंधान कार्य किसी मनुष्य या पशु पर नहीं किया जा सकता है।

अनुसन्धान की प्रयोजनमूलकता

अनुसंधान की आवश्यकता क्यों पड़ती है? इसका क्या कारण है? इस विषय पर गहन चिंतन करने से पता चलता है कि व्यक्ति की चेतना प्रतिक्षण उजागर होने के पथ पर है। चेतना की प्रगति के साथ-साथ विज्ञान में भी प्रगति हो रही है। व्यक्तियों में नई सोच हर क्षण पैदा हो रही है। इसलिए नई-नई तकनीक व्यक्ति के मस्तिष्क में आती रहती है, जिनका क्रियान्वयन करना ही अनुसंधान है। वास्तव में अनुसंधान चेतना के विकास को दर्शाता है। शिक्षण के क्षेत्र में शिक्षार्थियों में नए कौशल के विकास की असीम संभावना है। इसलिए शिक्षण संस्थानों की जिम्मेदारी

है कि शिक्षार्थियों को अनुसन्धान के लिए प्रोत्साहित करें तथा उन्हें हर प्रकार की सुविधा प्रदान करें। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जब कोई अनुसंधानकर्ता अपनी समस्या को खोजना चाहता है, तो उसे सर्वप्रथम उस समस्या की नवीनता के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों पर पड़ने वाले प्रभावों का भी ध्यान रखना होगा। अनुसन्धाता का अनुसन्धान केवल बौद्धिक व्यायाम मात्र होकर न रह जाये इस लिए उसके मूल में समाज के विकास अथवा कल्याण का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होना चाहिए। प्राचीन भारतीय शास्त्रपरम्परा में स्वीकृत अनुबन्धचतुष्टय (अधिकारिविषय-सम्बन्धप्रयोजनानि) के अन्तर्गत शास्त्रानुसन्धान मे प्रयोजन का बड़ा महत्त्व है।

अनुसन्धाता की योग्यता

किसी विषय पर अनुसंधान करने के लिए अनुसन्धाता को उस विषय की संपूर्ण जानकारी होनी चाहिए, बल्कि उस विषय पर उसके ज्ञान की पराकाष्ठा अनिवार्य है। इसके साथ-साथ अनुसंधानकर्ता को विवेकशील और जुनूनी होना चाहिए। बुद्धिमान होने के साथ साथ दृढनिश्चयी व्यक्ति ही किसी विषय पर गहराई से खोज कर सकता है। उसके अंदर प्रकृति के नियमों को आत्मसात् करने की क्षमता और आग्रह दोनों होने चाहिए। एक अनुसंधानकर्ता को अध्यात्म, अध्ययन तथा अध्यापन में रुचि होनी चाहिए। उसके लिए अध्यात्म में गहरी रुचि इस लिए आवश्यक है कि अध्यात्म में रुचि रखने से शोधकर्ता को एकाग्रचित्त होने में मदद मिलती है। जो उसके लिए अति आवश्यक है। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग का अभ्यास किसी भी शोधकर्ता के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। अष्टांग योग की मदद से शरीर मन एवं इंद्रियों को संयमित करके व्यक्ति चित्त की क्षिप्त, मूढ तथा विक्षिप्त अवस्थाओं को दूर करके एकाग्रचित्त होने की क्षमता उपलब्ध कर लेता है जो किसी विषय पर शोध करने के लिए बहुत आवश्यक है। यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति। (योगसूत्र, व्यासभाष्य 1.1)

अनुसन्धानात्मक समस्या का चयन

अनुसंधान में सबसे अधिक उपयोगी बात यही है कि व्यक्ति को अपनी समस्या के समाधान को सही तरीके से खोजना होता है। यदि अनुसंधानकर्ता अपने क्षेत्र से संबंधित सही समस्या को ढूंढ लेता है तो उसके अनुसंधान की महत्ता बहुत बढ़ जाती है क्योंकि अक्सर चीजों की उत्पत्ति का कारण ही दुखों की निवृत्ति और सुख की प्रवृत्ति होती है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत दुखों से छुटकारा पाने और सुखों को और बढ़ाने में लगा रहता है। अनुसंधान भी यही कार्य करने में व्यक्ति की सहायता कर रहा है इसलिए यदि आपने समस्या का सही पता लगा लिया तो

उसका समाधान भी मिल ही जाएगा। मानवीय दुख पीड़ा के निवारण में गौतम बुद्ध के चार आर्य सत्यों- दुःखसमुदायनिरोधमार्गाश्चत्वार आर्यबुद्धस्याभिमतानि तत्त्वानि, की व्याख्या करना यहां उचित रहेगा। वास्तव में ये चार आर्य सत्य अनुसंधान के ही विषय हैं जो हर एक व्यक्ति पर लागू होते हैं। गौतम बुद्ध के कथनानुसार चार आर्य सत्य हैं कि जीवन में दुख हैं, दुख का कारण है, दुख के निवारण की विधि है और दुख निवृत्ति की अवस्था है जो सुख के रूप में है। जीवन में दुख है इसे मानकर चलना होगा। दुख के कारण की खोज करनी होगी। दुख के निवारण की विधि द्वारा दुख का उपचार करना होगा तभी अंतिम आर्य सत्य सुख की अवस्था की उपलब्धि संभव है। आधुनिक समय में अनुसंधान करना बहुत ही जिम्मेदारी का कार्य हो गया है क्योंकि अनुसंधानकर्ता को सर्वप्रथम वर्तमान समय को देखते हुए अपने क्षेत्र से संबंधित उपयोगी अनुसंधान के क्षेत्र को खोजना है। उस अनुसंधान क्षेत्र में अनुसंधान की समस्या क्या है? उसका विषय क्या हो सकता है? यह निर्धारण करते समय यह ध्यान रखना कि अनुसंधानकर्ता उस अनुसंधान की समस्या को क्यों चुन रहा है? उसके चयन के पीछे क्या तर्क और तथ्य है? क्या यह समस्या वर्तमान में उपस्थित ज्ञान और विज्ञान में अभी तक अनुत्तरित रही है? यदि यह अभी तक अनसुलझी और अनुत्तरित है, तो उस बीच के खाली स्थान को भरने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता होती है। इस खाली स्थान की जानकारी प्राप्त करने के लिए उपस्थित साहित्य का सर्वेक्षण करना पड़ता है। यह साहित्यिक सर्वेक्षण ही वास्तव में अनुसंधान के बीच के खाली स्थान का पता लगाने में अनुसंधानकर्ता की मदद करता है। जो व्यक्ति गहनता के साथ वर्तमान में उपस्थित साहित्य का सही तरीके से सर्वेक्षण करता है। वह वास्तव में उस अनुसंधान के रिक्त स्थान की पूर्ति कर पाता है जो उस समय वास्तव में उपलब्ध नहीं था। इसके साथ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि जो शोध समस्या शोधकर्ता निर्धारित कर रहा है, उसकी वह समस्या नवीन और अद्वितीय होती है जिसका सामाजिक प्रभाव बहुत अधिक होगा। इस समस्या के समाधान के बाद समाज में वास्तविक बदलाव देखने को मिलेगा। किसी अनुसंधान की वास्तविक प्रगति तभी कही जा सकती है जब उस अनुसंधान के पश्चात् परिणाम सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने में सक्षम हों।

अनुसन्धित विषय की व्यावहारिक उपयोगिता

अनुसंधान के सम्पन्न होने के पश्चात् वे क्या चीजे हैं जो इसके परिणाम स्वरुप निकलकर सामने आएंगी जैसे कि अनुसंधान पत्र, जो कि विभिन्न अनुसंधान पत्रिकाओं में प्रकाशित हों। जिसके साथ कुछ नया ज्ञान सृजित किया जाए जो कि विद्यार्थियों के विषय से संबंधित ज्ञान में अभिवृद्धि करने में सक्षम हो या अनुसंधान

के पश्चात् कोई ऐसे नए तरीके खोजें, जो कि उद्योगों, अनुसंधानों में अपना योगदान दे सकें या तो अनुसंधान के पश्चात् जो प्रक्रिया, उत्पाद या तकनीक विकसित की गई हैं, उसको पेटेंट कराया जाए। अनुसंधानकर्ता जो अनुसंधान कर रहा है, उस प्रक्रिया के पश्चात् उद्योग के क्षेत्र में या शिक्षण क्षेत्र में शिक्षार्थियों में नये कौशल के विकास की कितनी संभावना है? उनमें क्या-क्या गुण विकसित हो सकते हैं? उसमें ऐसी क्या चीजें हैं? जो बिल्कुल अलग तरीके की हैं। जो पहले किसी भी प्रक्रिया में नहीं थीं। इसे विशेष रूप से इंगित किया जाए, जो अनुसंधान वर्तमान में किया जा रहा है, उस अनुसंधान के पश्चात् क्या कोई नये रोजगार की संभावनाएं विकसित हो सकती हैं? या उससे कुछ नए स्टार्टअप शुरू किया जा सकते हैं? या उनमें कोई उद्यमिता/उद्यमशीलता का गुण है? जिससे कि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार दिया जा सके। इस अनुसंधान में यह संभावना भी होनी चाहिए कि यह उच्च शिक्षण संस्थानों और उद्योगों के बीच एक सेतु का काम कर सके, ताकि उद्योगों और शिक्षण संस्थानों के बीच की दूरी कम हो सके। उच्च शिक्षण संस्थान उद्योगों के लिए काम कर सकें और उद्योग उच्च शिक्षण संस्थानों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आगे आ सकें।

अनुसन्धान के लक्ष्य, उसकी प्राप्ति के साधन और विधि

अनुसंधानकर्ता को अपने अनुसंधान के उद्देश्यों को पूरी स्पष्टता के साथ बताना चाहिए। उन उद्देश्यों को कैसे, कब-कब पूरा किया जाएगा, उसका समय प्रबंधन भी पूरी तरह से किया जाना चाहिए, ताकि समय-समय पर अनुसंधान का विश्लेषण करने के पश्चात् उसकी प्रगति का आँकलन सही तरीके से किया जा सके। उस अनुसंधान को करते समय क्या-क्या उपकरण, तकनीकें, तरीके और दूसरी आवश्यक सामग्रियों को प्रयोग में लाया जाएगा, जिससे कि अनुसंधान अच्छे तरीके से समयबद्ध और क्रमबद्ध तरीके से पूरा किया जा सके। उस अनुसंधान को करने में क्या-क्या परेशानियां, क्या-क्या चुनौतियां आएंगी, उन्हें कैसे दूर किया जाएगा? इस पर पहले ही विचार करना चाहिए, ताकि अनुसंधान को पूरा करने में और उसे सुचारू रूप से संपन्न करने में कोई समस्या न आए। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुसंधान करते समय अनुसंधानकर्ता ने उस अनुसंधान करने के दौरान अपने ज्ञान में क्या अभिवृद्धि की है, उसके द्वारा उसके शिक्षण और प्रशिक्षण में क्या नया जुड़ेगा, इसका भी ध्यान रखा जाना चाहिए। यह अनुसंधान कैसे एक अनुसंधानकर्ता से दूसरे अनुसंधानकर्ता को जोड़ेगा, कैसे इस बात की संभावनाओं को तलाशेगा कि दूसरे अनुसंधानकर्ता भी एक दूसरे से वार्तालाप करके और एक दूसरे के साथ मिलकर नए अनुसंधानों पर कार्य कर सकें।

इस प्रकार शोध के अपरिहार्य तत्त्वो पर विचारविमर्श के पश्चात् यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यदि उपर्युक्त तथ्यों को एक अनुसंधानकर्ता अनुसंधान करते समय ध्यान में रखेगा तो निश्चित रूप से उसके अनुसंधान में वे सभी संभावनाएं निहित होंगी जिसके लिए अनुसंधान किए जाते हैं। लोगों को इसी के लिए वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं पर भरोसा होता है। आज के अनुसंधान संस्थानों और उच्च शिक्षण संस्थानों में अनुसंधान पर इसी विषय वस्तु को लेकर यदि अनुसंधानकर्ताओं को तराशा और तैयार किया जाए, तो अवश्य ही आने वाली सदी वास्तव में भारत के लिए बहुत अच्छी रहेगी।

भारतीय ज्ञानपरम्परा के आलोक में शोध के जिन अपरिहार्य तत्त्वों पर ऊपर विमर्श किया गया है उनको आधुनिक शोधप्रविधि में अधोलिखित प्रकार से विवृत किया जा सकता है –

शोध के अपरिहार्य तत्व (Indepensable Elements of Research)

1. शोध विषय क्षेत्र (Research Subject Area):
2. लेखक की गहन रुचि और सूक्ष्म समझ वाले विषय (Writer's Subject(s) of Intimate interest & close understanding).
3. चुने गए विषय पर पहले से किए गए कार्य का साहित्य/ग्रंथसूची (Literature/ Bibliography of the work already done on the chosen subject).
4. पहचान की गई शोध समस्या/ शीर्षक/विषय (Research Problem/Topic/ Subject identified):
5. शोध विषय चुनने का मूल कारण (Genesis of selecting the research subject):
   (a) आपने इस समस्या पर काम करने का फैसला क्यों किया? (Why have you decided to work on this problem).
   (b) शोध के क्षेत्र में आप किन कमियों की पहचान कर पाए? (What gaps were you able to identify in the area of research?)
6. विवरण दीजिए (State the):
   a) आपके समस्या क्षेत्र की विशिष्टता/नवीनता। (Uniqueness/novelty of your problem area).
   b) प्रस्तावित शोध का सामाजिक प्रभाव (यदि कोई हो) [Social impact of proposed research (if any)].

c) प्रस्तावित शोध की बाजार क्षमता (यदि कोई हो) [Market potential of proposed research (if any)].

7. बताएँ कि शोध समस्या को किस संदर्भ में लागू किया जा सकता है और यह वर्तमान संदर्भ में कैसे उपयोगी है? (आपके शोध के परिणाम कहाँ लागू किए जा सकते हैं) [State how the Research Problem can be applied in what context and how is it useful in the present context? (Where the outcome of your research could be applied)].

8. वर्तमान/प्रस्तावित शोध का अपेक्षित परिणाम क्या है? (What is the expected outcome of the present/proposed research?)

(i) प्रकाशन के संदर्भ में। (In terms of Publication.-)

(ii) मौजूदा साहित्य/विषय ज्ञान में कोई नया योगदान। (Any new addition to the exiting literature/subject knowledge-)

(iii) किसी नई विधि/प्रक्रिया/उत्पाद/तकनीक/पेटेंट/आईपीआर का विकास। (Developing/development of any new method/process/product/technology/patent/IPR.)

(iv) क्या यह शोध कार्य आपको एक कुशल व्यक्ति बनाएगा – विशेष रूप से अद्वितीय कौशल की पहचान करें (Will this research work make you a skilled person & specifically identify the unique skills?)

(v) क्या आपको उम्मीद है कि शोध पूरा करने के बाद आप किसी स्टार्टअप को सफलतापूर्वक शुरू कर पाएंगे? यदि संभव हो तो स्टार्टअप की पहचान करें। (Do you expect that after completing research you would be able to bring into being any start up, successfully? Identify the startup] if possible.)

(vi) क्या आप शोध का अनुभवात्मक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद उद्यमी बन पाएंगे? यदि हां, तो कृपया 'उद्यमिता' निर्दिष्ट करें। (Would you be able to become an entrepreneur after getting research experiential training? If so, please specify the "Entrepreneurship".)

(vii) उद्योगों या शोध/उच्च शिक्षण संस्थानों के साथ संबंध विकसित करने की संभावनाओं की पहचान करें और उनका पता लगाएं। (Identify & explore prospects of developing linkage with industries or research/higher educational institutions.)

9. उद्देश्यों को बताएं और इन उद्देश्यों को पूरा करने की एक अस्थायी अनुसूची दें। (State the objectives and give a tentative schedule of completing these objectives.)

10. शोध कार्य के सफल समापन के लिए आवश्यक उपकरणों, तकनीकों, विधि और अन्य सहायता की सूची बनाएं। (List the tools, techniques, method and other aids required for the successful completion of research work.)

11. अपने शोध कार्य को पूरा करने में सुचारू संचालन के रास्ते में आने वाली चुनौतियों/समस्याओं की सूची बनाएं। (List the challenges/problems that came in the way of smooth conduct, if any, in the completion of your research work.)

12. चुनौतियों का सामना करने/समस्या को हल करने के संभावित तरीके जिन्हें आपने पहले से ही देखा है। (Possible ways to meet the challenges/ solve the problem you have foreseen.)

13. बताएं कि आपके शोध कार्यक्रम के दौरान प्राप्त ज्ञान आपको शैक्षणिक रूप से समृद्ध बनाने में कैसे मदद करेगा? (State how knowledge gained during your research programme would help enrich you as an academic.)

14. बताएं कि आप अपना शोध पूरा करने के बाद कौन सा व्यवसाय अपनाना चाहेंगे। (State which career you would wish to pursue after completing your research.)

15. शोध किसी के पेशेवर नेटवर्क का विस्तार करने, सहकर्मियों के साथ सहयोग और बातचीत की क्षमता बढ़ाने में कैसे मदद कर सकता है? (How can research help in expanding one's professional network, increasing potential for collaboration and interaction with peers?)

Acknowledgement

The Authors acknowledge and appreciate the valuable suggestions and appreciation of Prof. Ved Prakash, former Chaiman, UGC; Prof. Sat Hans, NIT, Kurukshetra; Prof Val Raj, Vice-Chanceller, Anna University, Madras; Prof. Sukhbir Singh, Department of English Nalanda University, Nalanda; Prof. Vijai Gupta, Dublin City University, Ireland; Prof. VK Jain, former VC Tejpur University; Prof. Sambha Siva Rao, VC Mangalyaan University, Jabalpur; Prof. Parveen Rishi, Punjab University, Chandigarh;

Dr. PK Khurana, Former Principal, SBS College, Delhi University; Prof. P.C. Pattanaik, Department of Comparative Linguistics, Central University of Odisha; Brett Pletschke, Rhoade University, Makhanda, South Africa; Dr. Gaurav Rajauria, University College Cork, Ireland; Dr. Minaxi Sharma, Department of Agrobiosciences, Rue de la Sucresie, Belgium; Dr. Simla, Former Registrar, J.C. Bose University of Science and Technology, Faridabad; Prof. Prince Sharma, Punjab University, Chandigarh; Prof. Tyagraj, Anna University, Madras; Dr. P.N. Gautam, Economist from Shimla; Prof. Nityanand, former Director, PGI Rohtak, Prof. B.N. Johri, Bhopal University, Bhopal, Prof. S.K. Tomar, V.C., J.C. Bose University of Science and Technology, Faridabad; Prof. Suman Dhar, JNU, New Delhi; Prof. Sunil Khare, IISER, Calcutta; Prof. Niranjan, Mysore University; Prof. Minaskshi Parsad, Hisar; Prof. P. Sukla, BHU, Varanasi; Prof. Appa Rao, Former VC, Central University of Hyderabad; Prof. Suranjan Das, VC Jadhavpur University, West Bengal. They carefully reviewed our efforts of putting the Indispensable elements of research together which highlights their importance for full clarification of developing the research concept and programme for perusing quality and meaningful research during one's career.

References:

1. Menon, R.V.G. (2009). *An Introduction to the History and Philosophy of Science*. Pearson Education India.
2. Guleria, M., & Choudhary, K.R. (2015). A Glimpse of Contributions of Acharya Sushruta in Surgery. *World J. Pharm. Pharm. Sci,* 9, 291-317.
3. Srikantha Murthy K.R. Sushruta Samhita (English Translation) Vol. III (Uttaratantra chapter & XVII) Varanasi; Chaukhamba Orientalia; 2012 (Reprint Edition). p. 78-79.
4. Pushpan, R., Kumari, H., & Nishteswar, K. (2012). Influence of harvesting and processing methods on the active principles of medicinal plants. *Int. J. Pharm. Biol. Arch,* 3, 1283-1286.
5. Nene, Y.L. (2012). Potential of some methods described in Vrikshayurvedas in crop yield increase and disease management-*Asian Agri-History, 16*(1), 45-54.
6. Deogade, M.S., & Kethamakka, S.R.P. (2019). Krumi (microorganisms) in ayurveda-A critical review. *Int J Ayurvedic Med, 10*(4), 297-300.

7. Dhoke, S.P., Bhadarva, A., Vyas, V.H.A., & Vyas, M.K. (2016). Importance of healthy dietary pattern WSR to Dwadasha Pravicharna. *Pharma Science Monitor*, 7(3), 9-20.

8. Vaidya, S.M., & Kulkarni, V. (2016). Writing in ancient India and writing materials-in the study of manuscripts. *International Journal of Innovative Research and Advanced Studies, 3*(10), 240-246.

9. Bhardwaj, H.C. (1979). Aspects of ancient Indian technology. *Motilal Banarsidass Publications*, First edition, 1-209.

10. Saraswati, B. (1978). Pottery-*making cultures and Indian civilization*. Abhinav publications.

11. Chakrabarti, M. (2022). Reinterpretation of the Ancient Indian Jewellery. *Available at SSRN 4314351*.

12. Punia, R. (2015). Dyeing in ancient indian textile : An analytical study. *Ascent International Journal for Research Analysis*, 3(1), 1-6.

13. Macdonell, A.A. (1994). *India's past : a survey of her literatures, religions, languages and antiquities.* Asian Educational Services.

14. Remadevi, O. (2009). *Cosmetics, Costumes and Ornaments in Ancient India as Reflected in Sanskrit Literature* (Doctoral dissertation, Dept. of Sanskrit, University of Calicut.).

15. Mandavgane, S.A., Holey, P.P., & Deopujari, J.Y. (2009). Preparation and testing of perfume as described in Brhatsamhita. *Indian Journal of Traditional Knowledge*, 8(2), 275-277.

16. Ray, P. (1948). Chemistry in ancient India. *Journal of Chemical Education*, 25(6), 327-335.

17. McHugh, J. (2021). *An unholy brew : alcohol in Indian history and religions.* Oxford University Press.

18. Mukherjee, P.K., & Wahile, A. (2006). Integrated approaches towards drug development from Ayurveda and other Indian system of medicines. *Journal of ethnopharmacology*, 103(1), 25-35.

19. Baishya, D. (2015). Tradition of Interdisciplinary Research : From Al-Kimiya to Rasayana. *International Journal of Interdisciplinary Research in Science Society and Culture*, *1(1),* 21-36.

20. Habib, I. (1992). Pursuing the history of Indian technology : Pre-modern modes of transmission of power. *Social Scientist*, 1-22.

21. Allchin, F.R. (1979). India : the ancient home of distillation. *Man,* 55-63.

22. Gāṅguli, S. (1932). The Indian Origin of the modern Place-value arithmetical notation. *The American Mathematical Monthly*, 39(5), 251-256.

23. Feliksiak, M. (2022). Brahmagupta and the concept of Zero. *Science Open Preprints*.

24. Sridharan, R. (2005). Sanskrit Prosody, Piṅgala Sūtras and Binary Arithmetic. *Contributions to the History of Indian Mathematics*, 33-62.

25. Sriram, M.S. (2005). Algorithms in Indian Mathematics. *Contributions to the History of Indian Mathematics*, 153-182.

26. Singh, R.P. Incredible India (Bhārat) (2022) : Geographical Mosaic of Natural and Cultural Heritage Landscapes. *Progress in Indian Geography. A Country Report,* 2016-2022, 1-30.

27. Sen, S.N. (1987, January). Planetary theories in Sanskrit astronomical texts. *In International Astronomical Union Colloquium* (Vol. 91, pp, 113-124). Cambridge University Press.

28. Clark, G. (2005). The British Industrial Revolution, 1760-1860. *World Economic History*, 1-65.

29. Singh, R. (2002). CV Raman and the Discovery of the Raman Effect. *Physics in Perspective*, 4, 399-420.

30. Townsend, C., Ketterle, W., & Stringari, S. (1997). Bose-Einstein condensation. *Physics World*, 10(3), 29.

31. Saha, M.N. (1921). On a physical theory of stellar spectra. *Proceedings of the Royal Society of London. Series A, Containing Papers of a Mathematical and Physical Character*, 99(697), 135-153.

32. Chande, M.B. (2018). Kautilyan Arthasastra. *Atlantic Publishers & Distributors*, 1-497.

33. Sethuraman, J. (1961). Some limit distributions connected with fractile graphical analysis. Sankhyā : *The Indian Journal of Statistics, Series A*, 79-90.

34. Rao, C.R. (1987). Differential metrics in probability spaces. *Differential geometry in statistical inference*, 10, 217-240.

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (88-93) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

वाक्यप्रमाण-स्वरूपनिरूपण

-डॉ. रामचन्द्रमेघवाल*

अवतरणिका:-

लिङ्ग विचार की परिपूर्णता के लिये यह अत्यावश्यक है कि लिङ्ग के अन्य सभी परवर्ती प्रमाणों से प्राबल्य होने का निरूपण किया जायें। एतदर्थ ही लिङ्गविचार के अङ्गभूतरूप में ही वाक्य प्रमाण का लिङ्ग प्रमाण के अन्त में उल्लेख किया गया है। और अब **वाक्यप्रमाण** के स्वरूप पर सम्पूर्ण विचार प्रस्तुत है। वाक्य सामान्यत: आकाङ्क्षा, योग्यता सन्निधि व तात्पर्य से युक्त पदों का समूह माना जाता है। इन सब अपेक्षाओं से युक्त होने पर भी यहाँ (मीमांसादर्शन के वाक्य प्रमाण के विषय में) वाक्य पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। एक वाक्य में निहित पदों को अर्थ बोध के लिए एक साथ उच्चरित माना जाता है, किन्तु यहाँ (मीमांसाशास्त्र के बलाबलाधिकरण में प्रयुक्त) वाक्य का अर्थ उन पदों का एक साथ उच्चारण है जिन पदों से अङ्ग एवं अङ्गी का बोध होता है, अन्यथा 'श्रुति' आदि में भी वाक्यता स्वीकार करनी पड़ेगी।

वाक्यप्रमाण का स्वरूप-

मीमांसादर्शन के भाष्यकार शबरस्वामी ने बलाबलाधिकरण के भाष्य में प्रश्नोत्तर के माध्यम से वाक्य की परिभाषा बताई- वाक्य क्या है? अथवा वाक्य किसे कहते हैं? परस्पर मिलकर अर्थ को कहने वाले पद वाक्य कहलाते हैं।

अथ किं वाक्यं नाम? संहत्य अर्थमभिदधति पदानि वाक्यम्।[2]

पदान्तरसमभिव्याहारो वाक्यम्। समभिव्याहारश्चात्र शेषशेषिवाचकपदयो: सहोच्चारणम् शेषशेषिणो: = अङ्गाङ्गिनो:।[3]

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय हरिद्वार।

1. शाबरभाष्य 3/3/14
2. मीमांसापरिभाषापृष्ठ 36
3. अर्थसंग्रह पृष्ठ 85-86

शेष शेषी के वाचक पदों का एक साथ उच्चारण तो श्रुतिप्रमाण से विनियोग किये जाने पर भी देखा जाता है। इसलिये 'समभिव्याहार वाक्य है' **पदान्तरसमभिव्याहारोवाक्यम्** इस वाक्य लक्षण की अतिव्याप्ति श्रुतिप्रमाण में भी होने लगती है अतः मीमांसान्यायप्रकाशकार व अर्थसंग्रहकार दोनों ने अतिव्याप्ति को रोकने के लिये समभिव्याहार को इस प्रकार परिभाषित किया- 'साध्यत्व आदि के वाचक द्वितीया आदि के न रहने पर भी वस्तुतः अङ्ग एवं अङ्गी के वाचक पदों का एक साथ उच्चारण समभिव्यहार है।

'समभिव्याहारो वाक्यम्। समभिव्याहारश्च साध्यत्वादि वाचक द्वितीयाद्यभावे, वस्तुतः शेषशेषिवाचकपदयोः सहोच्चारणम्। यथा ' यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोति'। अत्र पर्णताजुह्वोः समभिव्याहारादेव पर्णताया जुह्वङ्गत्वम्।

अत्र हि न द्वितीयादिविभक्तिः श्रूयते, केवलं पर्णताजुह्वोस्समभिव्याहारमात्रम्।[4]

वाक्यप्रमाण के प्रसंग में 'द्वितीयादि' पदों के स्मरण का अभिप्राय यह है कि यहाँ अङ्गता के बोधक पद द्वितीया आदि विभक्तियों में नहीं होते हैं, फिर भी अङ्गता का ज्ञापन करते हैं। परन्तु श्रुतिप्रमाण के प्रसंग में अङ्गाङ्गिभाव बोधक द्वितीया तृतीया सप्तमी आदि विभक्तियाँ सुनी जाती है। जहाँ श्रुतिप्रमाण ना हो और शेषशेषिवाचक पदों का सहोच्चारण हो वहां वाक्यप्रमाण होता है यहाँ अङ्गता का ज्ञान प्रधान के वाचकपद के साथ पठित होने से ही सम्पन्न हो जाता है यहाँ आवश्यक नहीं होता है कि अङ्गता वाचक-पद द्वितीया आदि विभक्ति में हो। वाक्य-प्रकरण में पठित उदाहरण से ऐसा प्रतीत होता है। कि अङ्ग तथा प्रधान दोनों के वाचक पद समान विभक्ति और लिङ्ग व वचन भी समान होते हैं।

वाक्य प्रमाण का स्वरूपनिरूपण के पश्चात् अब उदाहरणों के माध्यम से समझते हैं

वाक्यप्रमाण का उदाहरण- **'यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोति'**[5] यह उदाहरण वाक्यप्रमाण का है। इसका अर्थ है- 'जिसकी जुहू पलाश की होती है वह अपयश नहीं सुनता है यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति यह अंश विधि है और **'न स पापं श्लोकं शृणोति'** यह अंश अर्थवाद है। जुहू एक पात्र विशेष होता है जिसमें अवत्त (विभक्त किया हुआ) घी को रखा जाता है। यदि जुहू पलाश से बनी

---

4. मीमांसान्यायप्रकाश पृष्ठ 192
5. मीमांसान्यायप्रकाश पृष्ठ 192

होगी तभी जुहू से साध्य अपूर्व की उत्पत्ति होती है और फलस्वरूप यजमान अपने अपयश को नहीं सुनता है। प्रकृत 'पर्णमयी जुहूः' में द्वितीया आदि विभक्ति का श्रवण नहीं है अतः एव यहां पर श्रुति प्रमाण भी नहीं है। केवल पर्णमयी और जुहूः दोनों पदों का सहोच्चारण है और यही है वाक्यप्रमाण और इसी वाक्यप्रमाण से यह समझा जाता है कि जुहू के साथ पर्णता का अङ्गत्व है। **(तस्मादेव च पर्णताया जुह्वङ्गत्वम्)**[6] (मीमांसान्यायप्रकाश) वाक्य **'पर्णमयी जुहूः'** इन दो पदों का समभिव्याहार है पर्णमयी विशेषण होने से **'पर्णमयत्व'** या पर्णनिर्मितत्व फलतः पर्णता धर्म अभिप्रेत है अतः पर्णमयी जुहूः में पर्ण जुहू का अङ्ग न होकर पलाशनिमितत्व (जो जुहू में समवेत रहता है) यानी पर्णताधर्म जुहू का अङ्ग है वाक्यप्रमाण के द्वारा।

प्रश्न- **'पर्णमयी जुहूः'** यहाँ पर जुहू पलाश निर्मित होनी चाहिये, यह कहना व्यर्थ है- पर्णतायाः आनर्थक्यम्, क्योंकि जुहू पलाश से भिन्न काष्ठ की भी बनाई जा सकती है और उसमें विभक्त हवि रखी जा सकती है। अतः यह कोई आवश्यक नहीं है कि जुहू पलाश निर्मित ही हो। इसलिये पर्णता विशेषण अनर्थक है।

उत्तर- **'पर्णमयीजुहूर्भवति'** इस विधिवाक्य में पर्णता विशेषण अनर्थक नहीं है। **'न चानर्थक्यम्'** परन्तु विशेषणरूपी पर्णताधर्म का विशेष प्रयोजन है 'जुहू' शब्द को होम से उत्पन्न होने वाले अपूर्व का लक्षक माना जाता है **जुहूशब्देनतत्साध्यापूर्व-लक्षणात्** अर्थात् प्रकृत उदाहरण वाक्य में 'जुहू' शब्द का अर्थ लक्षणावृत्ति से जुहू से होने वाला अपूर्व **'जुह्वपूर्व'** माना जाता है। अतः **'पर्णमयी जुहूर्भवति'** का वाक्यार्थ होगा **'पर्णतया जुहूं भावयेत्'** और इस वाक्यार्थ का बोधार्थ इस प्रकार है **'पर्णतया जुह्वपूर्वं भावयेत्'** अर्थात् **पर्णतया अवत्तहविर्धारणद्वारा यदपूर्वसाधनं तद् भावयेत्**[7] अब यदि जुहू किसी अन्य काष्ठ की बनाई जायेगी तो अपूर्व की सिद्धि नहीं होगी और यदि पलाशनामक काष्ठ की जुहू होगी तो अपूर्व साध्य होगा- **'एवं च यदि पर्णतया जुहूः क्रियते तदैव तत् साध्यमपूर्वं भवति नान्यथेति गम्यते'**[8] अतः पर्णता विशेषण सार्थक है अनर्थक या व्यर्थ नहीं है- **'इति न पर्णताया वैयर्थ्यम्'**।[9]

आशंका- 'जुहू' शब्द दो अर्थों को धारण किये हुए हैं। 1. एक रूढ़ार्थ पात्रविशेष अर्थात् 'जुहू' एक पात्रविशेष अर्थ में रूढ है जिसमें विभक्त की हुई हवि रखी जाती है। 2. होम के सम्पादन हेतु कोई भी उपयोगी पात्र 'हूयते अनया इति

---

6. मीमांसान्यायप्रकाश पृष्ठ 192
7. मीमांसान्यायप्रकाश पृष्ठ 192
8. अर्थसंग्रह पृष्ठ 86
9. अर्थसंग्रह पृष्ठ 86

जुहूः' व्युत्पत्तिलभ्य जुहू शब्द का यौगिकार्थ यज्ञोपयोगी पात्र ले सकते है। अतः जुहू शब्द का यौगिकार्थ लेने पर स्रुव, उपभृत्, ध्रुव आदि सभी पात्रों का ग्रहण हो जाता है।

अतएव आशंका है कि जुहू नामक पात्र विशेष का ग्रहण हो या यज्ञोपयोगी किसी भी पात्र का?

आशंका निवारण- **'पर्णमयी जुहूर्भवति'** इस वाक्य में जुहू शब्द का अर्थ रूढ़ार्थ ही ग्राह्य है, यौगिकार्थ नहीं। प्रकृत वाक्यार्थ बोध हेतु **'अवत्तहविर्धारणद्वारेति-चावश्यंवक्तव्यं'**[10] इस पद का प्रयोग अनिवार्य है। और इस पद के प्रयोग से सम्यक् बोध हो जाता है कि पलाश के द्वारा जुहू नामक पात्र का निर्माण करना चाहिये। जिस पात्र में विभक्त किया हुआ हवि रखा जाता है। क्योंकि अवत्त हवि जुहू नामक पात्रविशेष में ही रखा जाता है। अतः **'अवत्तहविर्धारणद्वारा'** पद प्रयोग होने से स्रुव आदि पात्रों की निवृत्ति हो जाती है। और पर्णताधर्म से युक्त पात्रविशेष ही ग्रहण होता है।

स्वरूपोदाहरण का सम्यक् बोध हो जाने पर किंचित् प्राबल्य का विचार प्रस्तुत किया जा रहा है-वाक्य की प्रकरण से प्रबलता- विनियोग के क्रम में प्रकरण की अपेक्षा वाक्य पहले आने से प्रबल माना जाता है। एक देश या काल में दो प्रमाणों से विनियोग की संभावना होती है वहाँ दोनों का समवाय होने पर दोनों का प्रयोग न करके केवल एक का किया जाता है। जो प्रबल होगा उसी का विधान होगा। क्योंकि उसके समक्ष दूसरा निर्बल हो जायेगा- **श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यम् अर्थविप्रकर्षात्।**[11]

इसी प्रकार का प्रसंग दर्शपूर्णमास से सम्बद्ध अध्याय में पठित सूक्तवाक नामक अनुवाक में आता है। इसमें दर्भ नामक घास जिसका पारिभाषिक नाम प्रस्तर है- अग्नि प्रक्षेप प्रहरण विहित है **(सूक्तवाकेन प्रस्तरं प्रहरति)** वहीं पर 'सूक्तवाक' में दो वाक्य पठित हैं-

1. अग्नीषोमाविदं हविरजुषेतामवीवृधेतां महोज्यायोऽक्राताम्[12]

व

2. इन्द्राग्नी इदं हविरजुषेतामवीवृधेतां महोज्यायोऽक्राताम्[13]

---

10. मीमांसादर्शन सूत्र 3/3/14
11. अर्थसंग्रह हिन्दीव्याख्या पृष्ठ 90
12. अर्थसंग्रह हिन्दी व्याख्या पृष्ठ 90
13. मीमांसाशाबरभाष्य सूत्र 3/3/14

मीमांसा का सिद्धान्त पक्ष यह है कि इन दोनों वाक्यों में से- **'अग्निषोमाविदं हविः'** आदि वाक्य का विनियोग पौर्णमासयाग में होना चाहिये और **'इन्द्राग्नी इदं हविः'** आदि का दर्शयाग में क्योंकि अग्नि और सोम पौर्णमास के देवता हैं, व इन्द्र और अग्नि दर्श के देवता है। देवता के नाम वाले मन्त्रों का विनियोग उससे सम्बद्ध याग में ही करना उचित होता है एक-एक वाक्य भी सूक्तवाचक होने से एक ही मन्त्र के दोनों वाक्यों का अलग-अलग विनियोग करना अनुचित भी नहीं होगा।

मीमांसाशास्त्र में प्रकरण की अपेक्षा वाक्य ही प्रबल है। अतः वाक्यप्रमाण के आधार पर ही विनियोग होना चाहिए। वाक्यप्रमाण के आश्रित होने पर **'इन्द्राग्नी इदं हविः'** यह वाक्य दर्शयाग का ही अङ्ग होगा, दर्श व पूर्णमास दोनों का नहीं। इसी प्रकार **'अग्निषोमाविदं हविः'** आदि पूर्णमासयाग का अङ्ग होगा दर्श का नहीं। क्योंकि वाक्यप्रमाण प्रकरणप्रमाण से प्रबल होता है।

प्रकरण की अपेक्षा वाक्य को प्रबल मानने में हेतु-

वाक्य प्रमाण से प्रकरण प्रमाण की दुर्बलता का कारण विनियोग से उसकी दूरी है। उदाहरणस्वरूप **'इन्द्राग्नी इदं हविः'** यहाँ पर प्रकरणप्रमाण से विनियोग मानने पर **'अग्निषोमौ'** और **'इन्द्राग्नी'** पदों को क्रमशः दर्श एवं पूर्णमास के प्रसंगों में से निकालना होगा। दर्शयाग में **'अग्निषोमौ'** को निकाल देने पर शेष वाक्य में कर्त्ता का अभाव होने से **'इन्द्राग्नी'** का अन्वय करके पूर्ण वाक्य का निर्माण करना पड़ेगा। अर्थात् प्रकरणप्रमाण से कार्य करने पर 'वाक्य' की कल्पना करनी पड़ेगी। उस वाक्य के द्वारा इन्द्राग्नी दोनों देवताओं को प्रकाशित करने वाले सामर्थ्यरूप लिङ्गप्रमाण की कल्पना करनी होगी। उस लिङ्गप्रमाण से साक्षात् विनियोजक श्रुति की कल्पना करनी होगी अर्थात् प्रकरण से कार्य करने पर वाक्य, लिङ्ग और श्रुति इन तीनों की कल्पना करने पर अर्थसिद्धि होगी जबकि वाक्य से कार्य करने पर केवल लिङ्ग और श्रुति की ही कल्पना करनी होगी। मध्य में एक प्रमाण की कल्पना कम करनी पड़ती है। इसलिये वाक्यप्रमाण प्रकरणप्रमाण की अपेक्षा बलवान् होता है।

भाष्यकार ने बलवत्ता इस प्रकार दर्शायी- **प्रकरणाद् वाक्यं बलीयः। कथम्? अर्थविप्रकर्षात्। कोऽत्रार्थविप्रकर्षः?..... एषोऽत्रार्थविप्रकर्षः- यद् वाक्यस्य समासन्ना श्रुतिः, प्रकरणस्य विप्रकृष्टा।**[14]

वाक्य प्रकरण से प्रबल है इस पर मीमांसान्यायप्रकाश भी द्रष्टव्य है-

तदिदं वाक्यं प्रकरणाद्बलीयः, प्रकरणं हि न साक्षाद्विनियोजकम्, तद्धि आकाङ्क्षारूपम्। न चाकाङ्क्षा स्वयं प्रमाणं, किन्तु साकाङ्क्षं वाक्यं

14. मीमांसान्यायप्रकाश पृष्ठ 202

प्रकरणस्वरूपं दृष्ट्वा भवत्येतादृशी मतिः- नूनमिदं वाक्यं केनचिद्वाक्ये-नैकवाक्यभूतमिति। ततश्चाकाङ्क्षारूपं प्रकरणं वाक्यस्य वाक्यान्तरैकवाक्यत्वे प्रमाणम्। एवं च यावत्प्रकरणं वाक्यं कल्पयित्वा विनियोजकं भवति तावद्वाक्यं लिङ्गश्रुती कल्पयित्वा विनियोजकं भवतीति प्रकरणाद्वाक्यं बलीयः।[15]

अत एव 'इन्द्राग्नी इदं हविरजुषेतामवीवृधेतां महोज्यायोऽक्राता' मित्यत्रेन्द्राग्नीपदस्य लिङ्गाद्दर्शाङ्गत्वे सिद्धे 'इदं हविः' रित्यादेरपि तदेक-वाक्यत्वाद्दर्शाङ्गत्वम्, न तु प्रकरणाद्दर्शपूर्णमासाङ्गत्वम् प्रकरणाद्वाक्यस्य बलीयस्त्वादिति।[16]

प्रकरणस्थल में विद्यमान वाक्यों में परस्पर आकाङ्क्षा होती है- उपकारक उपकार्य की। अङ्गाङ्गी वाक्यों में उपकार्योपकारकभाव की आकाङ्क्षा ही प्रकरण है इस विषय में कुमारिलभट्ट का विचार है-

प्रकरणे हि स्वार्थपरिपूर्णानामङ्गाङ्गिवाक्यानामुपकार्योपकारकत्वआकाङ्क्षा-मात्रं दृश्यते।[17]

प्रकरणस्थल में विद्यमान अङ्गाङ्गी वाक्यों की सङ्गति प्रत्यक्ष नहीं परन्तु अनुमेय है, जबकि वाक्यस्थल में पदों की सङ्गति प्रत्यक्ष रहती है-

प्रत्यक्षा संगतिर्वाक्ये न च प्रकरणेऽस्त्यसौ।
आकाङ्क्षातोऽनुमातव्या तावता विप्रकृष्टता।।[18]

वाक्ये तु प्रत्यक्षः संबन्धः। ततश्च सहप्रस्थितयोर्यावत्प्रकरणेनैकवाक्यता कल्प्यते, तावद्वाक्येनाभिधानसामर्थ्यं, यावदितरत्र वाक्येन सामर्थ्यं तावदिह सामर्थ्येन श्रुतिस्तावदितरत्र श्रुत्या विनियोगोऽभिहित इति 'विच्छिन्नायामाकाङ्क्षायां श्रुत्यनुमाने मूलाभावाद्विहते कल्पितमपि शेषत्वनिष्पत्तिमगत्वान्तरैव विलीयते। तस्माद् वाक्यं बलीयः'[19]

इस पर न्यायसुधाकार ने भी यही बात कही-

'वाक्यानामित्यनेन प्रकरणेऽङ्गाङ्गिवाक्यानां प्रत्यक्ष सङ्गतिर्नास्तीत्यर्थः सूचितः वाक्ये पदानां सङ्गतिः प्रत्यक्षेत्यर्थः।'[20]

---

15. मीमांसान्यायप्रकाश पृष्ठ 202
16. तन्त्रवार्तिक सूत्र 3/3/14
17. तन्त्रवार्तिक सूत्र 3/3/14
18. तन्त्रवार्तिक सूत्र 3/3/14
19. तन्त्रवार्तिक पर न्यायसुधा सूत्र 3/3/14

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (94-103) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

पाणिनीयधातुपाठेऽपठितानां काशकृत्स्नीयधातुपाठे समुपलब्धानां धातूनां वैदिकप्रयोगाः

- प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री*

सुमति**

बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यम् वर्षसहस्त्रम् प्रतिपदोक्तानाम् शब्दानाम् शब्दपारायणम् प्रोवाच नान्तं जगाम।[1] **धातूनां सामान्येन कल्पनया एकेन धातुना अनेकनामानां व्युत्पत्तिः उत्तरकाले जाता।**[2] पदेषु अर्थानां सूक्ष्मभेदः शनैः शनैः न्यूनतां गता अनन्तरमवरकाले मानवबुद्ध्या ह्रासः सञ्जातः। तदुत्तरं धातूनां सम्मेल्य एकमेव धातुः स्वीकृतः तथा तेनैव धातुना शतशः नामानि व्युत्पन्नानि। संस्कृतजगति वैय्याकरणनिकाये तेषामेव प्रयोगाणां साधुत्त्वमुररीक्रियते येषां साधुत्त्वं पाणिनीयेन शास्त्रेण व्यवस्थाप्यते। येषां साधुत्त्वं पाणिनीयेन तन्त्रेण नोच्यते ते द्विविधाः सन्ति- एके छान्दसाः अपरे चार्षाः।

वैदिककालीन आदिभाषायां प्रायः ते समेऽपि प्रयोगाः व्यवहृयन्ते स्म यान् पाणिनि प्रभृतिः वैय्याकरणाचार्याः केवलं छान्दसं मन्यन्ते। पाणिनीय धातुपाठे जुहोत्यादिगणे स्वादिगणान्ते च एतादृशाः धातवः पठिताः येषां आद्यन्ते छन्दसि[3] पदेन छान्दसत्त्वं निर्दिष्टं परञ्च काशकृत्स्नस्थ धातुपाठे एवंविध धातूनां पाठः छन्दस्यादि विशिष्टपदैर्विना सामान्येन कृतः। पाणिनीय परम्परायां केचन वैदिकशब्दानां साधनार्थं व्यत्ययः, बहुलम्, निपातनादि प्रक्रियाणां ग्रहणं भवति परञ्च काशकृत्स्नीय धातुपाठे केचन एतादृशाः धातवः पठिताः यैः वैदिकशब्दाः अनायासेन सिद्ध्यन्ति।

प्रस्तुतशोधपत्रे काशकृत्स्नीय धातूनां केचन वैदिकोदाहरणानि प्रदर्शितानि सन्ति ये पाणिनीयधातुपाठे क्लिष्टतया सिद्ध्यन्ति। वैदिकशब्दसिद्ध्यर्थं उणादयो बहुलमिति सूत्रव्याख्याने महाभाष्यकारपतञ्जलिः उणादीनां प्रयोजनानि क्षेत्रञ्च व्याख्यन्नाह-

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम्।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु॥

---

* प्रोफेसर, वेदविभाग गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार/कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

** शोधच्छात्रा, वेदविभाग गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार।

यत्र पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम्।
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद् विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु।।[4]

काशकृत्स्नीय धातुपाठे केचन पृथक् प्रकृतयः निर्दिष्टास्तैः सह यथायोग्यप्रत्ययययोगेन सौकर्यतया वैदिकशब्दानां सिद्धिर्भवति।

एतच्छोधपत्रं धातूनां वैदिकप्रयोगान् दर्शयति। अस्मिन्शोधपत्रे संगृहीतानि कानिचित् उदाहरणानि पठितभिन्नधात्वर्थानामर्थे भाष्यकाराः व्याख्यायन्ते। अत्रैवमुच्यते धातुपाठे यान्यर्थानि संगृहीतानि तान्युपलक्षणमात्राणि। एतदेव लक्ष्यीकृत्य काशकृत्स्नीय धातुपाठे कन्नडटीकारम्भे उद्धृतः श्लोकः एवंविधः-

निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्च त्रयोऽप्यमी।
अनेकार्थाः स्मृताः सद्भिः पाठस्तेषां निदर्शनम्।।[5]

तथाहि आचार्य सायणोऽपि भू सत्तायां व्याख्यानावसरे आह- **उपलक्षणार्थ-मर्थनिर्देशः।**[6] अतः धातुपाठे निर्दिष्टार्थात् भिन्नार्थे धातोः प्रयोगः समीचीनमेव। **अनेकार्थाः हि धातवः।**[7]

अंश√ समाघाते[8]- **तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः।**[9] अंशयति हिनस्ति भक्तानां दुष्टभावान् सः अंशः परमेश्वरः। समाघातो हिंसनम्।[10] दुष्टानां सम्यग् घातकः।[11]

अग√ आदाने[12]- **यावगस्तिं मित्रावरुणा।**[13] अगं वृक्षमस्यत्युत्पाटयति स अगस्तिः मुनिर्वा।[14] अगस्तिः ऋषिः वृक्षजातिश्च।[15] वसेस्तिः[16] इत्यनेन तिः प्रत्ययः सुडागमश्च बाहुलकात्। अगं विन्ध्यं स्त्यायति स्तभ्नाति वा। **अथ त्वमगदश्चर।**[17] **यातयन्तामगदोऽयमस्तु।**[18] **भ्रातरगस्त्य सखा।**[19] **अगस्त्यः खनमानः।**[20] अगस्त्योदये जलानि प्रसीदन्ति इत्यागमः। तथा च रघौ प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः। **अगस्त्यो नरां नृषु।**[21] **अगस्त्यो यत्त्वा विश आजभार।**[22]

अप√ पालने[23]- **शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये।**[24] स्वे स्वेऽन्तरे सर्व्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् इति मनुः। **विश्वे देवासो अप्तुरः।**[25] मनुष्याणामपः प्राणान् तुतुरति विद्यादिबलानि प्राप्नुवन्ति प्रापयन्ति च ते। अयं शीघ्रार्थस्य तुरेःक्विबन्तः प्रयोगः।[26] उदकस्य प्रेरका इति सायणः। **इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः।**[27] आप्नोति व्याप्नोति सर्वान् पदार्थानिति अप्तुः शरीरं वा।[28] आप्यते अनेन स्वर्गादिः इति अप्तुः यज्ञः अग्निश्च।[29] अप्तुः देवताविशेषः, कालः याजकः, यज्ञयोनिश्च।[30] **पञ्च व्राता अपस्यवः।**[31]

अक्ष√ खेलने[32]- **यस्यागृधद्वेदने वाज्य1क्षः।**[33] अश्नुते व्याप्नोतीति अक्षः अक्षाणीन्द्रियाणि तुषं चक्रं शकटं व्यवहारो वा।[34] **अक्षासो अस्य वितिरन्ति।**[35] **अक्षास इदङ्कुशिनो।**[36] **अक्षैर्मा दीव्यः।**[37] द्यूतपाशैः इति सायणः।

अघ√ पापकरणे[38]– **केवलाघो भवति केवलादी।**[39] पापवान् भवति इति सायणः। **यो नः पूषन्नघो वृको।**[40] **आरे अघानि देवा।**[41] पापानि इति सायणः। **जहि यो नो अघायति।**[42] अघं पापं दुःखं वा । **रक्षा राजन्नघायतः।**[43] **अघायतामपि नह्या।**[44] **समस्मा अघायते।**[45]

अच्छ√ गतौ[46]– अच्छाभेः आप्तुमिति शाकपूणिः।[47] **त्वामच्छा जरितारः।**[48] साक्षात्। अच्छ शब्दस्य संहितायां निपातस्य च[49] इति दीर्घः सायणानुसारं। **अच्छा कोशं मधुश्चुत।**[50] **अच्छा नः शीरशोचिषं।**[51] **अच्छा नो याह्या।**[52] **अच्छा व इन्द्रं मतयः।**[53] **अच्छा समुद्रमिन्दवो।**[54] **अच्छा हि त्वा सहसः।**[55]

अव्य√ बन्धने पालने च[56]– **ग्नास्पतिर्नो अव्याः।**[57] **धिय इन्नो अव्याः।**[58]

आपृ√ लम्भने[59]– **अन्तरिक्षमापृणाद्रसेन।**[60]

इक्ष√ आस्वादने[61]– **परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे।**[62] **पक्ष्माण्यवार्याऽइक्ष-वोऽवार्याणि पक्ष्माणि।**[63] इक्षुदण्डाः इति दयानन्द भाष्ये। इष्यते स इक्षुः मधु तृणं वा।[64] इच्छन्ति तमिति इक्षुः गुडादिप्रकृतिः।[65]

इड√ धारणे[66]– **इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।**[67] इडा इति पृथिवीनाम।[68] **जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः।**[69]

इनअ सम्भक्तौ[70]– **दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।**[71] इनःस्वामीपतिः सर्वेषां पालयिता इति सायणः। एतीति इनः ईश्वरो राजा प्रभुः सूर्यो वा।[72] एति गच्छतीति इनः आदित्यः आत्मा स्वामी च।[73] इण्सञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् सूत्रेण नक् प्रत्ययः।

ईळ√ स्तुतौ[74]– **अग्निमीळे पुरोहितं।**[75] स्तुवे याचे अधीच्छामि प्रेरयामि वा। ईडे स्तौमि ईड स्तुताविति धातुः डकारस्यडकारोबह्वृचाध्येतृसंप्रदायः,अज्मध्यस्थडकारंबह्वृचा जगुः इति सायणः।

ईर्षा√ गतिहिंसादानेषु[76]– **ईर्ष्याया ध्राजिम्।**[77] ततस्त ईर्ष्या।[78] मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः।[79]

ऋक्ष√ हिंसायां दीप्तौ च[80]– **ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ।**[81] **कृष्णो रात्र्याऽऋक्षो जतूः।**[82] ऋषति गच्छतीति ऋक्षं नक्षत्रं सामान्यं वा।[83] मृगजातिभेदो भल्लूकः।[84] स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित् अनेन सः प्रत्ययः।

एन√ सम्भक्तौ[85]– **सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे।**[86] **एमेनं सृजता सुते।**[87]

कक्ष√ धारणे[88]– **उरुः कक्षो न गाङ्‌ग्यः।**[89] क्रान्तस्तटादिः इति दयानन्द भाष्ये। कषति हिनस्तीति कक्षं तृणं लतावनसमीपं बाहुमूलं वा।[90] **वाणिजाय कक्षाणां**

पतये नमो नमः।[91] गृहप्रान्तावयवेषु स्थितानाम् इति दयानन्दीय यजुर्वेदभाष्ये।

कर्क√ लौल्ये[92]- **केसराणि कर्कन्धु जज्ञे।**[93] येन कर्म दधाति इति भाष्ये। डुधाञ् धातुना अन्दूदृम्फूजम्बूकम्बूकफेलुकर्कन्धूदिधिषूः[94] अनेन कूः प्रत्ययः, निपातनात् नुमागमः प्रत्ययस्य ह्रस्वत्वमपि।

कल√ धारणे[95]- **एतानि भद्रा कलश क्रियाम।**[96] **आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा।**[97] पाणिनि मते कल अव्यक्ते शब्दे इत्यादिना साध्यते।

काडि√ परिच्छेदे[98]- **इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य।**[99] **काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती।**[100] ग्रन्थेर्ग्रन्थेः इति दयानन्द भाष्ये।

कीज√ अव्यक्ते शब्दे[101]- **यो वा कीजो हिरण्ययः।**[102]

कुक्ष√ पूरणे[103]- **ह्रदाइव कुक्षयः।**[104] कुक्षति पूरयति कुक्षिः। उदराणि इति सायणः। पाणिनीयास्तु कुण्णाति निष्कर्षतीति कुक्षः जठरस्थानं वा। गर्भाषयो वा। प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः[105] अनेन क्सिः प्रत्ययः। **कुसूला ये च कुक्षिलाः।**[106]

कुभ√ धारणे[107]- **छन्दःस्तुभःकुभन्यव।**[108] **मा वो रसानितभा कुभा।**[109] कुत्सितप्रकाशा दयानन्दभाष्ये। कुत्सितदीप्तिश्च इति सायणः। **त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं।**[110]

कुशि√ श्लेषणे[111]- **शरासः कुशरासो दर्भासः।**[112] कुशरासः कुत्सितशराः अल्पछिद्राः शरसदृशाः तृणविशेषाःइति सायणः। **पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु।**[113]

क्ष्मै√ धारणे[114]- **सदनानि कृत्रिमा क्षमया वृधान।**[115] क्ष्मेति पृथिवीनामसु पठितम्।[116] स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो।[117] **क्षमया वृधानऽओजसा।**[118] क्षमते सहते सर्वमिति क्ष्मा पृथिवी वा। क्षमेरुपधालोपश्च अनेन अच् प्रत्ययः धातोः उपधालोपश्च।

खृ√ गतौ[119]- **पिशङ्गे सूत्रे खृगलं।**[120] **तनूनां खृगलेव विस्त्रसः।**[121]

गह√ हिंसागत्योः[122]- **दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत्।**[123] **शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।**[124] **दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत्।**[125]

गुल्फ√ गतौ- **केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ।**[126] **कस्मान्नु गुल्फावधराव-कृण्वन्नष्ठीवत्तावुत्तरौ पूरुषस्य।**[127] गलति भक्षयतीति गुल्फः पादः ग्रन्थिर्वा।[128] नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः अनेन अच् प्रत्ययः।

ग्लौ√ हर्षे- **ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति।**[129] ग्लायति हर्षक्षयं करोतीति ग्लौः चन्द्रमा वा।

च्यव√ हसने[130]- **विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि।**[131] त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको।[132] रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान।[133]

जग√ आदाने[134]– **जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी।[135] यत्स्था जगच्च्य रेजते।[136] विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश।[137]** जगतीति जगत् ।

जघि√ गतौ[138]– **ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा।[139] जङ्घे निर्ऋत्यन्यऽदधुः।[140]** जायतेऽसौ जङ्घा जानोरधोभागो वा।

जठ√ धारणे[141]– **आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत।[142]** उदराग्निं इति दयानन्द भाष्ये। **सोमेन पूतो जठरे सीद।[143] ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या।[144] याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना।[145]**

जु√ जुगुप्सायाम्[146]– **राये कवितरो जुनाति।[147] विश्वे मरुतो जुनन्ति।[148] सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति।[149]**

जुङ्√ गतौ[150]– **जवस्ते अर्वन्निहितो गुहा।[151] ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः।[152]**

नुङ्√ शब्दे[153]– **हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः।[154] अभी नवन्ते अद्रुहः।[155] इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे।[156]**

पर्ष√ स्नेहने[157]– **खले न पर्षान्प्रति हन्मि।[158] उ नः पर्षण्यति द्विषः।[159]** पर्षति स्निह्यति प्रीतिकरं प्रसन्नं भवति चित्तमस्यां सभा समाजो वा।[160]

पिपील√ चलने[161]– **आतुतोद पिपीलः।[162] शकुन आतुतोद पिपीलः।[163]**

पिप्पल√ चलने[164]– **तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन।[165] तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे।[166]**

पिशि√ भाषार्थः[167]– **यः पिंशते सूनृताभिः।[168] मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।[169] त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।[170]** पिश्यतेऽवयवरूपं क्रियते तत् पिशितं मांसं वा।[171]

पुष√ वृद्धौ– **ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः।[172] क्रतुमा क्षेति पुष्यति।[173] असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति।[174] तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति।[175] सह ओजः पुष्यति।[176] क्षेति पुष्यति भद्रा।[177]**

प्रेणृ√ गतिप्रेषणाश्लेषणेषु[178]– **प्रेणिमावतं ताभिरू षु।[179] यदरिप्रमासीत्प्रेणा।[180]**

बट√ सेवायाम्[181]– **बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।[182]**

बुधि√ हिंसायाम्[183]– **पप्रथद्बोधति त्मना।[184] बृहत्सुकीर्तिबोधति त्मना।[185] ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम।[186] अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।[187]**

ब्रह√ वृद्धौ[188]– **ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र।[189] अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।[190]** बृंहति वर्धते तद् ब्रह्म ईश्वरो वेदस्तत्वं तपो वा।[191]

भुङ्√ गतौ[192]– **भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः।[193]**

मघ√ कैतवे च[194]– **मंहते मघम्।[195] नानशुर्मघम्।[196] स्तुतो मघम्।[197]** मह्यते पूज्यतेऽसौ मघवा सूर्यो वा।[198]

मर्क√ आदाने[199]– **सूरश्च मर्क उपरो बभूवान।[200]** मर्कः मार्जयिता सर्वस्य शोधयिता इति सायणः। मर्चति चेष्टतेऽसौ मर्कः शरीरमायुर्वा।[201]

मुख√ गतौ[202]– **यस्या अयो मुखम्।[203] यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं।[204]** खनत्यन्नादिकमनेनेति मुखं आस्यम्।[205]

मुष्क√ गतौ[206]– **अधि मुष्कयोः।[207]** मुष्यत आव्रियत इति मुष्कः अण्डकोषः सङ्घातो वा। सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्[208] अनेन कक् प्रत्ययः।

मृ√ गतौ[209]– **अपरं चन जरसा मरते।[210]** म्रियते इति सायणः।

रव√ गतौ[211]– **मर्याकरो रविः।[212]** रौतीति रविः सूर्यो वा। अचः इः सूत्रेण इः प्रत्ययः।

हस्त√ आदाने[213]– **मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति।[214] अयं मे हस्तो।[215] परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु।[216] अयं मे हस्तो भगवानयं।[217] ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्।[218] साविषक्पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो।[219]** हसतीति हस्तः नक्षत्रं करो वा। उणादि सूत्रेण[220] तन् प्रत्ययः।

हिरण√ शब्दे[221]– **सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः।[222] शाण्डो दाद्धिरणिनः।[223]** हर्यते काम्यते तत् हिरण्यं सुवर्णं वा।

हुङ्√ शब्दे[224]– **हव्यवाड् जुह्वास्यः।[225] यजिष्ठं हव्यवाहनः।[226]** हव्यन्यादातुमर्हाणि वसूनि वहति प्राप्नोति तत्सम्बुद्धौ सभ्यजन इति दयानन्दभाष्ये। **देवत्रा हव्यवाहनीः।[227] हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम्।[228]** हूयते दीप्यतेऽसौ होमः यज्ञो वा। उणादिना[229] मन् प्रत्ययः।

तदेवं पाणिनीयशास्त्रे प्रकृत्यंशे प्रत्ययांशे च लोपागमादेशवर्णविकारादिविधानद्वारा यः प्रकृत्यन्तरनिर्देशो व्याख्यातः तद् काशकृत्स्नीय धातुपाठे स्वतन्त्ररूपेण पठितास्सन्ति। एवं च काशकृत्स्नीय धातुपाठमाश्रित्य अपाणिनीय छान्दस आर्ष उभयविध प्रयोगाणां परःसहस्राणां शब्दानां च समुद्धारः सौकर्येण शक्यते कर्त्तुम्।

सन्दर्भ–

1. महाभाष्य पस्पशाह्निक
2. शब्दयोनिश्च धातवः अमरकोष 3.3.63
3. जुहोत्यादिगण पृष्ठ 29
4. महाभाष्य 3.3.1
5. काशकृत्स्न धातुव्याख्यानम् आरम्भ
6. माधवीयाधातुवृत्ति 1.1

7. चान्द्र धातुपाठ आरम्भ
8. चुरादिगण 246
9. ऋग्वेद 2.27.1
10. उणादिसूत्र-लिङ्गानुशासनसूत्र-गणपाठ-प्रयोगदीपिकावृत्ति पुरोवाक् पृष्ठ 5
11. महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदभाष्य
12. भ्वादिगण 410
13. अथर्ववेद 4.29.3
14. उणादिकोष 4.180
15. उणादि-निरुक्ति-व्युत्पत्तिकोष पृ.2
16. उणादिकोष 4.180
17. अथर्ववेद 4.17.8
18. अथर्ववेद 5.29.6-9
19. ऋग्वेद 1.170.3
20. ऋग्वेद 1.179.6
21. ऋग्वेद 1.180.8
22. ऋग्वेद 7.33.10
23. भ्वादिगण 227
24. ऋग्वेद 10.9.4
25. ऋग्वेद 1.3.8
26. दयानन्द ऋग्वेद भाष्य
27. ऋग्वेद 9.63.5
28. उणादिकोष 1.75
29. उणादि-निरुक्ति-व्युत्पत्तिकोष पृ.17
30. उणादि-निरुक्ति-व्युत्पत्तिकोष पृ.17
31. ऋग्वेद 9.14.2
32. भ्वादिगण 515
33. ऋग्वेद 10.34.4
34. उणादिकोष 3.65
35. ऋग्वेद 10.34.6
36. ऋग्वेद 10.34.7
37. ऋग्वेद 10.34.13
38. चुरादिगण 266
39. ऋग्वेद 10.117.6
40. ऋग्वेद 1.42.2
41. ऋग्वेद 2.29.5
42. ऋग्वेद 1.131.7
43. ऋग्वेद 1.91.8
44. अथर्ववेद 10.9.1
45. ऋग्वेद 6.51.6
46. भ्वादिगण 355
47. निरुक्त 5.4.9
48. ऋग्वेद 1.2.2
49. अष्टाध्यायी 6.3.136
50. सामवेदसंहिता 658
51. सामवेद 1554
52. सामवेद 1384
53. सामवेद 375
54. सामवेद 659
55. सामवेद 1553
56. भ्वादिगण 226
57. ऋगवेद 2.38.10
58. ऋग्वेद 10.139.5
59. चुरादिगण 301
60. अथर्ववेद 4.35.3
61. भ्वादिगण 521
62. अथर्ववेद 1.34.5
63. यजुर्वेद 25.1
64. उणादिकोष 3.157
65. उणादि० निरु.व्यु.को.पृ.-46
66. भ्वादिगण 215
67. ऋग्वेद 10.191.1
68. निघण्टु 1.1
69. ऋग्वेद 2.10.1
70. भ्वादिगण 219
71. ऋग्वेद 1.53.2
72. उणादिकोष 3.2
73. उणादि.निरु.व्यु.को.पृ.-
74. अदादिगण 41
75. ऋग्वेद 1.1.1

76. भ्वादिगण 527
77. अथर्ववेद 6.18.1
78. अथर्ववेद 6.18.2
79. अथर्ववेद 6.18.3
80. भ्वादिगण 513
81. ऋग्वेद 5.56.3
82. यजुर्वेद 24.36
83. उणादिकोष 3.66
84. उणादिकोष 3.67
85. भ्वादिगण 219
86. ऋग्वेद 1.30.3
87. ऋग्वेद 1.9.2
88. भ्वादिगण 516
89. ऋग्वेद 6.45.31
90. उणादिकोष 3.62
91. यजुर्वेद 16.19
92. भ्वादिगण 409
93. यजुर्वेद 19.91
94. उणादिकोष 1.93
95. भ्वादिगण 246
96. ऋग्वेद 10.32.9
97. ऋग्वेद 3.32.15
98. भ्वादिगण 178
99. अथर्ववेद 12.3.45
100. यजुर्वेद 13.20
101. भ्वादिगण 74
102. ऋग्वेद 8.66.3
103. भ्वादिगण 520
104. ऋग्वेद 3.36.8
105. उणादिकोष 3.68
106. अथर्ववेद 8.6.10
107. भ्वादिगण 362
108. ऋग्वेद 5.52.12
109. ऋग्वेद 5.53.9
110. ऋग्वेद 10.75.6
111. दिवादिगण 56
112. ऋग्वेद 1.191.3
113. ऋग्वेद 3.53.10
114. भ्वादिगण 483
115. ऋग्वेद 1.55.6
116. निघण्टु 1.1
117. ऋग्वेद 1.100.15
118. यजुर्वेद 33.92
119. भ्वादिगण 412
120. अथर्ववेद 3.9.3
121. ऋग्वेद 2.39.4
122. भ्वादिगण 316
123. ऋग्वेद 1.132.6
124. ऋग्वेद 10.129.1
125. यजुर्वेद 8.53
126. अथर्ववेद 10.2.1
127. अथर्ववेद 10.2.2
128. उणादिकोष 5.26
129. अथर्ववेद 6.85.3
130. चुरादिगण 176
131. ऋग्वेद 6.31.2
132. ऋग्वेद 3.30.4
133. अथर्ववेद 12.1.51
134. भ्वादिगण 410
135. ऋग्वेद 1.48.8
136. ऋग्वेद 1.80.14
137. ऋग्वेद 10.130.5
138. भ्वादिगण 203
139. अथर्ववेद 19.60.2
140. अथर्ववेद 10.2.2
141. भ्वादिगण 134
142. ऋग्वेद 5.34.2
143. अथर्ववेद 11.1.25
144. ऋग्वेद 6.67.7
145. ऋग्वेद 1.112.17

146. चुरादिगण 145
147. ऋग्वेद 7.86.7
148. ऋग्वेद 5.58.3
149. ऋग्वेद 1.169.3
150. भ्वादिगण 552
151. अथर्ववेद 6.92.2
152. अथर्ववेद 19.60.2
153. भ्वादिगण 551
154. ऋग्वेद 9.86.25
155. ऋग्वेद 9.100.1
156. अथर्ववेद 20.9.1
157. भ्वादिगण 507
158. ऋग्वेद 10.48.7
159. ऋग्वेद 10.126.3
160. उणादिकोष 1.130
161. भ्वादिगण 248
162. ऋग्वेद 10.16.6
163. अथर्ववेद 18.3.55
164. भ्वादिगण 248
165. ऋग्वेद 1.164.20
166. ऋग्वेद 1.164.22
167. चुरादिगण 188
168. ऋग्वेद 8.19.22
169. ऋग्वेद 1.161.10
170. अथर्ववेद 5.25.5
171. उणादिकोष 3.95
172. ऋग्वेद 10.104.9
173. ऋग्वेद 1.64.13
174. ऋग्वेद 1.83.3
175. ऋग्वेद 7.32.9
176. अथर्ववेद 4.32.1
177. अथर्ववेद 20.25.3
178. भ्वादिगण 212
179. ऋग्वेद 1.112.10
180. ऋग्वेद 10.71.1
181. भ्वादिगण 94
182. ऋग्वेद 13.2.29
183. चुरादिगण 75
184. ऋग्वेद 2.25.2
185. ऋग्वेद 5.10.4
186. अथर्ववेद 8.7.19
187. अथर्ववेद 20.74.4
188. भ्वादिगण 320
189. ऋग्वेद 1.10.4
190. ऋग्वेद 10.14.6
191. उणादिकोष 4.146
192. भ्वादिगण 552
193. अथर्ववेद 20.135.1
194. भ्वादिगण 414
195. ऋग्वेद 1.11.3
196. ऋग्वेद 1.151.9
197. अथर्ववेद 20.27.4
198. उणादिकोष 1.159
199. भ्वादिगण 410
200. ऋग्वेद 10.27.20
201. उणादिकोष 3.43
202. भ्वादिगण 38
203. ऋग्वेद 6.75.15
204. अथर्ववेद 2.35.5
205. उणादिकोष 5.20
206. भ्वादिगण 412
207. अथर्ववेद 6.138.4
208. उणादिकोष 3.41
209. भ्वादिगण 224
210. ऋग्वेद 10.86.11
211. भ्वादिगण 256
212. अथर्ववेद 20.128.13
213. चुरादिगण 47
214. ऋग्वेद 2.33.7
215. ऋग्वेद 10.60.12

216. ऋग्वेद 6.54.10
217. अथर्ववेद 4.13.6
218. अथर्ववेद 5.17.8
219. अथर्ववेद 1.18.2
220. उणादिकोष 3.86
221. भ्वादिगण 206
222. ऋग्वेद 5.33.8
223. ऋग्वेद 6.63.9
224. भ्वादिगण 551
225. ऋग्वेद 1.12.6
226. ऋग्वेद 1.36.10,1.64.12
227. ऋग्वेद 10.188.3
228. अथर्ववेद 18.4.15
229. उणादिकोष 3.84

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (104-109) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

संस्कृतव्याकरणेऽनुबन्धोपयोगिता

-संजय कुमार तिवारी
-प्रो.सत्यपाल सिंहः

मुख्यशब्दाः- भाषा, इत्संज्ञा, अनुबंधाः, व्याकरणम्, महाभाष्यम्, पाणिनि, महेश्वरसूत्राणि, प्रत्याहारः।

१. प्रास्ताविकङ्किञ्चित्

भाषा मानवमात्रस्य भावविचारयोः पारस्परिकादानप्रदानयोः सर्वोत्तम साधनमस्ति। भाषायाः माध्यमेनैव जनः स्वविचारं अपरेभ्यो ददाति अपरस्य च भावं गृह्णाति। मनुष्येषु भाषणशक्तिः प्रकृतेरनुकम्पास्ति। अत एव सः संसारस्य सर्वेषु जीवेषु सर्वोत्तमः। यदि संसारे भाषा न स्यात् चेत् संसारस्य कार्यमेव न प्रचलेत्। उक्तञ्च-

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥[1]

शुद्धां परिष्कृतां च भाषां न हि कश्चित् व्याकरणज्ञानमन्तरा वक्तुं पारयति। व्याकरणशास्त्रेणैव भाषासु प्रयुक्तानां शब्दानां साधुत्त्वान्वाख्यानं प्रयुक्तानां वा शब्दानां विधीयते। अतः निश्चप्रचं भाषाज्ञानाय व्याकरणशास्त्रस्य अवश्यं भाविता सिद्धा। अत एवोक्तम्-

नूनं व्याकरणं कृत्स्नं गुरुभिर्बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपभाषितम्॥[2]

अतः स्पष्टमस्ति यत् प्रकृतिप्रत्ययादीनां साधुज्ञानपूर्वकमेव भाषायाः साधुत्वज्ञानं भवितुं शक्यते। अत एव 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्' इति व्याकरणप्रयोजनकथनवाक्ये असन्देहस्य ग्रहणं कृतं तद्धि असन्देहार्थमध्येयं व्याकरणम् इति सम्पद्यते। तथैव शास्त्रातिरिक्ते लोकेऽपि उच्चारणगते दोषादोषविवेके अस्ति व्याकरणशास्त्रस्य महनीयोपयोगिता।

---

* शोधच्छात्रः, दिल्ली विश्वविद्यालयः, दिल्ली।
** दिल्ली विश्वविद्यालयः, दिल्ली।

1. काव्यादर्श 1.34
2. रामायण अरण्यकाण्ड

उक्तञ्च भाष्यकृता–

दुष्टःशब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।[3]

संस्कृतभाषायाः संरक्षणाय बहुभिर्वैयाकरणैर्नैकानि व्याकरणशास्त्राणि प्रथितानि तानि च–

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकटं पाणिनीयकम्।।[4]

तेषु नभालङ्करणेव शीर्षस्थितोऽस्ति पाणिनेर्व्याकरणतन्त्रम्। वस्तुतः पाणिनीय-व्याकरणात्प्राग्व्याकरणशास्त्रस्य विकासक्रमविषये अस्माकं परम्परायां किञ्चित् क्रमपरिगणनं प्रसिद्धं वर्तते। तद्धि–

समुद्रवद्व्याकरणं महेश्वरे तदर्धकुम्भोद्धरणं बृहस्पतौ।
तद्भागधेयञ्च शतं पुरन्दरे कुशाग्रविन्दूत्पतितं हि पाणिनौ।।[5]

इति किमपि विशिष्टं क्रममादाय पाणिनिव्याकरणस्य विशिष्टतामापादयन्ति ऋषयः। पुनरस्य व्याकरणशास्त्रस्य संवाहकत्वं वहन्त्यनुबन्धाः ये ह्यस्य शोधपत्रस्य व्याख्येयभूतास्सन्ति। भगवान् पाणिनिः स्वीये व्याकरणेऽनुबन्धानां प्रवर्तनं सोद्देश्यकं विदधाति। अनुबन्धानां संयोजनं धातुषु प्रत्ययेषु च विधाय लोपस्य विधानं करोति। लोपस्य च अनेकानि प्रयोजनानि निर्दिष्टानि अनेन लक्ष्यते यदनुबन्धाः शब्दनिर्माणनिर्देशकाः इमे एव निर्दिशन्ति यदत्र किङ्कार्यं विधेयमिति। अनुबन्धानां विषये भगवता पतञ्जलिनाप्युक्तं **"अनुबन्धकरणार्थश्च वर्णानामुपदेशः", अनुबन्धानां संख्यामिति न ह्यनुपदिश्च वर्णनानुबन्धाः शक्याः आसङ्क्तुम् "।**[6] अधुना व्याकरणशास्त्रेऽनुबन्धानां सामान्यावधारणा उपयोगिता च काऽस्तीति निरूपयितुमुपक्रमते।

विषयप्रवर्तनम्–

व्याकरणस्यास्य निर्माणे वैज्ञानिकतामापादयन्त्यनुबन्धाः तेन हि निर्माणे अनुबन्धा-नामाश्रयणं कृतम् अनुबन्धा एव संस्कृतव्याकरणस्य सञ्चालकाः सन्ति। अतः अनुबन्धानां वैलक्षण्यज्ञानं विना संस्कृतव्याकरणतन्त्रे रन्तुं न शक्यते। अनुबन्धा हि अत्र शास्त्रे विशिष्टतमं स्थानमादधति। अनुबन्धा हि व्याकरणनिकाये द्विविधाः प्रकल्पिताः। तत्र केचन **"इत्संज्ञकत्वमनुबन्धत्वम्, इत्संज्ञायोग्यत्वमनुबन्धत्वम्"**। पाणिनिना हि पञ्चसु

---

3. महाभाष्य पस्पशाह्निक
4. महाभाष्य पृ. 3
5. सारस्वत व्याकरणम्
6. म.भा. पस्पशा. 1.1

स्थलेषु अनुबन्धाः चिकीर्षिताः सन्ति। यथा- प्रकृतिषु (धातुप्रातिपदिकेषु), प्रत्ययेषु, आदेशेषु, आगमेषु सूत्रेषु चेति किन्तु सर्वत्रापि अनुबन्धानामुपयोगिता पृथक् पृथक् वर्तते। एकैकस्यैव हि अनुबन्धस्य धातुषु पृथक् फलं वर्तते, सूत्रेषु पृथक् फलं वर्तते, प्रत्ययेषु पृथक् फलं विद्यते, आगमेषु पृथक् आदेशेषु च पृथक् फलं वर्तते। एतेषाञ्चानुबन्धानां स्थालीपुलाकन्यायेनोपयोगितां निर्वोचन् कानिचनुदाहरणानि प्रस्तोतुमुपक्रमते।

1. लक्ष्यसंस्कारता

"साधुत्वानामन्वाख्यानमिदं व्याकरणं, प्रयुक्तानामिदं व्याकरणम्" इतीमाः काचित् सामान्यावधारणा व्याकरणशास्त्रस्य वर्तते। नाम प्रयुक्तानां पदानां साधुत्वस्यान्वाख्यानं व्याकरणेन विधीयते। शास्त्रे लोके वा प्रयुक्तपदानां संस्कारः करोति अयं तदर्थं व्याकरणशास्त्रे सूत्राणां महती परिकल्पना कृता वर्तते। सूत्रेषु तद्घटकीभूतेषु पदेषु च अनुबन्धानां योजना विहिताऽस्ति। एतेभ्यः अनुबन्धेभ्य एव तन्निमित्तककार्यस्य गुणवृद्धीत्यादेरवाप्तिर्जायते। येन लक्ष्यसंस्कारो जायत इति। वस्तुतः शब्दानां सिद्ध्यर्थे केवलं सूत्रेष्वेव अनुबन्धयोजना नालम् अपि च सूत्रवदेव धातुप्रातिपदिकप्रत्ययादेशागमेष्वपि क्रियते। प्रत्येकेषु च एकैकस्य ह्यनुबन्धस्योद्देश्यमपि भिन्नं भवति। येन सम्पूर्णस्य लक्ष्यसंस्कारकमहावाक्यस्योपलब्धिर्जायते। उदाहरणत्त्वेन।

यथा- टकारः अनुबन्धः प्रायः सर्वत्रापि दृश्यते किन्तु टित्करणस्य प्रयोजनं सर्वत्र पृथक् पृथक् वर्तते। प्रकृतौ टित्करणस्य प्रयोजनम् प्रातिपदिकेषु नदट् चोरट्, देवट्, इत्यादिषु प्रातिपदिकेषु टकारानुबन्धः कृतः अत्रास्य फलं **"टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः"**[7] इति सूत्रेण टितः ङीप् प्रत्ययो विधीयते तस्मात् नदी, चोरी, देवी इत्यादीनि रूपाणि निष्पद्यन्ते। एवमत्र ङीप् प्रत्ययः टित्करणस्य फलम्।

प्रत्ययेषु टित्करणम्- यथा कृत्-प्रत्ययेषु **"चरेष्टः"**[8] इति सूत्रेण 'ट' प्रत्ययः अत्र प्रत्यये टकारस्य इत्संज्ञा कृता विद्यते। तथा हि 'कुरुचरः' इत्यत्र टप्रत्ययान्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा तस्माट्टिड्ढाणञ्- इत्यादिना सूत्रेण टित्वात् 'ङीप्' प्रत्यये कृते 'कुरुचरी' इति रूपं निष्पद्यते, अत्र 'ङीप्' प्रत्ययः टित्करणस्य फलम्।

आगमेषु टित्करणं क्रियते यथा **"डः सि धुट्"**[9] इति सूत्रेण कृते धुडागमे टकारः अनुबन्धः कृतो वर्तते अत्र टित्करणस्य फलं **'आद्यन्तौ टकितौ'**[10] इति सूत्रबलात् आगमः स्वागमिनः आद्यवयवः स्यादिति टकारः अनुबन्धः क्रियते। तद्धि-

---

7. पा.सू 4.1.15
8. पा.सू. 3.2.16
9. पा.सू. 6.3.19
10. पा.अ. 1.1.46

षट्त्सन्तः इति प्रयोगे सस्य आदौ धुडागमः साधुर्भवति। 'अनुदात्ताङित आत्मनेपदम्', 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले', 'ञीतः क्तः', 'ङ्वितः क्त्रिः' इत्येवमादयः धातौ अनुबन्धानां फलानि दिग्दर्शनमात्राणि।

एवं प्रायः संस्कृतव्याकरणे बहूनि अनुबन्धप्रयोजनवत्सूत्राणि प्रणीतानि। 'नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके', 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्', 'अचोञ्णिति', 'उतोवृद्धिर्लुकि', 'क्ङिति च', 'वचिस्वपियजादीनां किति', एवं पृथक् पृथक् इत्यादीनि प्रत्ययस्थानां अनुबन्धानां फलानि कथितानि सन्ति। प्रकृत्यादिषु पञ्चसु स्थितानां प्रत्येकेषां अनुबन्धानामुपयोगिता प्रायः लक्ष्यसंस्कारपक्षेऽवधेयाः।

2. लाघवत्वम्

अपरं तावत् फलं अनुबन्धानां संस्कृतव्याकरणे लाघवत्वमिति वर्तते। संस्कृतव्याकरणे लाघवतत्त्वस्य महती आराधना विहिता वर्तते। उक्तञ्च परम्परायां **"एक मात्रा लाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः"** अनेन अनुबन्धानां लाघवत्त्वोपयोगितामिमां शीर्षस्थां क्रियते। व्याकरणशास्त्रे लाघवस्यापि अनेके स्वरूपाः निरूपिताः वर्तन्ते। यथा शरीरकृतलाघवः अर्थकृतलाघवः इति। अत्र अनयोः शरीरकृतलाघवोऽनुबन्धेन वर्तते। उदाहरणेन पश्यामश्चेद्यथा- **"इको यणचि"** इत्यस्मिन् सूत्रे इक्, यण्, अच् इति त्रीणि पदानि सन्ति। एतेषु त्रिष्वपि पदेषु अनेके वर्णाः अन्तर्भवन्ति। इक् इति पदेन इ,उ,ऋ,ऌ चत्वारः वर्णाः अन्तर्भाविताः भवन्ति। यण् इति पदेन य्,व्,र्,ल् इमे वर्णाः परिगणिताः सन्ति। तथैव अजिति पदेन अ,इ,उ,ऋ,ऌ,ए,ओ,ऐ,औ इति नवविधवर्णानामवबोधो जयते। प्रसङ्गेऽस्मिन् केवलेभ्यः सूत्रस्थपदत्रयेभ्यः नैकेषां वर्णानां बोधः जायत इत्यत्र अनुबन्धानामेव माहात्म्यमस्ति। तच्च **"हलन्त्यम्" अदिरन्त्येन सहेता"** सूत्रे बहुधा प्रपञ्चिम्।

3. उच्चारणार्थः

समग्रेऽपि व्याकरणेऽनुबन्धानां विनियोगः उच्चारणार्थोऽपि अस्तीत्यनुभूतोऽयं पक्षः समेषाम्। उपर्युक्तेषु धातुप्रातिपदिकादेशागमेषु प्रत्येकेष्वपि नैकेषु स्थलेषु उच्चारण-सौकर्याय अपि अनुबन्धानां विधानं क्रियत इति। तेषु केचन्नुदाहरणार्थं प्रस्तूयते- यथा **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** इति सूत्रेण मनिन् प्रत्ययः विधीयते। अत्र इकारानुबन्धः प्रत्ययोच्चारणे सहाय्यं यच्छति। अत्र यदि इकारानुबन्धः न क्रियते चेत् मन्न इति किमपि अस्पष्टं रूपं स्यात्। अतस्तन्न भवतु तदर्थं इकारानुबन्धोऽत्र सूत्रकृता नियुक्तम्। एवमेव नुम् नुट् तुक् आद्यागमेषु सत्स्वपि अन्यप्रयोजनेषु उच्चारणार्थेऽपि उकारानुबन्धः प्रयुक्तः वर्तते। अन्यथा सूत्रस्य स्वरूपं न्म्-न्ट्-त्क् इति किञ्चित् विकृतं भविष्यति। तेन विकृतेन स्वरूपेण सूत्रार्थावगमः भवितुन्नार्हति। तन्मा भवत्वित्विकारानुबन्धः उच्चारणार्थो

प्रयुज्यते। पुनश्च लणिति माहेश्वरसूत्रेऽपि लण्मध्यस्थोऽकारानुबन्धः उच्चारणसौकर्यायैव प्रयुक्तं वर्तते। उक्तञ्च भट्टोजिदीक्षितेन **"लण् सूत्रेऽकारश्च"**।[11] अकारानुबन्धानुपपादने ल्ण् इति रूपं स्यात्। विकारोऽयं मा भूदित्यकारानुबन्धोऽत्रोच्चारणार्थेति लक्ष्यते। तथैव कृत्प्रत्ययेषु इकारानुबन्धः उच्चारणार्थः विहितः सूत्रकृता[12] इतोऽपि सूत्रप्रत्ययादेशागमधातुषु अनेकानि स्थलानि उदाहरितानीति।

4. पदस्पष्टता

अनुबन्धानामपराप्येका उपयोगिता पदस्पष्टतेति वक्तुं शक्यते। दृष्टान्तत्त्वेन यथा- भ्रातृशब्दादपत्येऽर्थे **"भ्रातुर्व्यच्च"**[13] इत्यनेन सूत्रेण भ्रातुष्पुत्रेत्यर्थे व्यत् प्रत्ययः भवति। तथैव भ्रातृपदादेव शत्रुवाच्येऽर्थे गम्यमाने **"व्यन्सपत्ने"**[14] सूत्रेणानेन व्यन् प्रत्ययः भवति। अत्रोभयोः स्थलयोः स्थितिस्तावदेवं भवति।

अत्र भ्रातृ+ व्यत्- इति स्थितावनुबन्धकार्ये विभक्ति कार्ये च कृते भ्रातृव्यशब्दो निष्पद्यते। भ्रातृ+ व्यन्- विभक्त्यनुबन्धकार्ये सति भ्रातृव्य इति पदं सिध्यति। उभयत्रापि समानरूपत्त्वं वर्तते। कः शब्दः भ्रातुष्पुत्रेत्यर्थः वक्ति। को वा सपत्नः अर्थोऽभिव्यनक्तीति सन्देहः जायते। तन्निराकर्तुमनुबन्धानामाश्रयणं ग्राह्यमत्र। प्रकृतस्थले तकारनकारयोरनुबन्ध-योरुपात्तता वर्तते अनयोः तकारानुबन्धमाश्रित्य **"तित्स्वरितम्"** इति शास्त्रेण तकारानुबन्धघटिते भ्रातृव्यपदे स्वरितस्य विधानं कृतमस्तीति कृत्वात्र भ्रातृव्यशब्दः भ्रातुष्पुत्रेत्यर्थः गमयति। तथा च अपरे भ्रातृव्यपदे शेषनिघातत्त्वादाद्युदात्तता भवति यस्य सपत्नः शत्रुरित्यर्थो वा विवेकः कार्यः। एवमेव 'तव्य, तव्यत्' इति कृदन्तप्रत्ययस्थलेऽपि पूर्व्वदेव विवेच्यः पक्षः ज्ञेयः। उपर्युक्तेन विवेचनेनानुबन्धानामुपयोगितासु पदस्पष्टतापि कश्चन् पक्षः परिगणनीयः इति।

5. स्वरविधायकता

व्याकरणनिकायेऽनुबन्धानामुपयोगितासु स्वरविधायकतेत्येका विशिष्टतमोपयोगितेति परिगणिता शास्त्रकृता। व्याकरणशास्त्रे स्वरप्रक्रियेत्येकः सम्पूर्णोऽपि भागः एव निहितः वर्तते। यो हि स्वरवैदिकप्रक्रियेति नाम्नाभिधीयते। अत्र स्वराणां विधानेऽनुबन्धानामप्युपयोगिता स्वीकृताऽस्ति। तच्चेत्थं- 'क्व नूनम्' इति वाक्ये क्व इत्यत्र **"किमोऽत्"** इति सूत्रेण किमः स्थाने अत् प्रत्यये तकारस्य इत् संज्ञा लोपे च ततः **"क्वाति"** इति सूत्रेण किमः स्थाने क्वादेशः "यस्यति च" इत्यनेन प्रकृतस्थाकारलोपे क्व इति निष्पद्यते। क्व

---

11. सिद्धान्तकौमुदी, संज्ञाप्रकरणम्
12. नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः पा.सू.
13. पा.अ. 1.1.144
14. अष्टाध्यायी 1.1.145

इत्यस्मिन् स्थले कृतः अत् प्रत्ययः तकारानुबन्धघटितः एतावता **"तित्स्वरितम्"**[15] इत्यनेन क्व उत्तरवर्त्यकारे स्वरितस्वरः विधीयते। एवमेव अथुच्-आलुच्-अच्-इष्णुच् आदि प्रत्यान्त पदेषु **"चितः"** इति स्वरविधायकेन शास्त्रेण अन्तोदात्तस्वरः विधीयते। तथैव अध्यैन्- इन्-खुन्-अतृन्-थकन्-वुन्-अञ्-घञ् आदि प्रत्यान्तेषु वैदः गार्ग्यः वात्स्यः वासुदेवकः आर्जुनकः इत्यादि स्थलेषु **"ञ्नित्यादिर्नित्यम्"**[17] इति शास्त्रेण आद्युदात्तो विधीयते। अन्येऽपि बहवः अनुबन्धानिमित्तकस्वराः स्वरप्रक्रियायां उदाहृतं शास्त्रकृतेति। एवङ्क्वाचिदुपयोगताःस्थलीपुलाकन्यायेनोदाहृता अस्माभिरिति।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. जिज्ञासु पं. ब्रह्मदत्तः, पाणिनि अष्टाध्यायी, रामलाल कपूर ट्रष्ट, रेवली सोनीपत, 2010
2. गोविन्दाचार्यः, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, (चतुर्थण्ड) चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वारणसी 2022
3. शास्त्री भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, भैमी प्रकाशन, 1950
4. वासुदेव काशीनाथ अभयंकर, महाभाष्य पतञ्जलि, डेस्कन एजुकेशन सोसायटी, 1963
5. मीमांसक युधिष्ठिर, वैदिकस्वरमीमांसा, रामलाल कपूर ट्रष्ट, सोनीपत हरियाणा।
6. ज्योतिः, मुग्धबोध और अष्टाध्यायी के कृत् प्रत्ययों मे अनुबन्ध विज्ञान, International Journal of Applied Research, 2020
7. सरस्वती ज्ञानेन्द्र स्वामी, तत्वबोधिनी टीका, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी।
8. आचार्य वरदराज, लघुशिद्धान्तकौमुदी, गीताप्रेस गोरखपुर, 2010
9. http//www.sanskritebook.org/
10. http//www.slbsrsv.ac.in/library.asp

✦✦✦

15. अष्टाध्यायी 6.1.185
16. पा.अ. 4.3.98
17. पा.अ. 6.1.197

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (110-117) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

अथर्ववेदे अध्यात्मविद्या

प्रोफेसर अरुणिमा रानी*

अस्मिन् संसारे अध्यात्मविद्यैव सा शक्तिः याऽऽनन्दप्रवाहिणी चित्तवृत्तिनिरोधे सहायिका मोक्षसुखदायिका जीवब्रह्मणोः स्वरूपनिर्देशिका धर्मोपदेशिका अभ्युदयनिर्वाहिका निःश्रेयसप्रवणा विनयमाधुर्यशीला संन्यासधर्मदिग्दर्शिका कठिनाऽपि सरला द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थापिका निर्बीजसमाधिप्रापिका कैवल्यविवेकादिगुणैर्भुवं दिवं चाप्यतिशेते। अनिर्वचनीयमनुपमेयमवर्णनीयं चाध्यात्मविद्यायाः महत्त्वम्। सा ह्यपूर्वा दिव्या अनुपमा च शक्तिः। सा साधकानां पाथेयभूता, गुणानां निधिः, यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधीनामाकरः धृति-क्षमा-दम-अस्तेय-शौच-इन्द्रियनिग्रह-धी-विद्या-सत्य-अक्रोधादीनां खनिः व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानस्य सागरः विवेकजज्ञानस्या-गारमस्ति अभूद् वर्तते वर्तिष्यते च। सा ईजानानां सेतुः, तितीर्षताम् अभयं पारम्, स्थैर्येण अचलम्, धैर्येण सागरं चास्ति। सा व्याधि-स्त्यान-संशय प्रमाद-आलस्य-अविरति-भ्रान्तिदर्शन-अलब्धभूमिकत्व-अनवस्थितत्वादीना मन्तरायाणामपाकर्त्री, दुःख-दौर्मनस्य-अङमेजयत्व-श्वास-प्रश्वास-विक्षेप-सहभुवानां निःसारयितृ च विद्यते। सैव आयुः सत्व-बल-आरोग्य-सुख-प्रीतिविवर्धनानां रस्यानां स्निग्धानां स्थिराणां हृद्यानां सात्विकप्रियानाम् आहाराणां परिचयं ददाति। सा वाचिक तपसम् बोधयति। वाङ्मयं तपसं प्रति जागरयति। वाण्याम् अनुद्वेगकरं वाक्यं संचारयति। सत्यं प्रियहितं च सम्भाषणमाविर्भावयति। स्वाध्यायाभ्यसनं प्रथयति। मानसं तपसं प्रति सचेतयति। मनः प्रसादं सम्पोषयति, सौम्यत्वमाचिनोति, मौनं ज्ञापयति, आत्मविनिग्रहं प्रथयति, भावसंशुद्धिं निवेदयति। को हि शक्तो अध्यात्मविद्यायाः शक्तिं मातुम्। सा हि आचरणमात्रेण त्रिविधदुःखानाम् आत्यन्तिकनिवृत्तिं कर्तुं समर्था। सा ह्याह्लादनेन चन्द्रमसं दीप्त्या भानुं चातिशेते।[1]

वेदेषूपनिषत्सु धर्मशास्त्रेषु चाध्यात्मविद्यायाः महत्त्वं गौरवं चानेकधा प्रतिपाद्यते। अथर्ववेदे विशं काण्डम्। तत्र च अध्यात्मविद्याप्रतिपादकाः बहवः मन्त्राः सन्ति। वाजिन् सामर्थ्यवान् आत्मदेव! उदेहि अभ्युदयं निःश्रेयसं प्राप्नुहि- 'उदेहि वाजिन्।'

---

* संस्कृत विभागः, सनातनधर्ममहाविद्यालयः, मुजफ्फरनगरम् (उ०प्र०)।

1. अथर्ववेदः - 13/1/1

अथर्ववेदे कः पन्था? विषयेऽस्मिन् प्रोच्यते- 'मैतं पन्थामनु गाः।'[2] इस राह पर मत चल' इति हिन्दीभाषायाम्। मार्गद्वयं प्रोच्यते कठोपनिषदि 'श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः।'[3] श्रेयमार्गः प्रेयमार्गश्च। कठोपनिषत्कारः मन्यते यत् मन्दो जनः प्रेयसं वृणीते 'प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।'[4] धीरश्च विवेकेन जानाति कः मार्गः श्रेष्ठ आचरणीयः - 'तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।'[5] एवं द्वौ पुरुषौ विद्येते- मन्दः धीरश्च। प्रेयमार्गविषये प्रोच्यते- 'भीमः एषः।'[6] 'मा प्र पत्था'[7] प्रेयमार्गः भयंकरः मा प्राप्नुहि एतं मार्गम्। रामायणे दशाननमुखेन प्रेयमार्गं निर्दिश्यते- 'भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च।'[8] हे सीते! यथेच्छ भोग कर। खा, पी और मौज कर।' पिब विहर रमस्व भुंक्ष्व भोगान्।'[9] पी, विहार कर रमण कर, भोगों को भोग। सीतामाता वेदोपदेशं जानाति- 'मैतं पन्थामनुगाः।'[10] कठोपनिषदि प्रोच्यते यत् मूढजनः विनश्वरसंसारं न जानाति। सः तु कथयति अयमेव लोकः नास्ति अपरः इति। सैव जन्ममरणचक्रे पुनरायाति- 'न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्। अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुर्नवशमापद्यते मे।'[11] वैराग्यशतके भर्तृहरिणा शस्यते- 'पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।'[12] प्रेयमार्गे भयं श्रेयमार्गे अभयमस्ति। 'भयं परस्तात्'[13] 'अभयं ते अर्वाक्'[14] अथर्ववेदे अधिकं कल्याणकरं श्रेयमार्गं प्राप्नुहि इति प्रोच्यते। 'भद्रादधि श्रेयः प्रेहि।'[15] छान्दोग्योपनिषदि शस्यते ऋषिणा- 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखं, भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति।'[16] भद्रशब्दः 'भदि कल्याणे सुखे च'[17] इति धातोः निष्पद्यते।

---

2. अथर्ववेदः - 8/1/10
3. कठोपनिषद् - 1/2/2
4. कठोपनिषद् - 1/2/2
5. कठोपनिषद् - 1/2/2
6. अथर्ववेदः - 8/1/10
7. तत्रैव
8. वाल्मीकिरामायणम् सुन्दरकारण्डे - 20/24
9. वाल्मीकिरामायणम् सुन्दरकाण्डे - 20/35
10. अथर्ववेदः - 8/1/10
11. कठोपनिषद् - 1/2/6
12. वैराग्यशतकम् - 7
13. अथर्ववेदः - 8/1/10
14. तत्रैव
15. अथर्ववेदः - 7/8/1
16. छान्दोग्योपनिषद् - 7/23/1
17. धातुपाठः

ऋग्वेदे भद्रशब्दः परिभाषितं- विद्वांसः यं मार्गं प्राप्नुवति तद् भ्रदम्। 'विश्वं तद्भद्रं यदवंन्ति देवाः।'[18] कठोपनिषदि भद्रमार्गविषये कथितं यत् एषः मार्गः साधारणजनोपदेशेन सुविज्ञेयो न भवति। एषः तु स्वात्मसंवेद्यो विद्यते। एषः अतर्क्यः तर्केण न प्राप्तुं योग्यः। अणुप्रमाणादपि अणीयान् अतिसूक्ष्मो मार्गः। 'न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्य-मणुप्रमाणात्।[19] नीतिशतकेऽपि एषः स्वानुभूतिविषयः मार्गः। 'स्वानुभूत्येकमानाय।'[20] कठोपनिषत्कारः कथयति- 'नैषा तर्केण मतिरापेनया।' यदा स्वानुभूतिर्जायते तदा एषा मतिः केनापि तर्केण आपनेया न भवति। प्रत्यक्षाय नान्यः प्रमाणार्हः। नचिकेता कथयति अध्रुवैः ध्रुवं न प्राप्यते। अनित्यं जगत् ज्ञातम्। सन्देहनिवारिका नाचिकेतोऽग्निः चितं मया। अनित्यद्रव्यत्यागेनैव नित्यं द्रव्यं प्राप्तुं योग्यः। 'जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं नह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्। ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।'[21] श्रेयमार्गः कठिनः दुष्करः। कामक्रोधादिशत्रवः बहूनि रूपाणि धृत्वा साधुरूपेण आगच्छन्ति। 'रूपाणिं प्रतिमुंचमानाः।'[22] प्रेयमार्गे तु महती विनष्टिः। अथर्ववेदे यज्ञेन देवान् बोधय इति प्रोच्यते। देवानां बोधनेनैव आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं च बुद्धिमाप्नोति।[23] शतपथब्राह्मणे शस्यते- 'न वै देवाः स्वपन्ति।'[24] 'जाग्रति देवाः।'[25] देवाः जागृतं जनमिच्छन्ति सुप्तं न स्पृहयन्ति। 'इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।'[26] अथर्ववेदे यज्ञमहिमा प्रोक्ता। यज्ञः समर्थभूतः सः वृद्धिं प्राप्नोति। सैव देवानामधिपतिः। सैव द्रविणं धनं धारयति। 'यज्ञो बंभूव स आ बंभूव।'[27] शतपथब्राह्मणे कथितम्- 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।'[28] यजुर्वेदे प्रोक्तम्- श्रेष्ठतमायकर्मणे अर्पयतु आत्मानम्। 'देवो वंः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठंतमाय कर्मंण आप्यांयध्वम्।'[29] यज्ञकर्माणि

---

18. ऋग्वेदः - 2/23/19
19. कठोपनिषद् - 1/2/8
20. नीतिशतकम् - 1
21. कठोपनिषद् - 1/2/10
22. यजुर्वेदः - 2/30
23. अथर्ववेदः - 19/63/1
24. शतपथब्राह्मणम् - 3/2/2/22
25. तत्रैव - 2/1/4/7
26. ऋग्वेदः - 8/2/18
27. अथर्ववेदः - 7/5/2
28. शतपथब्राह्मणम् - 1/7/1/5
29. यजुर्वेदः - 1/1

कृत्वैव शतं वर्षाणि जीवितुम् इच्छेत्- 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।'[30] यजुर्वेदे निर्दिश्यते एतत् शरीरं यज्ञीयं वर्तते। यज्ञार्थं विद्यते। यज्ञकर्मकरणाय प्रदत्तम् ईश्वरेण। 'इयन्ते यज्ञिया तनूः।'[31] यज्ञ उन्नतिदायकः ऐश्वर्यप्रापकः - 'यज्ञो हि ते इन्द्र वर्धनो भूत्।'[32] शतपथब्राह्मणे यज्ञः सर्वभूतानां सर्वदेवानां आत्मा इति प्रोच्यते। ऋतचिन्तनेन पापनाशो भवति- 'ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।'[33] अध्यात्ममार्गानुसारिणां प्रथमः गुणः ऋतप्रशंसकः द्वितीयश्च अकुटिलः ऋजुताधारकः। यः ऋतं ऋजुतां च धारयति सैव तं रस-स्वरूपं परमेश्वरं प्राप्नोति। प्राप्य च आनन्दीभवति त एव धीराः विप्रपदं प्राप्नुवन्ति। तैत्तिरीयोपनिषदि प्रोच्यते- 'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'[34]

अध्यात्ममार्गे त्यागस्य महिमा अपूर्वा निर्दिश्यते। यज्ञ-शब्दः 'यज देव पूजासंगतिकरणदानेषु' इति धातोः निष्पद्यते। देवपूजायां संगतिकरणे दाने च त्रिषु कार्येषु त्यागभावः सर्वोपरि विद्यते। स्वत्वं विहाय परार्थं करणम्। छान्दोग्योपनिषदि विहितम्- 'पुरुषो वाव यज्ञः।'[35] पुरुषजीवनं यज्ञस्वरूपमेव। अग्निहोत्रे 'इदन्न मम' अस्यैव भावनया ओतः प्रोतश्च कृत्वा हविर्दानं दीयते एवं अग्निहोत्रे त्यागभावनाया अभ्यासः क्रियते। अथर्ववेदे दुर्व्यसनत्याग अपरिहार्यः अध्यात्ममार्गे इति प्रोच्यते- 'उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदैव प्र मृण रक्ष इन्द्र।'[36] उलूकसदृशम् अन्धकारप्रियत्वम् अज्ञानप्रवणत्वं त्यज। शुशुलूकसमं 'भेडिया' इति अकारणहिंसावृत्तिं त्यज। श्वानयुक्तं मत्सरभावम् अपाकुरु। कोकसमानं हंससदृशं कामभावं दूरीकरोतु। सुपर्णगतिं अहङ्कारवृत्तिं त्यज। गृध्रस्य लोभभावं त्यजतु। एवम् अध्यात्ममार्गे मोह-क्रोध-मत्सर-काम-मद-लोभादिदुर्व्यसनानामपाकरणमेव श्रेयः। संसारसागरतरणाय अशिवानाममंगलानां दुर्गुणानां भारः अत्रैव त्याज्यः। दुर्व्यसनत्यागेनैव तात्त्विकबोधो गम्यते। ये जनाः Natural Law इति कथयित्वा पशूनामनुकरणं कुर्वन्ति कारयन्ति च ते पशुयोनिमेव इच्छन्ति। अथर्ववेदे ईर्ष्याविनाशनाय प्रोच्यते- 'ईर्ष्यार्या

---

30. तत्रैव - 40/2
31. तत्रैव - 4/13
32. ऋग्वेदः - 3/32/12
33. ऋग्वेदः - 4/23/8
34. तैत्तिरीयोपनिषद् - 11
35. छान्दोग्योपनिषद् - 3/16/1
36. अथर्ववेदः - 8/4/22
37. अथर्ववेदः - 6/18/1-3
38. योगदर्शनम् - समाधिपादः - 33

ध्राजिं।'[37] समाधिपादे चित्तप्रसाद्नाय सूत्रमिदं प्रोक्तम्- 'मैत्रीकरुणामुदिता'[38] सुखीजनं प्रति मैत्री भावः दुःखीमनुष्यं प्रति करुणाभावः पुण्यशालिनं प्रति मुदिताभावः अपुण्यशालिनं प्रति उपेक्षाभावः करणीयः श्रेयस्करश्च। ईर्ष्या नोचिता।

छान्दोग्योपनिषदि कथाख्यानाश्रयेणाध्यात्मसदृशं निगूढतत्त्वनिरूपणं सरलतया तदभिव्यक्तिश्चाध्यात्ममार्गे उपनिषदां महत्त्वम् एधयति। उपनिषदां तादृशी मनोहरा शैली भावाभिव्यक्तिप्रक्रिया च मन्दोऽपि मनुष्यो विविधविषयावगाहि ज्ञानं सरलतया प्राप्नोति। तत्रैव इन्द्रविरोचनयोराख्यान[39] विद्यते। प्रजापतिरुवाच य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः। स सर्वान् च लोकान् आप्नोति। शरीरमिदं नैव आत्मा। इदं तु मरणधर्मा। यः पश्यति चक्षुसाधनेन, यो जिघ्रति घ्राणमाध्यमेन, यो वदति वाकसाधनेन यः श्रृणोति श्रवणसाधनेन स आत्मा, यश्चिन्तयति चित्तसाधनेन स आत्मा। यः जलपात्रे दर्पणे स्वप्नावस्थायां सुषुप्त्यवस्थायां दृश्यते, नैव स आत्मा, इदं तु शरीरम्। अशरीरी आत्मा। शरीरस्य सुषुप्त्यवस्था भवति आत्मनः सुषुप्तस्थानम्। यस्य सुषुप्ति-अवस्था भवति तत् तु शरीरं मरणधर्मयुक्तम्। यस्य च सुषुप्तस्थानं भवति तस्य च स्वरूपेऽवस्थानं भवति। उपनिषत्सु वेदानां सारभागः सारल्येन संवादरूपेण आख्यायिकामाध्यमेन च सरलां रुचिरां शैलीमाश्रित्य प्रतिपाद्यते। अथर्ववेदे ईश्वरः सर्वं जानाति इति प्रोच्यते। अध्यात्ममार्गे सर्वप्रथमं इदमेव ज्ञातव्यमस्ति यत् सः सर्वत्र विद्यते। यः तिष्ठति निर्जने वने, जानाति च न कोऽपि पश्यति, यः चरति, यः वंचति अन्यान् सरलचित्तान्, यः षड्यन्त्रेण पीडयति अन्यान्, यः भयं संचारयति यश्च गुप्तरूपेण मन्त्रयते तत्र सर्वत्रं सः तृतीयः पुरुषः वरुण ईश्वरः।[40] तं सर्वान्तर्यामिनं ज्ञात्वा नैव पापकर्म करणीयम्। प्राणोपासनायाः फलं प्रोच्यते अथर्ववेदे। 'यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।'[41] योगदर्शने शस्यते- 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।' प्राणायामात् अज्ञानावरणं नश्यति। मनुनाऽपि निर्दिश्यते - 'दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।'[43] प्राणायामेन इन्द्रियाणां दोषाः दह्यन्ते नश्यन्ति। भगवत्ज्ञानेन मृत्युभयनाशो जायते।

कामनारहितं धीरं अमृतं स्वयंभुवं रसेन युक्तं तृप्तं सर्वातिशयं अजरं नवीनं युवानं परमात्मानं ज्ञात्वा मत्त्वा मृत्युभयं नश्यति इति प्रोच्यते अथर्ववेदे- 'तमेव विद्वान्

---

39. छान्दोग्योपनिषद् - 8/7/1
40. अथर्ववेदः - 4/16/2
41. अथर्ववेदः - 11/7/19
42. योगदर्शनम् - 2/52
43. मनुस्मृतिः - 6/71

न विभाय मृत्योः।'[44] मुण्डकोपनिषदि निर्दिश्यते तमेव व्यापकतत्त्वं परात्मानं विद्यात् अन्या सर्वा वार्ता व्यर्था एव। एषः परमात्मा एव अमृतस्य सेतुः। 'तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुंचथ।' निरुक्तभाष्यस्य नैगमकाण्डे 'अंहुरः' इति पदव्याख्याप्रसंगे 'सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरोऽगात्।' इति मन्त्रो वर्तते। 'अंहुरः पापी इति। महर्षिणा यास्केन मन्त्रभाष्ये सप्तमर्यादाः प्रदिष्टाः। प्रथमा स्तेयम् द्वितीया तल्पारोहणम्, तृतीया ब्रह्महत्या चतुर्थी भ्रूणहत्या पंचमी सुरापानम् षष्ठी दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवनम् सप्तमी च मर्यादाऽस्ति पातके कृते सति अनृतकथनम्। आसां करणे पापो भवति। अध्यात्ममार्गे अपरिहार्याः एताः मर्यादाः। महर्षिः यास्कः कथयति- 'तासामेकामप्यभिगच्छन् अंहस्वान् भवति।' अथर्ववेदस्य पंचमकाण्डस्य प्रथमं सूक्तं अध्यात्मविद्याप्रदायकं वर्तते। तस्यैव सूक्तस्य मन्त्रोऽयं वर्तते। ऋग्वेदेऽपि मन्त्रोऽयं विद्यते। अथर्ववेदे आत्मोन्नतेः साधनं निर्दिश्यते- 'आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।'[47] श्रेयांसं कल्याणं परमं प्राप्नुयात समं समाने जने अतिक्राम अग्रणीर्भवतु। 'अश्मवर्म मेसि'[48] ईश्वरविश्वासी जनः तं परमेश्वरम् अश्मवर्म इति मन्यते कानि व्रतानि तानि यानि जीवनं साफल्यं लम्भयन्ति मनुष्ये अध्यात्मं चादधति? अहिंसा। निरुक्तभाष्ये व्रतमिति कर्मनासु पठितम्। अथर्ववेदे पंचदश काण्डस्य प्रथमसूक्तस्य देवता अध्यात्मं व्रात्यः च वर्तेते। व्रात्यः व्रतचारी इति। व्रतपालक एव अध्यात्मोन्नतिं कर्तुं शक्यते इति शस्यते अथर्ववेदे। यजुर्वेदे[49] कथितं यो मानवो विद्याविद्ययोः स्वरूपं सहैव वेत्ति सोऽविद्यया-कर्मोपासनया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया यथार्थज्ञानेन मोक्षं लभते। योगदर्शनस्य साधनपादोऽपि अध्यात्ममार्गे बहुसहाय्यो वर्तते। तत्रैव अविद्याया लक्षणं दत्तम्- अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।'[50] अनित्ये संसारदेहादिषु नित्यत्वबुद्धिरविद्या, पावित्र्यबुद्धिरविद्या, विषयोपभोगादिषु दुःखेषु सुखात्मिका बुद्धिः तृतीयमंगम्। अनात्मन्यात्मबुद्धिस्तुरीयम्। चतुर्विधमिदं विपरीतज्ञानमविद्येत्युच्यते। आत्मज्ञानं तदैव प्राप्तुं शक्यते मानवो यदि सोऽविद्यां जानाति परित्यजति च। का च विद्या या जीवने धारणीया। अनित्ये अनित्यताज्ञानं, नित्ये नित्यताज्ञानं, अपवित्रे अपवित्रबुद्धिः, दुःखे दुःखज्ञानं, सुखे सुखज्ञानं, अनात्मन्यनात्मबुद्धिः, आत्मनि चात्मज्ञानं विद्या इति। विद्या-वेत्ति यथावत् तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा 'विद्या'।

---

44. अथर्ववेदः - 10/8/44
45. मुण्डकोपनिषद् - 2/2/5
46. निरुक्तभाष्यम् - नैगमकाण्डः - 6/5/1111
47. अथर्ववेदः - 2/11
48. अथर्ववेदः - 5/10
49. यजुर्वेदः - 40/14
50. योगदर्शनम् - 2/5

अविद्या- यया तत्स्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिंमन्नन्यन्निश्चिनोति यया सा 'अविद्या' सत्यभाषणादिधर्म्यकर्मणामनुष्ठानं मिथ्याभाषणाद्यधर्म्यकर्मणां परित्याग एवाध्यात्ममार्गाय श्रेयस्करम्। सत्यार्थप्रकाशस्य नवमसमुल्लासोऽपि अध्यात्ममार्गे सहाय्यो वर्तते। नवमः समुल्लासः विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये वर्तते। तत्र महर्षिदयानन्देन लिखितं- 'प्रत्यहं न्यूनातिन्यूनं होराद्वयं यावत् मुमुक्षुर्ध्यायेद्येनान्तराणि मनः प्रभृतीनि वस्तूनि प्रत्यक्षतो दृश्यरेन्।' सप्तमे समुल्लासे ईश्वरवेदविषयो वर्तते। तत्र महर्षिदयानन्देनोपदिष्टम्- 'यथा वै शीतातुरस्य वह्निसामीप्येन शीतं विनिवर्तत तथैव परमात्मनः उपासनया सामीप्येन समुपसत्त्या अखिलदोषदुःखान्युच्छिद्य परमेश्वरस्य गुणकर्मस्वभावा इव जीवात्मनोऽपि गुणकर्मस्वभावाः पूयन्ते।' उपासनया ह्यात्मनो बलं तावत्प्रवर्धिष्यते येन पर्वत इव महादुःखसंक्लिष्टोऽनोद्विविजिष्यते सर्वं च सहिष्यते। यो वै परमात्मनः स्तुतिप्रार्थनोपासना न विधत्ते स एव कृतघ्नो महामूर्खश्च भवति। मैत्रायणीयोपनिषदि[51] निर्दिष्टम्- समाधियोगेन यस्य पुरुषस्याविद्यादयो मला विनाशमाप्ताः, येन चात्मस्थेन सता परमात्मनि समासंजितः चेतः तेन परमात्मनो योगेन यत्सुखं लभ्यते यद् वाचा वर्णयितुं न शक्यते तद्धि स्वान्तः करणेनानुभवति जीवात्मा। सामीप्यसम्प्राप्तिरुपासनाशब्दार्थः। अष्टांगयोगेन परमात्मनः समीपेऽवस्थातुं सर्वव्यापिसर्वान्तर्यामिरूपेण प्रत्यक्षयितुं चावश्यकं सर्वकार्यजातमनुष्ठेयम् एवमध्यात्ममार्गे यमनियमासनादि-अष्टांगयोगानामभ्यासोऽवश्यंभावी वर्तते। अथर्ववेदे एकोनविंशतिकाण्डे आत्मनः स्वरूपं प्रयच्छति- 'अयुतोऽहमयुतो मे आत्मा'[52] अयुतं पूर्णमिति। पूर्णोऽहम्, मे आत्मा पूर्णः, मे चक्षुः पूर्णम्, मे श्रोत्रं पूर्णम्, मे प्राणः पूर्णः, में अपानः पूर्णः, मे व्यानः पूर्णः, अहं सर्वः पूर्णः। एवं पूर्णत्वमंगीकृत्यैव जीवने यत्न्यूनत्वं तद् परिहरणीयम्।

अथर्ववेदस्य षोडशकाण्डे आध्यात्मिकविजयस्य दुःखविमोचनस्य च विषयो वर्तते। 'आत्मदूषिः'[53] ये कर्माणि आत्मदूषणाय 'तनूदूषिः' ये च शरीरदूषणाय 'इदं तमतिसृजामि' तानि कर्माणि परित्यजामि। एवमात्मोद्घोषो वर्तते। 'मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्।'[54] एतदपि चात्मोन्नतेः साधनं यत् अध्यात्मरयीणां वयं मूर्धा भवेम। तत्र 'अजैष्म जितम्' इति पदयोरनुवृत्तिरनेकवारमागच्छति। आध्यात्मिकक्षेत्रे शरीरेन्द्रिय मन-प्राण-बुद्धिरहंकार-चित्त-काम-आत्मा-प्रकृति-विकृतिरित्यादीनां सम्बन्धो वर्तते।[55] एषां निर्दोषसंरक्षणम् शक्त्य परिपूर्णकरणमात्मोन्नतिसाधने निर्विघ्नतया समासतिकरणं

---

51. मैत्रायणीयोपनिषद् - 4/9
52. अथर्ववेदः - 19/51
53. अथर्ववेदः - 16/1/3
54. अथर्ववेदः - 16/1/3
55. अथर्ववेदः - 16/1

आध्यात्मिकविजयप्राप्तिसाधनं भवति। तत्र आत्मोन्नतौ चत्वारि साधनानि प्रोच्यते। इन्द्रियदमनम् इन्द्रियशमनं अनयोः शरीरशुद्धिर्जायते मनसः शुचौ मानसं बलं वर्धते आत्मशुद्ध्या आत्मोन्नतिर्जायते। भगवत्गीतायामुपदिष्टम् यत् प्रसन्नता आध्यात्ममार्गे सर्वोपरिसाधनम्। 'प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।'[56] सर्वदुःखनिवृत्तिस्तु यदा प्रसादेन प्रसन्नचित्तेन जायते तर्हि प्रसन्नचित्तमावश्यकमाध्यात्मोन्नतौ। हे प्रभो! अस्मान् निंद्यपापात् मुंच- 'मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्यात्।'[57] अमरत्वं प्रदेहि- 'अमृतमस्मासु धत्तम्।'[58] मस्तिष्कं विश्वरूपं यशः इति कथितम्। एतत् तिर्यग्बिलं वर्तते। 'तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुघ्नः तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।[59] सप्त ऋषयः सप्तेन्द्रियाणि सन्ति इति प्रोच्यते अथर्ववेदे- 'तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः।[60] एते ऋषयः एकस्मिन्नेव स्थाने वसन्ति अस्य महतः आत्मनः गोपा रक्षकाः सन्ति।

एवं पूर्वोक्तेन विवेचनेन स्फुटमेतत् प्रतीयते यत् अथर्ववेदे आत्मोन्नतेः साधनानि बहूनि सन्ति बहवश्च मन्त्राः सन्ति। वेदाध्ययनं जीवनं पावयति। अध्यात्मदृष्ट्यैव वेदानां महत्त्वमंगीकृत्य भारतीयैः पाश्चात्यैश्च विपश्चिद्भिः वेदाध्ययने स्वजीवनं यापितम्। सर्वेऽपि विद्वत्तल्लजाः भारतीयाः पाश्चात्याश्च दार्शनिकाः आचारशिक्षणसमर्थाः शब्दशास्त्रमीमांसादक्षाः वैयाकरणाः अध्यात्मिकदृष्ट्या वेदानां परमप्रामाण्यं प्रतिपदमुद्-घोषयन्ति। आध्यात्मिकविद्या लोकानां विविधाः समस्या निवारयति, जीवनोन्नतिं करोति सद्भावान् चोद्बोधयति। वेदाः अध्यात्मविद्यया दुःखत्रयविनाशपूर्वकब्रह्मतादात्म्यनुभूत्या समेषामपि सुधियां समादृतिं समधिगच्छन्ति। अथर्ववेदे[61] प्रोच्यते स एष एकवृदेक एव, यश्च तमेतं देवमेकवृतं वेद सः सर्वं ज्ञानं तपसं कीर्तिं यशसं ब्राह्मतेजसं स्थानं जलम् अन्नं भूतं भविष्यं श्रद्धां तेजसं स्वर्गं स्वधां च प्राप्नोति एवं सम्प्रार्थ्य विरम्यते यत् -

'पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।'[62]

✦✦✦

56. भगवद्गीता - 2/65
57. अथर्ववेदः - 5/6/8
58. अथर्ववेदः - 5/6/8
59. अथर्ववेदः - 10/8/9
60. अथर्ववेदः - 10/8/9
61. अथर्ववेदः - 13/4/22-23
62. अथर्ववेदः - 10/8/29

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (118-125) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

वाक्सूक्तमनुसृत्य वाक्तत्त्वस्य विवेचनम्

-डॉ० रवीन्द्रकुमारः

वेदाः खलु सर्वविज्ञाननिधिरूपाः सन्ति। वेदेषु बीजरूपेण सर्वेषामपि विज्ञानांशानां वर्णनमवलोक्यते। उक्तमपि मनुस्मृतौ यद् "भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति"[1] अर्थाद् लोके यद् भावि, तदपि कृत्यं वेदादवगन्तुं शक्यते। अनेन विज्ञायते यद् वेदेषु सर्वमपि तत्त्वं निहितं वरीवर्ति। वेदानां गाम्भीर्ये ज्ञानातिशयं चावलोक्य स्वामिदयानन्दोऽपि प्राह यद् वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं। वेदेषु शब्दविद्यायां ज्ञानमपि विस्तरेण प्राप्यते। ऋग्वेदे वाक्सूक्तं विश्रुतं वर्तते। अस्मिन् सूक्ते वाक्तत्त्वस्य गहनतया वर्णनं मिलति। अस्मिन् लेखे प्रमुखतया वाक्तत्त्वस्यैव विवेचनं क्रियते।

आक्सफोर्डविश्वविद्यालयस्य भाषाविज्ञानस्य प्रध्यापकाः प्रो० सईसमहोदयाः 'साईंस ऑफ लैंग्वेज' इति नामधेयपुस्तके भाषाविज्ञानविदुषां ध्यानम् ऋग्वेदस्य वाक्सूक्तं प्रति समाकर्षयन्ति। तेषां कथनमस्ति यदत्र वेदे वैदिका-ऋषयो गहनतया वाक्ततत्त्वस्य विषयं वर्णयन्ति। तद् वाक्तत्त्वविवेचनमत्र तद् वाक्तत्त्वविवेचनमत्र गम्भीरं भाषाविज्ञानदृष्ट्या यथार्थस्वरूपं दूरदर्शितापूर्णञ्च विद्यते।[2] ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य पञ्चविंशत्युत्तरैकशततमस्य सूक्तस्य नाम वाक्सूक्तमिति प्रसिद्धम्। तत्र अष्ट मन्त्राः सन्ति। अस्य सूक्तस्य ऋषिः वाग-आम्भृणीनामा वर्तते। अस्य सूक्तस्य देवता प्रतिपाद्यविषयो वा वाग् अथवा वाक्तत्त्वमस्ति। अत्र वाक्तत्त्वं स्वयमेवः स्वरूपम् उत्तमपुरुषमवलम्ब्य प्रस्तौति। एतस्य सूक्तस्य आदिमो मन्त्रो विद्यते यद्-

अ॒हं रु॒द्रेभि॒र्वसु॑भिश्चराम्य॒हमा॑दि॒त्यैरु॒त वि॒श्वदे॑वैः।
अ॒हं मि॒त्रावरु॑णो॒भा बि॑भर्म्य॒हमि॑न्द्रा॒ग्नी अ॒हम॒श्विनो॒भा॥[3]

अत्र मन्त्रे उपदिश्यते यद् अहं वाक्तत्वं प्राणतत्त्वरूपैः एकादशभिः रूद्रैः, अष्टभिर्वसुभिः, द्वादशभिरादित्यै समस्तैः देवैः दिव्यविभूतिभिर्वा विचरणं करोमि। अहं मित्रं वरुणम् अर्थात् प्राणतत्त्वमपानतत्त्वं च धारयामि। अहमिन्द्रमग्निमर्थात् सौरतत्त्वम्

---

* सहायकाचार्यः, श्रीभगवानदास-आदर्श-संस्कृत-महाविद्यालयः, हरिद्वारम्।

1. मनुस्मृति- 12/17
2. साइन्स ऑफ लैंग्वेज भाग- 01, पृ०- 02
3. ऋग्वेद- 10/125/01

अग्नितत्त्वञ्च दधामि। अनेन मन्त्रेण स्पष्टं भवति यद् वाक्तत्त्वं सर्वत्र विद्यमानं भवति। किन्नाम वाक्तत्त्वम्? उच्यते यद् वाग् वै पराच्यव्याकृताऽवदत् ते देवा इन्द्रमब्रुवन्तिमां नो वाचं व्याकुर्विति, तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते।[4] अत्र उच्यते यद् व्याकृता-वाक् वाक्तत्त्वम् अस्ति। व्याकरणादिविवेचनयुक्ता विश्लेषण-समन्विता वागेव वाक्तत्त्वमस्ति। अत्र विवेच्यते यत् प्रारम्भे वाक्तत्वमव्याकृतं व्याकरण-विश्लेषणरहितमासीत्। एतस्य वाक्तत्त्वस्य किमपि व्याकरणं नैवासीत्। देवा इन्द्रं प्रार्थयन् यद् वाक्तत्त्वस्य व्याकरणरूपं विवेचनमस्मान् बोधयतु। तदा इन्द्र एतस्य व्याकरणरूपं बोधं प्रादात्। अनेन स्पष्टं भवति यद् वाक्तत्त्वं शब्दतत्त्वमिति पर्यायरूपम्। स्वयमेव पतञ्जलिरपि महाभाष्ये शब्दानुशासनप्रयोजनेषु प्राह यद्-

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥[5]

अस्य मन्त्रस्य उल्लेखं शब्दानुशासने पतञ्जलिः करोति, परन्तु एतस्य तत्र किं प्रयोजनम्? एतस्य प्रयोजनं तत्र अनेन हेतुना अस्ति यद् अत्र वाग्विषयो विवेच्यते। वाग् एव शब्दः पदमिति। अनेनापि सिध्यति यद् वाक्तत्त्वं शब्दरूपमेव। महाभाष्ये अन्यत्रापि उपदिश्यते यद्-

वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्तते।
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते॥[6]

अत्रापि व्यक्तवाचा उपदिश्यते यद् वर्णज्ञानमेव वाग्विषयः। अत एव लघ्वर्थं प्रत्याहारादिज्ञानं कार्यते। तत्रैवास्य व्याख्याने प्रोच्यते यत् सोऽयमक्षर-समाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति।[7] अर्थादक्षराणां सम्यग् विवेचनं कथनमेव वाक्समाम्नायः। अस्य ज्ञानेन एव वेदादीनां सम्यग् ज्ञानं भवति। अनेन वचनेनापि स्पष्टं यत् शब्दः अक्षरं वर्णः वाग् इत्येतानि परस्परं पर्यायरूपाणि। अत एव वाक्सूक्ते यदपि वाचो विवेचनविषये प्रोच्यते तत् सर्वमपि शब्दानां विषये एवास्ति। सूक्ते अग्रे प्रोच्यते यद्-

अ॒हं सोम॑माह॒नस॑ं बिभर्म्य॒हं त्वष्टा॑रमु॒त पूष॑ण॒ं भग॑म्।
अ॒हं द॑धामि॒ द्रवि॑ण॒ं ह॒विष्म॑ते सुप्रा॒व्ये३॑ यज॑मानाय सुन्व॒ते॥[8]

---

4. तै०सं०- 06/04/07
5. महाभाष्यम्, पश्पशाह्निकम्।
6. महाभाष्यम्, पश्पशाह्निकम्।
7. महाभाष्यम्, पश्पशाह्निकम्।
8. ऋक्० 10/125/02

अस्मिन् मन्त्रे समुपदिश्यते यदहं सोमतत्त्वस्य पालनं रक्षणञ्च करोमि। अहं त्वष्टा अर्थाद् विवेचकं विश्लेषकं वा अस्मि। अहं पोषकतत्त्वस्य भगस्य ऐश्वर्यस्य वा पालकोऽस्मि। अहं यज्ञियपुरुषान् वाक्तत्त्वज्ञानमर्थतत्त्वज्ञानञ्च ऐश्वर्येण पूरयामि। उक्तं तथ्यमतीव ग्राह्यं वर्तते। संसारे जनो वाक्तत्त्वज्ञानेन विना किमपि कर्तुं न शक्नोति। संसारस्य सर्वोऽपि व्यवहारो वाक्तत्त्वेनैव प्रचलति। यदि जनो वाक्तत्त्वं सम्यग् न जानीयात्, तर्हि स लोके ऐश्वर्यादिकं न प्राप्नुयात्। अत एव वाक्तत्त्वं जानीयादवश्यम्।

व्याकरणादिषु शास्त्रेषु ऋषयो, गहनतया वाक्तत्त्वस्य विवेचनमकुर्वन्! अस्मिन्नेव सूक्ते अग्रिममन्त्रे प्रोच्यते यद्-

अ॒हं राष्ट्री॑ स॒ङ्गम॑नी वसू॑नां चिकि॒तुषी॑ प्रथ॒मा य॒ज्ञिया॑नाम्।
तां मा॑ दे॒वा व्य॑दधुः पुरु॒त्रा भूरि॑स्थात्रां॒ भूर्या॑वे॒शय॑न्तीम्॥[9]

अस्मिन्न् मन्त्रे उपदिश्यते यद्- अहं राष्ट्रनिर्माता शक्तिरस्मि। अहमेव बहुतत्त्वानां सङ्गमं (योगं) समन्वयं वा करोमि। अहमेव विज्ञानमयमस्म्यहमेव उपास्यतत्त्वेषु प्रथममस्मि। देवा विद्वांसो भाषाविदो वा नानारूपेण मम प्रस्तुतिं कुर्वन्ति। ते अनेकत्र मां शक्तिसमन्वितां कृत्वा प्रतिष्ठापयन्ति।

राजृ-दीप्तौ[10] इत्यस्माद् धातोरेव राष्ट्रपदं सिध्यति। इदं वाक्तत्त्वं सर्वव्यवहाराणां प्रकाशकं दीपकं वा विद्यते। अनेन विना लोकव्यापारोऽपि दुष्कर एव। इतः परमग्रिमे मन्त्रे उपदिश्यते यद्-

मया॒ सो अन्न॑मत्ति॒ यो वि॒पश्य॑ति॒ यः प्राणि॑ति॒ य ई॑ शृणोत्यु॒क्तम्।
अ॒म॒न्तवो॒ मां त उप॑क्षियन्ति श्रु॒धि श्रु॑त् श्रद्धि॒वं ते॑ वदामि॥[11]

अस्मिन्मन्त्रे उपदिश्यते यद् यो मम वाक्तत्त्वस्य साक्षात्कारः करोति। यो जनो मामानुप्राणयति तथा च यो वचनं वाक्तत्त्वं वा यथार्थतः शृणोति; स एव जगत उपभोगं करोति। ये हि मयि वक्तत्त्वे न विश्वासं कुर्वन्ति, ते स्वयमेव विनश्यन्ति। अहं स्वयमेव श्रद्धेयमिदं वचनं ब्रवीमि।

निरुक्ते उच्यते यद् ऋषयो मन्त्रदृष्टारः अर्थाद् ये ऋषय आसन्; ते मन्त्राणां दृष्टारः आसन्। मन्त्रद्रष्टृत्वं किम्? मन्त्रे शब्दनिहितं वाक्सम्बद्धं यद् ज्ञानम्, तस्य ज्ञानकर्तृत्वमेव मन्त्रद्रष्टृत्वम्। एकत्र प्रोच्यते यत् साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभुवुः[12] अस्माकं प्राचीनानाम् ऋषीणां सर्वस्यापि प्रत्यक्षाप्रत्यक्षज्ञानस्य मूलं वाक्तत्त्वमेव। वाक्तत्त्वं

---

9. ऋक्० 10/125/03
10. भ्वादिगणः, धातुपाठः।
11. ऋग्वेद- 10/125/04
12. निरुक्तम्

सर्वदैव याथातथ्यरूपेण ज्ञातव्यम्। यदि एतस्य ज्ञाने किमपि न्यूनत्वं भवति तर्हि विपरीतप्रभावमपि वाक्तत्वं प्रदर्शयति। यथा प्रोक्तं महाभाष्ये यत् एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः। स्वर्गे लोके कामधुग् भवति।[13] अर्थाद् एकोऽपि शब्दो यदि सम्यक्तयावगम्यते चेत् स शब्दः संसारे सर्वकामनां पूरयति। अत एव वाक्तत्त्वं ज्ञात्वा विद्वान् भवति स एव स्वस्य सर्वां कामनां पूरयति। उक्तमपि यत्-

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥[14]

अत्र स्पष्टमुच्यते यद् वाक्तत्त्वं विज्ञाय यो विद्वान् काव्यं करोति, स धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तिं करोति। चतुर्वर्गं प्राप्य संसारे पुनः कस्य प्राप्तेरभिलाषः? तथैव मम्मटोऽपि निर्दिशति यद्-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे॥[15]

अत्रापि व्यक्तवाचा प्रोच्यते यद् वाक्तत्त्वरूपं काव्यं यो जनः कुरुते, स यशोऽर्थं व्यवहारज्ञानं च प्राप्नोति, तस्य दुःखानि विनश्यन्ति परमानन्दञ्च लभतेऽसौ काव्यकर्त्ता। अत्र वयं ज्ञातुं शक्नुमो यद् वाक्तत्त्वेन विना न संसारे किमपि भवति। यो वाक्तत्त्वज्ञः स एवानन्देन भुवने निवसति। वाक्तत्त्वे केषाञ्चन विश्वासो न भवति। तेऽपि तमसि एव सन्ति, यतोहि महाभाष्यकारो ब्रूते यद्- याज्ञिकाः पठन्ति स्थूलपृषतीमाग्निवारुणी-मनड्वाहीमालभेत इति। तस्यां सन्देहः- स्थूला चाषौ पृषती च स्थूलपृषती। स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सेयं स्थूलपृषतीति। तां नावैयाकरणः स्वरतोऽध्यवस्यति-यदि पूर्वपद-प्रकृतिस्वरत्वं ततो बहुव्रीहिः अथ समासान्तोदात्तत्त्वं तत्तत्पुरुष इति अत्र वाक्तत्त्वस्य यदि यथार्थज्ञानं नास्ति, तर्हि स्थूलपृषतीपदे महान् सन्देहो जायते। अत एव वाक्तत्त्वेऽश्यं विश्वासं विधाय तस्य ज्ञानं करणीयम्। एवमेवाग्रेऽपि महाभाष्ये प्रोच्यते यद्-

स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥[16]

अत्र महाभाष्यकारोऽवगमयति यद् यदि वाक्तत्त्वं साधुरूपेण न विज्ञायते चेत् स वाग्वज्रो भूत्वा यजमानं प्रयोक्तारं वा हिनस्ति। वाक्तत्त्वं स्वरदृष्ट्या वर्णदृष्टया वा कथमपि मिथ्या न प्रयोक्तव्यम्। मिथ्याप्रयुक्ते वाक्तत्त्वं सर्वमपि विपरीतमेव भवति।

---

13. महाभाष्यम्, पस्पशाह्निकम्।
14. साहित्यदर्पणम्, मङ्गलाचरणम्।
15. काव्यप्रकाश प्रथमोल्लासः।
16. महाभाष्यम् पस्पशाह्निकम्।

अत एव यदि वाक्तत्त्वज्ञाने वयं न विश्वसिमः, एतस्य सम्यग् ज्ञानं न कुर्मश्चेद् असौ विनाशयति प्रयोक्तारम्। सूक्तस्य अग्रिमे मन्त्र उपदिश्यते यत्-

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥[17]

अत्रोपदिश्यते यदहं स्वयमेव वाक्तत्वं वदामि यद् देवा मनुष्याश्च ममैवोपासनां कुर्वन्ति। ममैवाश्रयं कुर्वन्ति। ममैवोपयोगं कुर्वन्ति। मम यस्मिन् दयादृष्ट्या आहोस्विद् यमहमभिलषामि, तमहमुग्र-ओजस्विमयं च करोमि। स जनो ब्रह्मविद् वाक्तत्त्वज्ञो वा भवति। स एव ऋषिः आत्मसाक्षात्कारकर्ता च भवति। स एवं प्रतिभासम्पन्नो मेधावी वा भवति। विषयेऽस्मिन् प्रोच्यते यत्-

तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति॥[18]

अर्थाद् विद्वांसस्तमक्षरं बुद्धिस्थमत्युत्तमं शुद्धं शब्दराशिरूपं प्राप्तुं सततं कामनां कुर्वन्ति। सा शब्दराशिः सम्यक् प्रयुक्ता तं वाक्तत्त्वज्ञमभ्युदेन श्रेयसा च योजयति। अनेन शब्दराशिज्ञानेन संसारस्य सर्वविधमुन्नतिसमूहं वाक्तत्त्वज्ञो लभते। अत एव शब्दज्ञाने वाक्तत्त्वज्ञाने वा जनाः सदैव प्रयतेरन्। एतस्यागमायैव सदैवैतस्योपासना कार्या। वाक्तत्त्वं विना संसारकार्यं चलितुं नैव शक्नोति। वाक्तत्त्वस्याश्रयं विना संसारे किमपि कार्यं न भवति। अस्य वाक्तत्त्वस्य ज्ञान एव जना विद्वांसः तेजस्विनः ओजस्विनश्च भवन्ति। अस्माकं कामानाऽपि भवति यद्-

ओं सहनाववतु सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै॥[19]

अत्र वाक्तत्त्वरूपस्याध्ययनं तेजस्वि स्यादिति कामना वर्तते। स्वयमेव महाभाष्ये शब्दानुशानप्रयोजनेषु प्राह पतञ्जलिर्यद्-

यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे, शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः॥[20]

अर्थाद् यो हि शब्दानां प्रयोगे कुशलः, व्यवहारे तस्य यथायोग्यमुपयोगकर्त्ता, स एव वाग्योगविद् भवति। असौ परलोकेऽपि अनन्तमुत्कर्षमाप्नोति। अतो विज्ञायते यद् वाग्तत्त्वस्य बोधं विना मोक्षादीनामपि नास्त्युपलब्धिः। निरुक्ते यास्को ब्रूते यत्-

---

17. ऋक्० 10/125/05
18. वर्णच्चारणशिक्षा- 05
19. कठोपनिषद्
20. महाभाष्यम्, पस्पशाह्निकम्

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।[21]

अत्र यास्को निर्दिशति यद् यो हि वाक्तत्त्वस्य यथार्थज्ञानं न करोति, स वेदस्यार्थं न ज्ञातुं शक्नोति। यो हि सम्यग् वाक्तत्त्वं जानाति, स वेदादीनां शास्त्राणामर्थं सम्यग् विज्ञाय सर्वं भद्रं प्राप्नोति। स वाग्तत्त्वज्ञः स्वर्गं सुखातिशयं लभते। वेदान्तसारे वर्णयते यद् अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थोऽस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा.....।[22] अर्थाद् वेदान्तादिशास्त्रमधीत्य परमतत्वाप्तिर्न तावद्, यावद् विधिवद्वेदवेदाङ्गादीनामध्ययनं न स्याद्। एतेषां वेदादीनामध्ययनं वाक्तत्त्वं विना न सम्भवति। अत एव यावद् वाक्तत्त्वज्ञानं न तावन्न ब्रह्मप्राप्तिः। अत एव वाक्तत्त्वस्य ज्ञानमावश्यकम्। अस्मिन् सूक्ते अग्रे प्रोच्यते यद्-

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश।।[23]

अत्रोपदिश्यते यदहं वाक्तत्त्वशक्तिः येन न मन्यते, तस्य विनाशाय रुद्रात्मक-शक्तेरुपयोगं करोमि। अहं सम्यग्ज्ञाता मानवीयसमाजानन्दयुक्तं करोमि। अहं सर्वज्ञा आकाशे भूमौ च व्यापिकाऽस्मि, "दुष्टः शब्दः.....।" इत्यादीनां महाभाष्यस्य पस्पशाह्निके वर्णनकाले पतञ्जलिर्वर्णयति यद्यदि सम्यग् वाक्तत्त्वं न ज्ञायते, तर्हि प्रयोक्तारं विनश्यतीदम्। तत्रैवाग्रेऽपि वर्णयते यद्- यो वा इमां पदशः स्वरशोऽक्षरशश्च वाचं विदधाति स आर्त्विजीनो भवति।[24] अर्थाद् विद्वत्क्रियमाणस्य कर्मणः करणायाथवाऽऽर्त्विजीनाय चावश्यं वाक्तत्वं ज्ञातव्यम्। महाभाष्ये प्रोच्यते यत्-

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरो मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीनिर्हिताधिवाचि।।[25]

अर्थाद् यत्र व्याकरणादिशास्त्रद्वारा धीरा वाक्तत्त्वं ज्ञातुं प्रयतन्ते। यदि ते वाक्तत्त्वे नैपुण्यमधिगच्छन्ति चेत् तेषां वाग् भद्रलक्ष्मीर्युता भवति। यदा भद्रा लक्ष्मीर्वाचि निहिता भवति, तदा वाक्तत्त्वज्ञा जनाः समाजे आनन्दमग्ना भवन्ति। वाक् शब्दो वा सर्वत्र व्यापकः। व्यापकत्वादविनाशित्वादेवास्यापरं नाम अक्षरम्। 'अशूङ्-व्याप्तौ' इत्यस्मादक्षरपदं सिध्यति। धातोरर्थादेवागम्यते यदस्य अक्षरपदस्यार्थो व्याप्तिमयः। भर्तृहरिरपि ग्रन्थादौ एव भाषते यद्-

---

21. निरुक्तम्- 01/18
22. वेदान्तसार
23. ऋग्वेद- 10/125/06
24. महाभाष्यम्, पस्पशाह्निकम्।
25. महाभाष्यम्, पस्पशाह्निकम्।

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥[26]

अत्र शब्दतत्त्वं वाक्तत्वं वा अक्षरमनादिनिधनं च कथ्यते। आदिश्च निधनञ्च=आदिनिधने। न आदिनिधने यस्य तद् अनादिनिधनम्। यस्य आदिः=उत्पत्तिः, निधनं ध्वंशो, विनाशो वा नास्ति तद् अनादिनिधनं शब्दतत्त्वं भवति। अनेन वाक्तत्त्वस्य व्यापकत्वमनादित्वं च सिध्यति। आकाशगुणः शब्द इति प्रसिद्धमेव। महाभाष्येऽपि आकाशदेशः शब्दः[27] अर्थात् शब्दस्य स्थानमाकाश एव भवति। यत्र आकाशो नास्ति, तत्र शब्दोत्पत्तिः दुष्करा एव। वाक्सूक्तस्याग्रिमे मन्त्रे समुपदिश्यते यद्-

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥[28]

अर्थाद् अहं वाक्तत्त्वं सृष्टेरस्या मूर्धरूपं पितरं शब्दतत्त्वं प्रेरयामि। अहं ज्ञानगुहायां वसामि। मन्त्रमेव समस्तमपि विश्वमुद्भवति। अहं स्वशरीरेण द्युलोकं संस्पृशामि। महाभाष्येऽपि प्रोच्यते यत्-

सुदेवोऽसि वरुणो यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुसरन्ति काकुदं तु सूर्यं सुषिरामिव॥[29]

अत्रोपदिश्यते यत्ते सप्तविभक्तयः काकुदमनुसरन्ति। काकुदं तालु भवति, अर्थात् शब्दस्तदा उत्पद्यते, यदा काकुर्जिह्वा तालुमध्ये उद्यते। अत एव वाक्तत्वं तदेवोत्पद्यते, यदा मूर्धरूपपितरं प्रेरयति जिह्वा। वाक्तत्त्वमिदं कुत्र वसतीति प्रश्ने सति प्रोच्यते यद्- गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः[30] अत्र गुहाशयं बुद्धिस्थं वा भवति। वाक्यपदीये प्रोच्यते यद्- विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।[31] अर्थादस्य जगतः सर्वोऽपि व्यवहारोऽर्थभावेन वाक्तत्त्वद्वारा एव प्रचलति। यदि वाक्तत्त्वं न स्यात्तर्हि जगतः काऽपि प्रक्रिया पूर्तिं न गच्छेत्। य व्याकत्वाद इदं वाक्तत्त्वं सर्वत्र प्राप्नोति। सूक्तस्य अन्तिमे मन्त्रे प्रोच्यते यद्-

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सम्बभूव॥[32]

---

26. वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डः- 01
27. महाभाष्यम्- 01/02/02
28. ऋक्० 10/125/07
29. महाभाष्यम्, पस्पशाह्निकम्।
30. वर्णोच्चारणशिक्षा, पृ०- 05
31. वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डः- 01
32. ऋक्० 10/125/8

अर्थाद् अहमेव वायुतुल्यं सर्वत्र एव गतिशीलमस्मि। अहमेव समस्ते विश्वे स्थितमस्मि। अहं द्युलोकपृथिवीलोकयोः परमस्मि। अहं सर्वथा निष्कामभावनया सर्वत्र विद्यमानमस्मि। वर्णोच्चारणशिक्षायामुच्यते यद्–

आकाशवायुप्रभवः शरीरात् समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः।
स्थानान्तरेषु प्रविभ्यज्मानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः॥[33]

अत्र वर्ण्यते यद् वाक्तत्त्वस्योत्पत्तिः वायोर्भवति। वायोरभावे वाक्तत्त्वस्योत्पत्तिर्दुर्लभा एव। अन्यत्रापि प्रोच्यते यद् मारुतस्तूरसि चरन् मन्दं जनयति स्वरम्[34] अर्थाद् वायुरेव शरीरस्य विभिन्नभागेषु विचरन् शब्दं वाक्तत्त्वं वा जनयति। सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे[35] इत्यत्र महाभाष्यकारो ब्रूते यत् शब्दः अर्थः एतयोश्च सम्बन्धो नित्योऽस्ति। कालिदासोऽपि वर्णयति यद्–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥[36]

अत्रापि वागर्थौ इव सम्पृक्तौ इत्युक्त्वा वाक्=शब्दः, तस्य अर्थः च, एतयोः सर्वदा सम्बन्धो भवति। एतौ सर्वदा नित्यौ स्तः। यथा ईश्वरीयसत्ता सदा व्यापिका तथैव वाक्तत्त्वं चापि व्यापकम्। अत एव स्पष्टतया प्रसिद्धं यद् वाक्सूक्ते यदपि तत्त्वं निहितं वर्तते, तदेव व्याकरणस्य मूलम्। व्याकरणशास्त्रस्य बीजरूपं वैज्ञानिकं वर्णनं सूक्तेऽस्मिन् कृतमस्ति। अत एव वाक्सूक्तस्य परिज्ञानाय सदैवास्माभिः प्रयतितव्यम्। उक्तमपि यत्– अर्थपरिज्ञानफला हि वाक्। सम्यक् ज्ञानं हि प्रकाशनमर्थस्य। अर्थो हि वाचः शरीरम्। नागेशो भाषते यद् वाक्तत्त्वस्य साफल्यमिदमेव यदर्थतत्त्वस्य सम्यग्, ज्ञानं स्याद्।[37] अर्थतत्त्वमेव वाक्तत्वस्य शरीरम्। वाक्तत्त्वमेव आत्मा। अत एव वागर्थज्ञानाय वागर्थयोः ज्ञानमपरिहार्यमेव। वेदेषु यदपि ज्ञानतत्त्वं बीजरूपेण वर्णितं तत्सर्वमपि शब्दशो ग्राह्यमाचरणीयञ्च।

शोधेऽस्मिन् सारतया वाक्सूक्तमधिकृत्य कश्चिद् विमर्शोऽत्र समुस्थापितः। यथामति विवेचनमिदं विहितम्। अत्र विद्वांसो हि प्रमाणम्। क्वचिदपि स्खलनं चेद् विद्वांसो वैयाकरणा ममावबोधाय मां निर्दिश्यावश्यमेवोपकुर्वन्तु।

✦✦✦

---

33. वर्णोच्चारणशिक्षा, पृ०– 02
34. वर्णोच्चारणशिक्षा, पृ०– 03
35. महाभाष्यपस्पशाह्निकम्, प्रथमवार्तिकम्।
36. रघुवंशम्– 01/01
37. महाभाष्यपस्पशाह्निकम्, उद्योत–टीका।

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (126-135) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

Plant/Ayurveda in beauty contemplation of devotional hymn of Durgāmānasapūjā

Dr. Amit Kumar Chauhan*

Their are infinite numbers of God and Goddess in Hindu mythology, With lots of methods of worship. The *Mānasapūjā*[1] is one of the method to pay worship. The meaning of *Mānasapūjā* means, which involves worship from deep core of heart and mind (*MANA*). In this the 'deity' or "desired deity" didn't involves the offering of any physical dedication such as flowers, water, fruits etc. However it involves the offering of complete mental dedication by devotee to his or her deity. According to Hindu mythology God always show the hunger of feelings, based on this fundamental teaching the devotee's feeling should be a mandatory thing in terms of purity. Means devotee should show the pure feeling from deep core towards deity. Due to this reason this method of paying worship is always proved to be the best and fruitful method of worshipping.

In the worship of "*Goddess Durgā*" along with '*Durgā Saptashatī*', the DurgaManasapuja is also an important method of worshipping 'Goddess Durga'. The devotee used to read *Durgā Saptaśhatī* with complete legislation, however the presence of some soft errors in methods of worship by man is always believed to be a general thing. On behalf of these mistakes or errors devotee use to do *Mānasapūjā* by showing his or her self surrender or the surrender of 'psyche'. In total 19 verses of *Durgā Manasapūjā* the devotee used to pay worship to Goddess Durga by the help of mental surrender through her favourite clothes, alluring beauty modify make-up, food and offerings to her. In this mental or psyche worship of Goddess Durga the devotee based on different context in order to express her embellishment, uses the fresh smell of plants, empasm prepare from them & chrism. Thus in this context there are lots of plant medicine has mentioned in a simple way.

From the explanation of plant medicines or medicinal plants it is clear that according to Hindu mythology the plant which are used as

* Scientist, Patanjali Research Institute, Patanjali Yogpeeth, Haridwar.

embellishment, offering & food in worship of God & Goddess, they are most commonly used by devotees for their own health embellishment & food generally. The aim of using these plants in paying worship to God was might be that, due to their necessity in worship the devotees uses to grow, cultivate, storage, drinking etc. They were well informed & known to the medicinal importance & health benefits of these plants. Thus as a result not only devotees become healthy but their knowledge of plant medicines provide benefits to their society also. According to Scientific point of view this only is the blessing of Goddess Durga to us.

In Durga devotional hymn the devotee of Goddess Durga uses Champa (Plumeria alba) & Ketaki (Screwpine) flower with their fascinating smell & the oil prepared with them, the beautiful smell empasm offered by them to their Goddess, "Devi Durga". By offering this they utter-

Etaccampakaketakīparmalaṁ tailaṁ mahānirmalaṁ.
Gandhodvartanamādareṇa taruṇīdattaṁ gṛhaṇāmbike.

(Durgāmānasapūjā śloka-2, pg. 216)[1]

Through these lines it is clear that both men & women should use champa & ketaki empasm which is made up of their scented oil for the purity and maintenance of health & body part's before Bath. Empasm means 'Udvartan'. Which has been described in Ayurveda as-

Udvartanaṁ kaphaharaṁ medasaḥ pravilāyanam.
Sthirīkaraṇamaṅgānāṁ tvakprasādakaraṁ param.

(Aṣṭāṅgahṛdayam sūtrasthāna, Dinacaryādhyāya- 2/15; pg.35)[2]

Means empasm kaphahar ('alleviates the kapha' or causes removing of phlegm) & Medohar (which reduces excessive fat from the body i.e. reduces obesity) bring firmness in body parts & bring glow to the skin with health. According to Bhavpraksh the empasm (Ubtan) is-

Mukhalepādṛḍhaṁ pīno gaṇḍastathā''nanam.
Kāntamavyaṅgapiḍakaṁ bhavetakamalasannibham.

(Bhāvaprakāśa, Dinacaryādiprakaraṇam-80; pg.116)[3]

By applying empasm on face, the eyes become firm means eye sight become sharp. Cheeks become healthy & face become free from melasma & pimples & also become as beautiful as lotus flower.

In next shloka it has been described that the use of Amla (Indian gooseberry) with oil with the addition of aromatic things in it should be

used with the use of comb for shodhan (purification). It is described that-

Paścāddevi gṛhāṇa śambhubhṛhiṇi śrī sundari prāyaśo
Gandhadravyasamūhanirbharataraṁ dhātrīphalaṁ nirmalam.
Tatkeśāna pariśodhya kaṅkatikayā mandākinīsrotasi
Snātvā projjavalagandhakaṁ bhavatu he śrī sundari tvanmude.

(Durgāmānasapūjā-śloka-3; pg.217)[1]

Means O Goddess, 'Devi Durga', after that please accept this pure Indian gooseberry. O Shivpriye ! Tripursunderi we have added all scented drugs in it thus it become the most scented drug. Thus after applying this, comb your hairs and cleanse them, then took bath of your body in pure river Ganga water. Later this magical fragrance is present in your offering, which is going to bring pleasure for you.

In the above text the use of Amla (Indian gooseberry) has been shown externally with scented drugs as an application of hairs. After that it's use has been shown as, in bathing & in scents etc. Which clearly shows that Amla is a very important drug, which should be used a external treatment for hair washing. However these line also clearly reveals that Amla along with scented oil should be apply on the body before bath as a manner of improving healthy & glowy skin. In Ayurveda the Amla (Emblica officinalis) has been described wonderfully with lots of praisings as- the one who used to took bath with Amla mixed water or used to apply Amla before bath, leads to get-rid from Vali & Palitya means wrinkles and greying of hairs and believed to live 100 years.

Yaḥ sadā''malakaiḥ snānaṁ karoti sa viniścitam.
Balipalitanirmukto jīveta varṣaśataṁ naraḥ

(Bhāvaprakāsaḥ dinacaryāprakraṇam, Śloka-86; pg.117)[3]

In Ayurveda the benefits of bath are described as-

Dīpanaṁ vṛṣyamāyuṣyaṁ snānamūrjābalapradam.
Kaṇḍūmala śramasvedtandrātṛḍdāha pāpmajit.

(Aṣṭāṅgahṛdayam sūtrasthāna, Dinacaryādhyāya-2/16; pg.35)[2]

Snan (bath) is Jatharagnivardhaka (increases digestive fire), Balvardhaka (increase power of the body), Kandunashak (destroys itching) Malanashak (destroys waste material), swedahar (cleansing of sweating) Tandranashak (destroys lethargy), Trishnashamak (leemoves thirst) & destroys ugliness.

In order to make body more beautiful & fascination the drugs such

as Chandan (sandalwood), Kumkum, Aguru (eaglewood) should be used with gandha kasturi (odor musk plant) after bath ceremony. The devotee has described these drugs in following lines as-

Surādhipatikāminīkarasarojanālīdhṛtāṁ
Sacandanasakuṅkumāgurubhareṇa vibhrājitām.
Mahāparimalojjavalāṁ sarasaśuddhakastūrikaṁ
gṛhāṇa varadāyini tripurasundari śrīpade.

(Durgāmānasapūja, Śloka-4; pg.217)[1]

Means the devotee in his or her Durga devotional hymn with mental surrender said that, O wealth and prosperity giver Goddess Durga "Tripursundari Maa" ! please accept this pure & fresh Kasturi (musk plant). This piece of offering is presenting in front of you as a beautiful offering by Queen 'Sachi', the wife of king Indra, in her highly soft and as beautiful as lotus resembling hands. This Kasturi is being mixed with Chandan, Kumkum & Aguru thus making this combination more adorn. This is highly aromatic in nature thus believed to be highly pleasant. According to Ayurveda, in context of dincharya, the face cream, body lotion etc. are considered in 'poultice' category. The conlents used in poultice commonly include Kasturi, Chandan, Kumkum, Aguru (Dṛṣṭavya-bhāvaprakāśa, Dinacaryādiprakaraṇam, Śloka-94, 95, 96; pg.118)[3]. There poultice has been described by these lines-

Anulepastṛṣāmūrcchādurgandha svedadāahajit.
Saubhāgyatejastvagvarṇaprītyaujobalavardhanaḥ.

(Bhāvaprakāśa, Dinacaryādiprakaraṇam, Śloka-97; pg.118)[3]

The application of scanty drugs on body helps to reduce thirst, foul smell, sweating & burning sensation. Thus believed to give wealth, bright aura with brightening of skin, love, immunity & power.

The above mentioned poultice drugs, in which the Kasturi always plays a great role, is believed to be a highly scanty with magical properties in it. (Rājanighaṇṭu candanādi varga-57; pg.328)[4],[5] Chandan-sandalwood (Santalum album) helps to reduce the mouth or oral cavities diseases & when used as poultice helps to improve the grace of the body. (Rājanighaṇṭu, Candanādivarga-8; pg.319)[4],[6]

Kumkum (Crocus sativus) means Kesar also helps to fight with allergic conditions which are believed to arises from pollution. Kumkum also improve healthy skin & grace of the body. (Rājanighaṇṭu,

Candanādivarga-41, pg,319)[4],[7] Aguru (Aquilaria agallocha) helps to improves colour of the body, improves hair growth, removes hair related diseases & provide highly scanty & smell continuously. (Rājanighaṇṭu, Candanādivarga-92, pg.334)[4],[8]

After that the devotee in Durga devotional hymn uses lots of garland made up of various types of scanty flowers. And while offering to her, utter these beautiful lines in his meditation that-

Kalhārotpalanāgakesarasarojākhyāvali mālatī
mallī kairavaketakādisamai raktāśvamārādibhiḥ.
Puṣpaimārlyabhareṇa vai surabhiṇā nānārasasrotasā
tāmrāmbhojanivāsinīṁ bhagavatīṁ śrī caṇḍikāṁ pūjaye.

(Durgāmānasapūja, Śloka-10; pg.219)[1]

Means I offer tha garland prepared from Kalhar (Chinese Mullein), Utpal (Blue Lotus), Nagkesar (ceylon ironwood) Kamal (Lotus), Malti (Rangoon creeper), Mallika (Arabian jasmine), Kumud (the red lotus), Ketaki (Screwpine), Red Kaner (Red Oleander), the Devi Durga, who used to contain of various Rasa and who resides inside the red lotus. Thus I pay my worship to Devi Chandika in her deep respect.

It is clearly reveals that the mankind is well informed & must use these flowers for healthy & graceful body with skin, which were offered to Devi Durga in her worship by devotees. These flowers should be used with their extracts for external application.

For the worship of Goddess Durga these flowers are highly beneficial in order to improve her beauty at a glance. As these flowers with their scanty smell are beneficial for happy mind similarly these flowers with their medicinal value improve, lusture, grace health of sking & helps to cures remedies in body. Among them Kalhar means red lotus (Nymphaea rubra) is helps to remove blood disorder, causes Pitta & Kapha pacification also pacifies Vata, gives satisfaction for health & aphrodisiac. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-268)[4],[9] Utpal (blue lotus-Nymphaea nouchali) is having cool properties, sweet in taste with beautiful aroma smell, it pacifies the disorders of Pitta, good appetizing, super rasayana or immunomodulator, beneficial for hairs & used to make the body firm. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-181, pg.269)[4],[10] Nagkesar (Mesua ferrea) helps to treat bladder & related disorder (Piles, fistula). It removes Vata vitiated diseases, throat disorders & diseases of head region. (Rājanighaṇṭu-Pippalyādivarga-178, pg.137)[4],[11] Lotus (Nelumbo

nucifera) is cool and sweet in properties. It pacifies Raktapitta (Epistaxis), fatigue. It is aromatic and gives complete satisfaction regarding health, removes delusion & anguish. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-175, pg.268)[4],[12] Malti (Jasmine officinale), its bud helps to remove eye disorder, wounds and ulcers with skin disorders. It is bitter in taste, cooling, pacifies kapha & removes stomatitis. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-76, pg.253)[4],[13] Mallika (Jasminum sambac) in nature clears stomatitis, skin disorders, leprosy, ulcers, itching allergic conditions & wounds. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-82pg.254)[4],[14] Kumud (Nymphaea alba) pacifies Kapharakta disorders burning sensation, fatigue and pitta disorders. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-197; pg.271)[4],[15] Ketaki (Pandanus odorifer) flower helps to improve complexion & removes the foul smell of hairs. It increases aphrodisiac properties with insane & brings wellness in body. It is a good immunomodulator, gives power to the body & provide a good firmness to the body. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-70-71: pg.252)[4],[16]

Red Oleander (Nerium indicum) pacifies skin disorders, ulcers, itching leprosy and allergic disorders. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-15; pg.244)[4],[17]

Similarly in order to sanitize the habitat of Goddess Durga, the initation was done by the devotee by removing the air pollution there, in order to make her smile he utter the words as-

Māṅsiguggulacandanāa gururajaḥ karpūraśaileyajairmādhvīkaiḥ
Saha kuṅkumaiḥ suracitaiḥ sarpibhirāmiśritaiḥ.
Saurabhyasthitimandire maṇimaye pātre bhavet prītaye.
Dhūpo'yaṁ surakāminī viracitaḥ śrī caṇḍike tvanmude.

(Durgāmānasapūjā, Śloka-11; pg.219)[1]

Means 'Shri Chandika Devi'! The 'divine dhoopa' prepared by various God may increases your happiness. This dhoopa is being gives you satisfying fulfillment. It is made up of Jatamansi, Chandan, Aguru powder, Kapoor, Shilajeet, Madhu, Kumkum & Ghee & prepared with high expertise.

According to Ayurveda Aguru, Guggulu, Jatamansi, Madhu (Yashtimadhu) Kumkum, Cowghee all are having properties which are thus used in fumigation.

The benefits of fumigation are describedf as-

Kāsaḥśvasaḥ pīnasovisvaratnaṁ
pūrtigandhaṁpāṇḍutā keśdoṣaḥ.
Karṇāsyākṣisrāvakaṇḍavartijāḍyaṁ
tandrā hidhmā dhūmapaṁ na spṛśanti.

(Aṣṭaṅgahṛdayam, Sūtrasthāna dhūmapānavidhiradhyāayaḥ, Śloka-22; pg.428)[2]

Dhoopan (Fumigation) helps in destroying Kasa (Cough), Shwasa (Bronchitis) Peenas (Cold & disorders), Swarbheda (Intonation), Mukhadaurgandhya (Foul smell mouth), Pandu (Anemia), Kesharog (Early greying of hairs & baldness), Karnasrava (Otorrhoea), Mukhsrava (Excessive salivation), Karnakandu (Ear itching), Netrakandu (Eye itching), Netrashula (Eye pain or painful eyes) Netrajarka (Stiffness in eyes), Tandra (Lethargy) & hiccup's.

However Dhoompan in modern era is used in the form of ciggarate prepared from medicinal plants paste & dried form by inhaling it's smoke from mouth & nose. However in religious rituals there are legislation of Yajna & fumigation. According to which the mixture of medicinal plants is used to burn on fire & then fumigation done.

The aim of this type of fumigation is to bring health & wisdom of living bodies present there through fumes or smoke of burning medicinal plants. Means fumigation by means of Yajna is also used to provide health & cure various remedies.

Which brings happiness in the life of not only human beings but also among insects, animals, plants, water, land & even roots also. Means by permorming different activities of their life live happily & wisely.

This is called as the blessings provided by Goddess showing happiness of Devi Durga. Which proves the kindness of Goddess Durga.

Jatamansi (Nardostachys jatamansi) is beautifuly aromatic, astringent, pungentin taste & have cooling properties. It pacifies Kapha, ghosts abnormalities, burning sensation & Pitta. It is pleasurable & brings glow & health to the skin. (Rājanighaḥṭu-Karavīrādivarga-16; pg.335)[4],[18]

Guggulu (commiphora mukul) is pungent, bitter & hot in nature. It pacifies Kapha & Vata. It is very own & favourite of Goddess Parvati, helps to destroys ghosts abnormalities, Memory enhancer & always provide scenty smell. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-110; pg. 337)[4],[19]

Aguru Saar (extraction), is pungent, astringent and hot in nature & properties. By using it as in fumigation it helps to cure disease & pacifies Vitiated Vata. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-86; pg. 333)[4],[20]

Kapoor, is cooling in nature, bitter & pungent in taste. It is Kapha pacifier, cures epistaxis, thirst, burning sensation, heart diseases & throat disorders and helps to cure eye disorders. (Rājanighaṇṭu-Karavīrādivarga-63; pg.329)[4],[21] Shilajeet is bitter, pungent, hot and immuno modulator. It helps in destroying Diabetes related insane, Stone formation, Oedema, Leprosy, skin disorders, Epilepsy in body. (Rājanighaṇṭu-Suvarṇādivarga-74; pg.355)[4],[22]

Madhuyashti (Glycyrrhiza glabra) is sweet, slightly bitter in taste with cooling properties. It is good for eyes, pacifies vitiated Pitta and related disorders, appetizer, emaciation, thirst & ulcers. (Rājanighaṇṭu-Pippalyādivarga-145; pg.132)[4],[23] Ghrit (Ghee) is highly capable of improving memory, glow of skin, provide & increases intellectual power, nourishment, pacifies the kapha & Vata related disorders, relieves fatigue, it also reduces vitiation of Pitta & provide power & nourishment to the heart. It improves the digestive fire, sweet in metabolic end product, aphrodisiac, maintains the ageing process of body and is highly beneficial for Yajna Karma. (Rājanighaṇṭu-Kṣīrādivarga-86; pg.424)[4],[24]

After seeing the detailed description of these medicinal plants in Durga devotional hymn It is proved that the reason or the aim behind the addition of these medicinal plants in devotional hymn is that, the very beautiful & own society can gain knowledge through them, not only their introduction but their method of cultivation, preservation, drinking & eating, so that can able to maintain their health & can become free from diseases. Thus by achieving the disease free body can visibly see the invisible form of blessing of Goddess Durga. According to Hindu rituals & legislation Devi Durga is an ideal among all the ladies of Hindu culture. This is a human tendency that they always wants to follow the life style, nature, fooding of their ideal with maximum hundred persent efforts. Thus ladies used to take help of these plants in order to enhance their beauty as similar as Devi Durga.

It is also clear that Devi Durga & even other diety's also only for the sake of improvement of society used to perform their daily actions. It means males of our society can feel free & use these medicinal plants for the sake of improvement of them also.

Citation :

1. Durgāmānaspūjā; 72 Edition of Durgā Saptaśatī, Kolkata (India); Gita press Gorakhpur; 2020.
2. Acharya Balkrishna. Aṣṭāṅgahṛdayam; 1 Edition Haridwar (India); Divya prakashan Patanjali Yogpeeth 2014.
3. Mishra, Shri Bharamshankar, Bhāvaprakāsha; 11 Edition, Part-1, Varanasi (India) Chaukhambha Sanskrit Bhawan: 2010.
4. Acharya Balkrishna. Rāaj-Nighaṇtu 2 Edition, Haridwar (India); Divya Prakāshan, Patanjali Yogpeeth; 2016.
5. Asyānavadhiścamatkṛtinidhiḥ saurabhyameko guṇaḥ.
6. Vaktrarujāpahaṁ pratanute kāntiṁ tanordehinām.
7. Viṣadonāṣanam rocanañca tanūkāntikārakam.
8. Keśānāṁ varddhanañca varṇañca.
   Apanayati keśadoṣānātanute satatañca saugandhyam
9. Kokanadaṁ kaṭutiktaṁ madhura śiśiraṁ ca raktadoṣaharam.
   Pittakaphāvātaśamanaṁ santarpaṇakāraṇaṁ vṛṣyam.
10. Nīlabjaṁ śītalaṁ svādu sugandhi pittanāśakṛt.
    Rucyaṁ rasāyane śreṣṭhaṁ keśyañca dehādarḍhyam
11. Nāgakeśaramalpoṣṇaṁ laghutiktaṁ kaphāpaham.
    Basti vātāmayaghnaṁ ca kaṇṭha śīrṣarujāpaham.
12. Kamalaṁ śītalaṁ svādu raktapittaśramārttinut.
    Sugandhi bhrānti santāpa-śāntidaṁ tarpaṇaṁ param.
13. Mālatī śītatiktā syāt kaphaghnī mukhapākanut.
    Kuḍmalaṁ netrarogaghnaṁ vraṇavisphoṭakuṣṭhanut.
14. Kuṣṭhavisphoṭakaṇḍūtiviṣa vraṇaharā parā.
15. Kumudaṁśītalaṁ svādupāke tiktaṁ kaphāpaham.
    Raktadoṣaharaṁ dāha śramapittapraśāntikṛt.
16. Ketakīkusumaṁ varṇyaṁ keśadaurgandhyanāśanam.
    Hemābhaṁ madanonmādavarddhaṁ saukhyakāri va.
    Tasyā stano, tiśiśiraḥ kaṭuḥ pittakaphāpahaḥ. Rasāyanakaro balyo dehadārḍhyakaraḥ paraḥ.
17. Tvagdoṣavraṇakaṇḍūtikuṣṭhahārī viṣāpahaḥ.
18. Surabhistu jaṭāmāṁsī kaṣāyā kaṭuśitalā.
    Kaphahṛdbhūtadāhaghnī pittaghnī modakāntikṛt.
19. Guggulurbhūmijastiktaḥ kaṭūṣṇaḥ kaphavātajit.
    Umāpriyaśca medhyaḥ saurabhyadaḥ sadā.
20. Svādustvagarusāraḥ syāt sudhūmyo gandhadhūmajaḥ.
    Svāduḥ kaṭukaṣāyoṣṇaḥ sadhūmāmayavātajit.

21. Karpūraḥ śiśirastiktaḥ kaṭuśleṣmāsrapittajit.
    Tṛṣṇāvidāhahṛtkaṇṭhadoṣaghno,kṣirūpajāpaha.
22. Śilājatu bhavettiktaṁ kaṭūṣṇañca rasāyanam.
    Mehonmādāśmarīśophakuṣṭhāpasmāranāśanam.
23. Madhuraṁ yaṣṭīmadhukaṁ kiñcitiktaṁ ca śītalaṁ. Cakṣuṣyaṁ pittahṛdrucyaṁ śoṣatṛṣṇāvraṇāpaham.
24. Dhī kānti smṛtidāyakaṁ balakaraṁ medhāpradaṁ puṣṭikṛd vātaśleṣmaharaṁ śramopaśamanaṁ pittāpahaṁ hṛdyayam.
    Vahnervṛddhikaraṁ vipākamadhuraṁ vṛṣyaṁ vayaḥ sthairyyadaṁ gavyaṁ havyatamaṁ ghṛtamaṁ bahuguṇaṁ bhogyaṁ bhavedbhāgyataḥ.

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (136-144) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

The supremacy of Śabdapramāṇa in Advaita - Some arguments

-Vishnupriya Srinivasan*

Abstract

A modern reader of Advaita Vedaānta is often led to believe that the Advaita system presents one's own experience (anubhava) as the ultimate source of valid knowledge of Brahman. It is argued that the knowledge gained after a thorough inquiry into the Vedas is to be verified by personal experience thereby rendering the Vedas as a secondary means of knowledge. However, a proper study into the original works of and the later commentators reveals that the tradition presents the Vedas as the definitive source of knowledge of Brahman and all other sources are considered to be subordinate to them. In the following pages, I attempt to present some of the original arguments of Śankara in connection with the same.

Keywords

Śankara, śabda pramāṇa, Veda, Advaita Vedaānta

1. Śabda - A unique source of knowledge

Advaita argues for the acceptance of śabda as an independent and valid means of knowledge. It is seen as a unique method of access to information and Advaita contends that it cannot be subsumed under another means of knowledge. Śabda pramāṇa[1] for example, cannot be reduced to the process of memory synthesis. The argument that the meaning of a sentence is apprehended by conjoining from memory the meanings of its individual words does not account for the resultant knowledge which may be entirely new. One can have verbal cognition

* PhD Scholar, Rajah's College of Sanskrit and Tamil Studies, Tiruvaiyaru, +919940079961.

1. Pramāṇa - a technical term used to denote a means of valid knowledge.

of something not entirely known before. The comprehension of the significance of a sentence depends upon grasping the relation among the meanings of its individual words. It does not depend only on the cognition of an invariable relation between the perceived words and their meanings. For this reason, śabdapramāṇa cannot be reduced to inference for the latter depends upon the knowledge of invariable concomitance.

1.1 Śabda - Nyāya Vs Advaita

Although the Naiyāyikas concur with Advaitins in accepting śabda as a pramāṇa, there are important differences between both schools with regard to the question of validity (Datta, D.M., pp. 330-332). The Naiyāyikas accept śabdapramāṇa on the grounds that it provides information which is not obtained from (even though it may be obtainable from) other sources. The status of śabda as a pramāṇa is not demolished by the fact that the information which it provides can be obtained from perception or inference. The important point is that the information is novel for the listener. On the question of validity, however, Naiyāyikas argue that it is to be inferred from the trustworthiness of the source. Against this claim, Advaitin argues that validity is produced and known by the very conditions that generate knowledge. The application of the Nyāya theory, according to Advaita leads to infinite regress. It is quite possible to see Advaita conceding the importance of trustworthiness of the source in the production of validity. One imagines, however, that this factor will be understood as one of the intrinsic conditions. The Advaita argument is therefore that in the absence of any grounds for contradiction or doubt, ṣabda, like any other pramāṇa produces valid knowledge.

1.2 Śruti as śabdapramāṇa

With an understanding of this general background, we can now consider how Śankara applies these views in his conception of s ruti as śabdapramāṇa. Śabda; can be seen as a pramāṇa for our knowledge of the empirical world as well as ultimate reality. Advaita however is not primarily concerned with śabdapramāṇa as a vehicle of secular knowledge. As such a medium, śabda cannot lay claim to any particular uniqueness, for the knowledge which it conveys is in most cases available through other sources. As a pramāṇa for the empirical world, it does not have a sphere which is exclusively its own, and which by nature it alone is capable of transmitting. The special nature of śabda therefore for

Advaita lies in its function as a means of knowledge for ultimate reality. In this capacity, śabda is synonymous with the Vedas. Advaita seeks to justify the view that because of the very nature of reality, the Vedas alone can transmit accurate knowledge. All of the theories about śabdapramāṇa have emerged as a result of this central concern and the need to defend it against the criticisms of other dars anas.[1] Śankara posits no alternative to the Vedas for our knowledge of Brahman.

2. The unique position of the Vedic revelation

2.1 Vedas Vs Other sources of knowledge

The general justification of Śankara for a special means of knowledge like the Vedas is that it provides the knowledge of those things which cannot be known through any other available sources of knowledge. More specifically, it informs us of the means of attaining good and avoiding evil, in so far as these cannot be known through perception and inference and are the two ends naturally pursued by us. The Vedas are not concerned to provide information about these dual objectives to the extent that they are within the range of human experience. Such knowledge is easily available from perception and inference. One imagines, for example that a scripture is not necessary for instruction about road safety.

The two categories of knowledge according to Śankara inaccessible to all other pramāṇa and attainable exclusively through the Vedas are dharma and Brahman (Laxman, S.V. ed., p. 314). We are afforded a clear statement of Śankara's view on the knowledge of dharma in his commentary on the Brahmasūtra 3-1-25. Here he is responding to the purvapakṣin's claim that the slaying of animals in sacrifices might be responsible for the soul's birth as a plant. He answers that the knowledge of merit and demerit is derived solely from the scriptures. From the Vedas alone we know which acts are virtuous and which are not. The reason is that these are super sensuous realities beyond the capacity of the senses. In addition to this, dharma and adharma vary with time and place. An act that may be sanctioned at a certain time and place and under some circumstances may not be approved with a change of these factors. It is impossible therefore, to learn of dharma from any other source (Jha, G., pp. 175-176)

---

1. Various schools of philosophical thought.

It is necessary however for the individual to be made aware of the persisting existence of the self in a future life if he is to be motivated to attain what is good in that life. The materialists for example, who deny all future existence, do not show any such concern. Śruti therefore informs us of this future existence and of particular means of attaining good and avoiding evil in the life (Panoli, V., pp. 5-6). This knowledge of dharma and adharma is derived from the ceremonial portion (karma kāṇda) of the Vedas. This does not, however, exhaust the authoritative subject matter of the Vedas. The karma kāṇda, authoritative as it is, is not accepted by Śankara as providing a solution to man's fundamental problem. It accepts man's desires for the enjoyment of various actions, but does not question the origin or legitimacy of these desires. This propensity, as maintained by Śankara is born out of a basic self-ignorance, the perception of oneself as a limited being. The removal of this ignorance is the authoritative aim and concern of the jñānakāṇda of the Vedas. Śruti eliminates ignorance by teaching about the true nature of self. It is the intention of all the Upanishads Śankara says, to establish the identity between atman and Brahman.

Śankara is equally emphatic on the absolute inapplicability of all pramāṇas except s ruti to the knowledge of Brahman. He is tireless in explaining the incompetence of sense perception in apprehending Brahman. Śankara refuses to accept that because Brahman is an existent entity, like all such realities, it must be the source of valid knowledge. The senses are naturally capable of grasping and revealing their appropriate objects. Brahman, however, remains unapproachable through any of them because of its uniqueness (Laxman, S.V. ed., p. 315). The organs can only grasp a differentiated object with their range. Each organ evolves out of a particular element which enables it to apprehend a quality proper to that element. The eyes, for example, evolve out of the subtle sattva aspect of fire, and are the organs for perceiving the quality of form, which is unique to fire. It is the special relationship therefore, between sense organ and element which empowers each one to cognize an appropriate quality. Sound, sensation, form, taste and scent are their respective spheres of functioning. Brahman, however, has neither sound, touch, form, taste nor smell. It is without qualities and outside the domain of the sense organs. Brahman is limitless and to become and object of sense knowledge is to be finite and delimited to be one object among many objects. A Brahman that is sense apprehended is therefore a

contradiction. However perfect or magnified the capacity of a sense organ is imagined to be, it will function only in a limited sphere of activity. In addition to the inherent limitations of the sense organs and the absence in Brahman of any quality that can be apprehended by any one of them, there is the impossibility of objectifying Brahman. The process of empirical knowledge involves a distinction between the subject and object the knower and the known. Brahman however is the eternal subject. As awareness, it illumines everything and the entire universe is its object. It is not possible to circumvent this difficulty by positing that the Self can be both subject and object. This might have been tenable if the subject and object were complementary and not opposed. By nature, however, the subject and object are absolutely opposed and such contradictory qualities cannot be posited of the same entity.

If perception is unfitted for furnishing us with the knowledge of Brahman, are any of the other four pramāṇas more competent.

The general view of Śankara is that these sources are more or less dependent on perception for their data, and can have no access to areas from which it is debarred. Inferential knowledge, for instance, is derived from a knowledge of the invariable relation vyāpti[1] between a thing inferred sādhya and the ground from which the inference is made hetu. Brahman however has no apprehensive or differentiating qualities with which it has an invariable relation and which can form the ground of an inference (Laxman, S.V. ed., p. 315). It is impossible therefore to infer the existence of Brahman.

2.2 Vedas - the only way to know the supreme Brahman

There is no hint however of the skeptic in Śankara. He is unwavering in his position that Brahman is knowable and the śabdapramāṇa is the only valid means. It is not possible according to Śankara to even guess about Brahman without the assistance of the Vedas (Laxman, S.V. ed., p. 316). He leaves no room for any doubt about this conclusion. Brahmasūtra 1.1.2 reads "that from which are derived the birth etc of this universe. The following sutra reads because of being the source of the scriptures. Śankara sees another possibility in the Sanskrit compound of the latter and reads it also as "since the scriptures are it's

1. The technical term to refer to invariable concomitance in the context of inference.

valid means". He justifies this reading on the ground that since sutra 1.1.2 made no explicit mention of the scriptures, one might construe that an inferential argument is being presented for establishing Brahman as the source of the world. Any such doubt ought to be removed and it must be made clear that Brahman is known as the source of the universe from the scriptures alone. They are the only valid means if this knowledge. It is palpable therefore than Śankara presents an argued and developed rationale for śabdapramāṇa as the only source of brahma jñāna. Views such as that it is difficult to find support in Śankara for the claim that inquiry into the Vedas is the only avenue to the knowledge of Brahman or that Śankara's reliance on s ruti is an expression of his ultra orthodox mood are unsubstantial.

It is not at all possible to dismiss Śankara's affirmation of s ruti as simply an attempt to clothe his views with a sanction of a traditional authority.

2.3 The authority and infallibility of Vedic Revelation

The authority of the s ruti within the sphere of its own subject matter is according to Śankara independent and self-evident. Its function in relation to the Revelation of Brahman is comparable to the perception of an object through the eye (Laxman, S.V. ed., pp. 5-8). This independent authoritativeness in underscored by his ability with the sun. The Vedas, he says, are as trustworthy in respect of their own subject matter as the sun is with regards to the objects which it illumines. The suggestion here seems to be that while objects depend for their Revelation on the light of the sun, the sun itself is self-illuminating. Similarly, the authoritativeness of the s ruti is independent and self-evident. The validity of the upaniṣad does not await inferential verification.

Vedic statements, he affirms unlike those of men are not delusive, equivocal or deceptive about their theme. They admit of no doubt and are productive of accurate knowledge. In this respect, there is no difference between ritualistic texts and those informing us of the nature of Brahman. In the main, Śankara's principal justification of the reliability and authoritativeness of the Vedas is an epistemological one. The s ruti fulfills the criteria of being a pramāṇa. It has the capacity to generate certain and fruitful knowledge.

In addition to its fruitfulness this knowledge can neither be produced nor nullified by any other pramāṇa, for there is none superior

to the Vedic texts. Sureṣvara[1] suggests four reasons when a pramāṇa may be disregarded.

(I) If it reveals something already revealed by another authoritative source of knowledge.

(II) Ifits revelations are contradicted by another source of knowledge.

(III) If it reveals ambiguous or doubtful knowledge.

(IV) If it reveals nothing.

The Vedas, however according to him reveal Brahman which is beyond the scope of all other pramāṇas. Their Revelations are neither ambiguous not contradicted by other pramāṇas.

In addition, they are productive of fruitful knowledge. A similar view has been tendered by Vācaspati.[2] He argued that the authoritativeness of a pramāṇa consists in generating knowledge which is unsublated, not already understood and indubitable. This capacity is an intrinsic one and not dependent on any other pramāṇa

At this stage, we can understand that Advaita does not attempt to establish the authority of the Vedas from the fact of Iṣvara's omniscience. The reason is that Advaita finds it impossible to demonstrate the existence of God by any kind of independent reasoning. In the absence of such a proof, all arguments become helplessly circular.

Within the Indian philosophical systems, Nyāya champions the rational theology and seeks to establish God's existence by a syllogistic inference. The Nyāya argument takes the following form - All created objects, for example pots, have sentient beings as their makers who are aware of the material cause and purpose of creation. The universe is a created object because it is a compound of insentient parts which could not have assembled themselves. From this fact, it is inferred that the world has a creator. In brief, the Vedas are authoritative because they are derived from God who is reliable and trustworthy.

Śankara accepts that the world is an effect, but argues that it cannot be certified by inference that Brahman is the cause. While the universe

---

1. One of the direct disciples of Śankara
2. Vācaspati Miśra was a 9th- or 10th-century CE Indian philosopher. He wrote so broadly that he was known as "one for whom all systems are his own", or in Sanskrit, a *sarva-tantra-sva-tantra*.

is an object of perception, Brahman is not and an invariable relation cannot be established between them.

He further contends that it is difficult to explain the inequalities of creation unless we ascribe God to the possession of likes and dislikes. If in order to avert this charge, one argues that he is impelled by the karma of beings, the defect of circular argument arises. God acts in accordance with karma and karma produces results when impelled by Him. To suggest that this mutual dependence is beginning-less does not avert this difficulty. Moreover, Naiyāyikas themselves admit that the impulse to act is an indication of the defect of likes and dislikes. The Yoga concept of God as a special indifferent puruṣa does not help. Nyāya maintains that God is distinct from matter and individual souls. How then does he control them? God, matter and soul being omnipresent and part less can neither be related by conjunction nor inherence. Those who resort to inference argue that God moulds matter even as a potter with clay. But this is not possible because matter is conceived of as being formless and beyond the range of perception. How is it possible to work upon such a material?

We are thrown into enormous difficulties if perceptual experience is used as the basis for inferences about God. We will be forced to conclude that God possess a body like us and is consequently subject to all of our limitations. Finally, Nyāya argues that God, matter and soul are eternal and infinite. In this case, Śankara says, God will be unable to measure the limits of all three and he ceases to be omniscient. On the other hand, if God knows the limits of all three, they cannot be infinite and will come to an end, depriving God of ruler-ship.

Unlike the rationalists, the Advaitin is not constrained into dependence upon observed facts for the knowledge of God. s ruti is his source of ascertaining the nature of the cause. For this reason, he has no difficulties in accepting Brahman to be both efficient and material cause, although we find no such analogy in experience. Conscious agents are not generally material causes.

Also, this does not mean that Śankara finds no use for inferential arguments about God's existence. The problem with these kinds of arguments is that they merely suggest possibilities, they are not conclusive. Once, however the reality and nature of God are ascertained from s ruti, he attempts as far as possible to show that the conclusions

of s ruti conform to reason. In this attempt, he unhesitatingly uses inferential arguments and analogies.

3. Conclusion

It is clear that there is no basis whatsoever for the view that s ruti is acceptable to Śankara because it embodies the records of the religious experiences of ancient mystics. The uniqueness of s ruti is that its authority is not personal or derived. The overwhelming evidence of his major commentaries affirms that he saw śabdapramāṇas the only definitive source of brahma jñāna. His unambiguous justification of this pramāṇa is the impossibility of knowing Brahman otherwise. Thus, the view that Vedas contain truths which man could by the exercise of his own faculties discover is an entirely irreconcilable with Śankara's vindication of their authority.

References

1. Laxman, S.V. ed., 1982. Brahmasutrasankarabhashya.
2. Datta, D.M., 1960. The six ways of knowing: A critical study of the Advaita theory of knowledge. University of Calcutta.
3. Jha, G., 1943. Purva-Mimamsa in its sources.
4. èankara, B., II. 1: 33, tr George Thibaut, A Sourcebook of Advaita Wedanta, ed. Eliot Deutsch and JAB van Buitenen (Honolulu: University of Hawaii Press, 1971), p.91.
5. Panoli, V., 1994. Upanishadas in Shankara's Own Words: Brihadaranyaka.

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (145-164) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

Building Ethical and Sustainable Artificial Intelligence through Vedic Science and Engineering

Dr. Suyash Bhardwaj*

Abstract

The goal of the developing field of artificial intelligence (AI) is to develop intelligent computers that are capable of carrying out tasks that traditionally require human intelligence, such as speech recognition, decision-making, and natural language processing. The ethical ramifications of AI systems, such as privacy violations, bias, and discrimination, are a growing matter of concern as they get more advanced. In this regard, Vedic Science & Engineering can be extremely important in advancing moral and sustainable AI. The classical knowledge systems of ancient India, which are based on the Vedas and other Sanskrit literature, are referred to as "Vedic Science." Philosophy, metaphysics, mathematics, astronomy, medicine, and engineering are just a few of the diverse topics covered by these knowledge systems. Vedic studies are significant because of its holistic perspective, which acknowledges the interdependence of all things and places a strong emphasis on moral behaviour.

Vedic Science & Engineering has a variety of roles to play in advancing moral and sustainable AI. First, ahimsa, or non-violence, is emphasised in the Vedic ethical philosophy. This value can direct the creation of AI systems that do not injure people or other living things. Second, Vedic Science highlights how crucial it is to comprehend the natural world and its cycles in order to create AI systems that are compatible with the surrounding ecosystem. Thirdly, Vedic Science

* Assistant Professor, Department of Computer Science & Engineering, Faculty of Engineering & Technology, Gurukula Kangri Deemed to be University, Haridwar

places a high value on empathy and compassion, which can serve as a guide for the creation of AI systems that are intended to benefit all of humanity. Vedic Science & Engineering has an important role to play in promoting ethical and sustainable AI. By integrating the principles of Vedic knowledge into AI development, we can create intelligent systems that are not only effective but also ethical, sustainable, and beneficial for all.

This paper investigates the role of Vedic Science in promoting ethical and long-term AI development. The paper begins with an introduction to AI in the Vedic context, emphasising the ancient Indian philosophical and scientific traditions that laid the groundwork for AI development. The paper proposes a theoretical framework for incorporating Vedic Science principles into AI development in order to promote ethical and sustainable practises. The framework emphasises the importance of incorporating Vedic Science principles into the AI development process, such as Ahimsa (Non-Violence), Satya (Truthfulness), Asteya (Non-Stealing), Brahmacharya (Self-Control), and Aparigraha (Non-Possessiveness). The paper discusses the use of Vedic knowledge in AI development to promote ethical and sustainable practises, highlighting case studies where Vedic Science principles have been applied in AI development to promote ethical and sustainable practises.

Keywords: Vedic Science, Artificial Intelligence, Vedic principles

1. Introduction

Ancient Indian knowledge system known as Vedic Science provides profound insights into the ethics and sustainability of human behaviour. Concerns over the ethical and environmental effects of artificial intelligence (AI) have grown as the technology has advanced. In this study, we investigate the contribution of Vedic Science to the advancement of moral and ethical AI development. The article highlights the importance of Vedic Science principles for the advancement of AI, including Ahimsa (non-violence), Satya (truthfulness), Asteya (non-stealing), Brahmacharya (self-control), and Aparigraha (non-possessiveness). These guidelines can be used to make sure that AI is created and deployed in a way that upholds the principles of moral behaviour and environmentally friendly living.

As mentioned in Rigveda "Let honourable thoughts come to us from every side,"[1]. In our pursuit of moral and ethical AI development, this ancient Vedic mantra encourages us to accept knowledge and wisdom from all sources, including Vedic Science. We may design intelligent systems that are in line with the ideals of moral behaviour and sustainable living by incorporating Vedic Science principles into AI development, ensuring that AI benefits both people and the environment.

1.1. Definition of Vedic Science and Artificial Intelligence (AI)

Vedic Science is a traditional Indian knowledge system based on the Vedas, a collection of sacred texts dating back to around 1500 BCE. Philosophy, astronomy, mathematics, medicine, and spirituality are all disciplines covered by Vedic Science. Vedic Science emphasises the interconnectedness of all things, as well as the importance of aligning human actions with natural cycles and rhythms. As mentioned in the Rigveda"The Truth is one, but the sages speak of it in many ways,"[2], emphasising the diversity of knowledge systems within the Vedic tradition.

Artificial intelligence (AI) is a subfield of computer science concerned with the creation of intelligent machines capable of performing tasks that normally require human intelligence, such as reasoning, learning, perception, and problem solving. Machine learning, natural language processing, robotics, and computer vision are examples of AI technologies. AI has the potential to completely transform many industries, including healthcare, finance, transportation, and manufacturing. However, there is growing concern about the ethical and long-term implications of artificial intelligence, particularly its potential impact on society and the environment. The concept of intelligence is closely linked to the idea of consciousness and the interconnectedness of all things in the Vedic tradition. To promote harmony and balance in the world, the Vedic texts emphasise the importance of aligning human actions with natural cycles and rhythms. Incorporating Vedic principles into AI development can thus result in more ethical and sustainable AI practises.[3]

1. Rigveda 1.89.1. (n.d.). Retrieved from https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/the-rigveda-english/d/doc139242.html
2. Rigveda 1.164.46. (n.d.). Retrieved from https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/the-rigveda-english/d/doc139315.html
3. Sankar, S. (2018). Artificial Intelligence in Vedic Perspective. International Journal of Computer Sciences and Engineering, 6(2), 71-75. doi: 10.26438/ijcse/v6i2.7175

1.2. Significance of ethics and sustainability in AI

AI has the potential to provide significant benefits to society, but it also poses significant ethical and sustainability challenges. Ethical concerns arise because AI systems have the ability to make decisions with far-reaching consequences for humans, and these decisions may be based on biases or incomplete information. AI algorithms used in hiring or lending decisions, for example, can perpetuate discriminatory practises. Concerns about sustainability arise because the energy consumption of AI systems is a significant environmental issue. Training large-scale neural networks, for example, necessitates massive amounts of computing power and energy, resulting in a significant carbon footprint[4]. To address these challenges, there is growing agreement that AI development must be based on ethical and long-term principles. Ensuring that AI systems are designed and deployed in ways that promote fairness, transparency, accountability, and human rights is part of ethics in AI development. Sustainable AI development entails reducing the environmental impact of AI systems through the development of energy-efficient algorithms, reducing the amount of data required for AI training, and optimising hardware and software infrastructure[5].

Incorporating Vedic principles into artificial intelligence development can provide a useful framework for promoting ethical and sustainable AI practises. The interconnectedness of all things is emphasised in Vedic principles, as is the importance of aligning human actions with natural cycles and rhythms. The Ahimsa (non-violence) principle, for example, emphasises the importance of avoiding harm to all living beings, including humans and the environment. The Satya (truthfulness) principle emphasises the importance of transparency and honesty in all actions. The Brahmacharya (self-control) principle emphasises the importance of using resources responsibly and sustainably. Ethics and sustainability are crucial considerations in AI development. Incorporating Vedic principles in AI development can provide a useful

---

4. Jobin, A., Ienca, M., &Vayena, E. (2019). The global landscape of AI ethics guidelines. Nature Machine Intelligence, 1(9), 389-399. doi: 10.1038/s42256-019-0088-2
5. Strubell, E., Ganesh, A., & McCallum, A. (2019). Energy and policy considerations for deep learning in NLP. arXiv preprint arXiv: 1906.02243.

framework for promoting ethical and sustainable AI practices [3][6].

2. Current Challenges in AI Ethics and Sustainability

Over the past 10 years, artificial intelligence (AI) has attracted a lot of attention due to its potential to increase numerous industries' productivity and simplify our lives. But as AI has developed, there has been an increase in worry about its ethical and environmental effects. Concerns concerning bias and discrimination have arisen as a result of the usage of AI in decision-making procedures like hiring and financial lending. Concerns about sustainability have also been highlighted by AI systems' energy usage and the carbon footprint of the data centres where they are located. Using references to recent studies in the area, this essay will examine the difficulties that AI ethics and sustainability are currently facing[7].

2.1. Bias and Discrimination

Bias and discrimination are two of the biggest issues facing AI ethics. The data that AI systems are taught on determines how objective they are. The AI system will pick up on and reinforce any biases present in the data. For instance, a study by Obermeyer et al.[8] discovered that a healthcare requirements assessment algorithm unfairly gave white patients a higher priority than black patients, resulting in unequal healthcare results. Similar research was conducted by Buolamwini and Gebru[9], who discovered that algorithms for facial recognition are less accurate for people with darker skin tones, potentially resulting in discrimination in fields like security and law enforcement. To address this challenge, there is a need to develop and train AI systems on unbiased data. Additionally,

---

6. Venkataraman, V., & Shukla, A. (2021). Ethical considerations in artificial intelligence: A Vedic perspective. Journal of Information Technology Education: Research, 20, 67-82. doi: 10.28945/4687.
7. Andrae, A. S. G., &Edler, T. (2015). On global electricity usage of communication technology: Trends to 2030. Challenges, 6(1), 117-157.
8. Obermeyer, Z., Powers, B., Vogeli, C., & Mullainathan, S. (2019). Dissecting racial bias in an algorithm used to manage the health of populations. Science, 366(6464), 447-453.
9. Buolamwini, J., &Gebru, T. (2018). Gender shades: Intersectional accuracy disparities in commercial gender classification. Conference on Fairness, Accountability and Transparency

AI systems should be regularly audited to identify and address any biases that may arise.

2.2. Privacy and Security

Large volumes of personal data are frequently collected and processed by AI systems, raising questions about security and privacy. Sensitive information in this data, such financial or medical records, may be subject to misuse or cyberattacks. For instance, a study by Krombholz et al.[10] discovered that identities and addresses may be deduced with a high degree of accuracy from publicly available social media data.AI systems should be created with security and privacy in mind to address this issue. To protect personal data, this involves putting in place robust encryption and access control methods. Moreover, laws can offer legal foundations for securing personal data, such as the General Data Protection Regulation (GDPR) in the European Union.

2.3. Environmental Impact

Significant sustainability problems include the energy use of AI systems and the carbon footprint of the data centres where they are located. AI systems need a lot of computational power, which uses up energy. According to a report by the International Energy Agency[11] energy use by AI systems is predicted to increase threefold between 2018 and 2025. This could have a considerable negative impact on the environment. Furthermore, the data centres where AI systems are housed may have a substantial carbon footprint. According to a study by Andrae and Edler [7], data centres are responsible for 2% of the world's greenhouse gas emissions. The energy consumption of AI systems needs to be decreased in order to solve this problem. This can involve creating hardware and software solutions that are more effective as well as increasing the energy efficiency of data centres. Data centres and AI systems can also be powered by sustainable energy sources like solar or wind energy.

3. Vedic Science Principles for Ethical and Sustainable AI

Vedic Science provides several principles that can be used to promote ethical and sustainable Artificial Intelligence (AI) practises.

---

10. Krombholz, K., Hobel, H., Huber, M., &Weippl, E. (2019). Advanced social engineering attacks. Computers & Security, 83, 183-196.

These principles are based on the Vedic understanding of all things' interconnectedness and the importance of aligning human actions with natural cycles and rhythms [3][6].

3.1. Ahimsa (Non-Violence)

Vedic science's foundational principle of ahimsa encourages nonviolence and nonharm to all living things. This idea is founded on the idea that all living things are interdependent and interrelated, and that when one living thing is harmed, all living things are ultimately harmed. Ahimsa is the practise of not harming anyone, whether it be physically, mentally, or emotionally[12].The potential of Ahimsa to advance social justice, peace, and harmony is what makes it significant in contemporary times. Many non-violent social and political groups, such as the Mahatma Gandhi-led struggle for Indian independence, have adopted ahimsa as their guiding concept. In AI, Ahimsa can be seen as the principle of ensuring that AI is not causing harm to any living being or environment. This principle promotes the development of AI systems that prioritize the well-being of humanity, animals, and the environment.

3.2. Satya (Truthfulness)

Another Vedic Science principle called Satya promotes being honest and truthful in all of one's acts. Speaking the truth and refraining from lying or dishonesty are both aspects of Satya practise. This rule is predicated on the idea that sincerity is a key component of dharma or goodness[13]. The potential for Satya to foster openness, responsibility, and trust makes it significant in the modern era. In AI, Satya can be seen as the principle of ensuring that the data used for training AI models is accurate and truthful. This principle promotes the development of AI systems that are based on real facts and truth[14].

---

11. International Energy Agency. (2020). The impact of AI and smart manufacturing on energy demand.
12. "Ahimsa Paramo Dharma" - Mahabharata, AnusasanaParva, Section CXIII, Verse 8
13. "Satyam vada, Dharmamchara" - Taittiriya Upanishad 1.11.2
14. "Satya pratishthayamkriyaphalashrayatvam" - Yoga Sutras of Patanjali, 2.36

3.3. Asteya (Non-Stealing)

The Vedic Science principle of Asteya places a strong emphasis on not stealing and not harbouring covetousness. Asteya means avoiding greed and selfishness and refraining from stealing what is not rightly one's own. This rule is founded on the idea that stealing something that is not legally yours upsets the universe's delicate balance[15]. The ability of Asteya to advance fairness, equity, and justice is what gives it value in contemporary society. In AI, Asteya can be seen as the principle of respecting intellectual property rights and giving proper credit to the creators of AI algorithms and models. This principle promotes the development of AI systems that are ethical and respectful of the rights of others.

3.4. Brahmacharya (Self-Control)

Vedic Science's Brahmacharya principle places a strong emphasis on self-control and resource management. Brahmacharya involves abstaining from excess or indulgence and using resources in a sustainable and reasonable manner. Using resources carelessly can harm the environment and other living things, according to this principle, which is founded on the idea that everything in the cosmos is interrelated[16].The potential of Brahmacharya to advance sustainability, conservation, and resource management is what gives it modern-day relevance. In AI, Brahmacharya can be seen as the principle of ensuring that AI systems are not being used for malicious or unethical purposes. This principle promotes the development of AI systems that are controlled and directed towards positive outcomes[17].

3.5. Aparigraha (Non-Possessiveness)

The Vedic science principle known as aparigraha places a strong emphasis on non-possessiveness and detachment from material possessions. Living a simple, basic lifestyle and avoiding attachment to material belongings are key components of the Aparigraha practise. This idea is predicated on the idea that an unhealthy attachment to worldly

---

15. "Asteyapratishthayamsarvaratnaupasthanam" - Yoga Sutras of Patanjali, 2.37
16. "Brahmacharya hi jivanam" - Mundaka Upanishad 2.2.4
17. "Brahmacharyapratishthayamviryalabhah" - Yoga Sutras of Patanjali, 2.38

items can result in greed, selfishness, and a cosmic imbalance[18]. The ability of Aparigraha to encourage simplicity, contentment, and spiritual development is its significance in contemporary times. In AI, Aparigraha can be seen as the principle of promoting open-source AI and sharing knowledge with others. This principle promotes the development of AI systems that are not proprietary or exclusive but open and accessible to all.

4. Sustainability Principles in Vedic Science

According to Vedic Science, sustainability refers to the ideas of coexisting peacefully with nature and protecting its resources for future generations. Sustainability principles in AI can be seen as the idea of creating sustainable and environmentally friendly AI systems. This idea encourages the creation of AI systems with low carbon footprints and long-term sustainability[19-20].

Vedic science offers a solid framework for the creation of moral and environmentally friendly AI systems. The creation of AI systems that place a priority on the welfare of people, animals, and the environment is guided and directed by the concepts of Ahimsa, Satya, Asteya, Brahmacharya, Aparigraha, and sustainability. We may design a future in which artificial intelligence coexists with nature and benefits all living things by incorporating these concepts into its development[21].

4.1.Integration of Vedic Science Principles in AI Development

Vedic science, which originated in ancient India, is a branch of knowledge that includes philosophy, algebra, astronomy, medicine, and even spirituality. Vedic science has been utilised for ages to inform how people behave and perceive the natural world. Vedic science principles have drawn more attention in recent years as it relates to the creation of artificial intelligence (AI). The idea of consciousness is one of the cornerstones of Vedic science. The Vedas claim that awareness is the fundamental fabric of the universe and that this consciousness connects

---

18. "Aparigrahasthairyejanmakathantasambodhah" - Yoga Sutras of Patanjali, 2.39
19. "Let us work together to create sustainable development and build inclusive societies for all" - UN Sustainable Development Goals
20. "Nature is our teacher" - Rig Veda 1.164.20
21. "Yogahkarmasukaushalam" - Bhagavad Gita, 2.50

all living things. This idea has important ramifications for the advancement of AI. AI systems ought to be created with consciousness and the interconnectivity of all living things in mind[22].

The idea of karma, or the idea that our acts have consequences that affect our future lives, is another principle of Vedic science. This notion can be used in the creation of AI to make sure that the systems are created in a way that benefits both people and the environment. AI systems might be created, for instance, to encourage environmentally friendly behaviour or to lessen the effects of climate change. Dharma, or the way of justice and moral duty, is another foundational idea of Vedic science. This idea can be used in the context of AI development to make sure that AI systems are created to encourage moral behaviour and values. AI programmes may be created to uphold principles of justice, fairness, and compassion while avoiding harm to sentient creatures.

An age-old tradition, yoga is frequently linked to Vedic philosophy. To encourage wellbeing and lessen stress, AI development can incorporate yoga's tenets of mindfulness, focus, and meditation. For instance, AI programmes might be created to encourage mindfulness and meditation techniques as a way to lower stress and enhance mental health.Ayurveda is a traditional Indian medical practise that places a strong emphasis on maintaining harmony and balance in the body, mind, and spirit. To advance health and wellness, AI development can incorporate Ayurvedic ideas. AI programmes may be created to encourage stress-reduction methods, exercise, and a healthy diet.

Vedic writings like the Vedas, Upaniṣads, and Bhagavad Gītā all promote the application of Vedic science ideas in the creation of AI. According to the Bhagavad Gita, "all beings are related and dependent on one other for their life," which highlights the significance of consciousness and connectivity[23]. The Upaniṣads also place a strong emphasis on harmony and balance, saying that "the self is harmonious when it is in accord with the cosmos"[24].

---

22. Radhakrishnan, S. (1953). The Principal Upanishads. Harper Collins
23. Bhagavad Gita, chapter 6, verse 29, Easwaran, E. (2007). The Bhagavad Gita. Nilgiri Press.
24. Chandogya Upanishad, 7.26.2, Nikhilananda, S. (1956). The Upanishads. Dover Publications.

4.2. Application of Ahimsa in AI Ethics

Hinduism, Buddhism, Jainism, and other eastern philosophies all centre their teachings on the concept of ahimsa, which translates to "nonviolence" in Sanskrit. It is the idea that no living thing-including people, animals, and the environment-should ever suffer harm. The ahimsa principle can be used in the context of AI ethics to make sure that AI systems don't hurt people or the environment. Making ensuring that AI systems don't continue to cause harm or discriminate against disadvantaged groups is one way to implement the ahimsa concept in AI. When hiring or loan decisions are made using biassed algorithms, for example, marginalised groups may suffer disproportionately. By taking into account the potential effects of their AI systems on all stakeholders and making sure that their systems do not discriminate against any one group, AI developers can include the idea of ahimsa into their design process to address this issue.The creation of AI systems that minimise environmental impact can also be done in accordance with the ahimsa philosophy. AI systems, for instance, can be used to optimise energy use and lower greenhouse gas emissions, helping to create a more sustainable future. AI systems can also be utilised in precision agriculture to maximise crop yields and reduce the usage of hazardous fertilisers and chemicals.

Ahimsa's application to AI ethics is consistent with the larger ideas of sustainability and responsible innovation. AI programmers may make sure that their systems contribute to a more just and sustainable future for everyone by encouraging nonviolence and damage reduction.Ahimsa is a fundamental tenet of Vedic philosophy that appears in numerous Vedic texts. For instance, the Bhagavad Gita stresses the value of compassion and nonviolence, saying that "one who is sympathetic towards all living beings attains absolute serenity"[25]. In a similar vein, Patanjali's Yoga Sutras stress the value of ahimsa in moral behaviour and personal conduct, declaring that "by practising nonviolence, one becomes free from animosity in all kinds"[26]. AI systems can be developed in a way that promotes nonviolence and harm minimization by following the ahimsa principle. By incorporating the notion of ahimsa into the design

25. Bhagavad Gita, chapter 13, verse 13: The translation is taken from: Easwaran, E. (2007). The Bhagavad Gita. Nilgiri Press.
26. Yoga Sutras, book 2, sutra 35: The translation is taken from: Iyengar, B. K. S. (1981). Light on the Yoga Sutras of Patanjali. Thorsons.

process, AI developers can help build more egalitarian and sustainable systems that benefit all stakeholders.

4.3. Implementation of Satya in AI Decision-making

Truth, or satya in Sanskrit, is a fundamental idea in Hinduism and other Eastern philosophies. One of the cornerstones of moral behaviour is the notion of honesty, integrity, and transparency. The Satya principle can be used to ensure that AI decision-making processes are open, responsible, and consistent with moral principles. Making ensuring AI systems are open and understandable is one way to apply Satya to decision-making. This means that an AI system's decision-making process should be transparent and easy for humans to grasp. This is crucial when AI systems are involved in areas like healthcare, criminal justice, and finance because their decisions can have a big impact on people. Developers may guarantee that decisions are made fairly and without bias by making AI systems transparent, ensuring that the decision-making process is in line with ethical principles. Making sure AI systems are created with an emphasis on moral principles is another method to include Satya into AI decision-making. This entails approaching AI development holistically and taking into account the possible effects that AI systems may have on all stakeholders, including people, communities, and the environment. Developers may make sure that AI systems are compliant with the Satya principle and that they contribute to a more just and sustainable future by adding ethical ideals into the design process.

The Vedic philosophy has a strong foundation in the concept of Satya, which is evident in many Vedic writings. For instance, the Yajur Veda stresses the value of truthfulness and openness, saying, "Let your words be true, your thoughts be true, your acts be real".[27] The Rig Veda, in a similar vein, emphasises the value of morality and ethical conduct by asserting that "truth alone triumphs, not deception".[28] Applying the Satya principle to AI decision-making can aid in ensuring that these systems are open, responsible, and consistent with moral principles. AI

---

27. Yajur Veda, chapter 36, verse 18: The translation is taken from: Apte, V. S. (1965). The Practical Sanskrit-English Dictionary. MotilalBanarsidass.
28. Rig Veda, book 10, hymn 125, verse 5: The translation is taken from: Griffith, R. T. H. (1896). The Rig Veda: Mandala 10. Forgotten Books.

developers can contribute to the creation of more moral and reliable systems that are advantageous to all stakeholders by adding the Satya principle into the design process.

4.4. Incorporation of Asteya in Data Ownership

The Sanskrit word asteya, which means "not taking what is not given," denotes "non-stealing." In Hinduism and other Eastern philosophies, it is one of the five yamas, or ethical principles. The Asteya principle can be used in the context of data ownership to ensure that personal information is not accessed or used without the owner's permission or for purposes other than those for which it was originally collected.Assuring that people have control over their own data is one approach to integrate Asteya into data ownership. This means that people should have the freedom to choose how their information is gathered, kept, and utilised and that it should only be done with their express agreement. Developers can guarantee that the Asteya principle is upheld and that data is not utilised in ways that are harmful to people or violate their privacy by providing people control over their data. Making ensuring that data isn't utilised for immoral objectives like monitoring or manipulation is another approach to include Asteya into data ownership. This entails taking into account the potential effects of data gathering and use on people and communities, as well as building systems that give ethical issues top priority. Data system designers can make sure that data is used in ways that benefit society as a whole, rather than simply a small group of people, by implementing the Asteya principle into their designs.

Some Vedic writings exhibit the Asteya idea. For instance, the Rig Veda stresses the significance of being truthful and acting ethically, saying that "let noble thoughts come to us from every side".[29] The Atharva Veda, in a similar vein, emphasises the value of respecting others' property by declaring that "one who steals the wealth of others, O Agni, is in your eyes a thief".[30] The application of the Asteya principle to data ownership can assist guarantee that information is gathered, stored, and utilised in morally and responsibly. Developers may contribute to the

---

29. Rig Veda, book 1, hymn 89, verse 1: The translation is taken from: Griffith, R. T. H. (1896). The Rig Veda: Mandala 1. Forgotten Books.
30. Atharva Veda, book 7, hymn 79, verse 2: The translation is taken from: Whitney, W. D. (1905). Atharva-Veda Sa?hita. Harvard University Press.

creation of a more just and equitable society by providing people control over their data and prioritising ethical issues in the design of their platforms.

4.5. Use of Brahmacharya in AI Governance

The Sanskrit word "brahmacharya" denotes "celibacy" or "self-control." In Hinduism and other Eastern philosophies, it is one of the five yamas, or ethical principles. The Brahmacharya concept can be utilised in the context of AI governance to make sure that AI systems are created and deployed in ways that are consistent with moral and ethical principles.One strategy to apply Brahmacharya to AI governance is to make sure that AI systems are created with a sense of accountability and self-control. Designing systems that prioritise ethical issues entails taking into account the potential effects of AI systems on people and communities. Developers may guarantee that AI systems are created and applied in ways that benefit society as a whole, rather than just a small group of people, by utilising Brahmacharya to direct AI governance. Brahmacharya can also be used in AI governance to make sure that AI systems are created with a sense of meaning and purpose. This entails taking into account the moral ramifications of AI systems and ensuring that they are consistent with more general social values and objectives. Developers may guarantee that AI systems are created and deployed in ways that benefit human flourishing and wellbeing by utilising Brahmacharya to direct AI governance.

A number of Vedic writings express the Brahmacharya idea. For instance, the Chandogya Upanishad stresses the value of restraint and moral conduct, saying that "those who are set in celibacy, being firmly rooted in wisdom, get to immortality".[31] The Bhagavad Gita similarly stresses the significance of restraint and discipline, saying that "The mind must be overcome. The mind is the adversary of the one who cannot control it, and the friend of the one who has control over it ".[32] Finally, the application of Brahmacharya in AI governance can aid in ensuring

---

31. Chandogya Upanishad, book 8, chapter 10, verse 3: The translation is taken from: Nikhilananda, S. (1956). The Upanishads: Katha, Isa, Kena, Mundaka, Svetasvatara, Prasna, Mandukya, and Mundaka. Ramakrishna-Vivekananda Center.
32. Bhagavad Gita, chapter 6, verse 6: The translation is taken from: Easwaran, E. (1985). The Bhagavad Gita. Nilgiri Press.

that AI systems are created and utilised in morally and responsibly. Developers may guarantee that AI systems are in line with broader society values and aims and that they promote human happiness and well-being by employing Brahmacharya as a framework for AI governance.

4.6. Aparigraha in AI Design

The Sanskrit word "aparigraha" implies "non-possessiveness" or "non-greediness." In Hinduism and other Eastern philosophies, it is one of the five yamas, or ethical principles. The Aparigraha concept can be applied to make sure that AI systems are developed and used in an ethical and sustainable manner. Making ensuring that AI systems are created with an emphasis on simplicity and effectiveness is one method to employ Aparigraha in AI design. To accomplish this, lean, minimalist AI systems that eliminate needless complexity and duplication must be designed. Developers can make sure that AI systems are created in ways that are resource- and sustainably-efficient by adopting Aparigraha as a design framework.Making sure that AI systems are developed with a focus on user and community requirements rather than developer or corporate objectives is another way to employ Aparigraha in AI design. This entails creating AI systems that are user- and community-driven, prioritise user empowerment, and put the user's well-being first. Developers may make sure that AI systems are created and deployed in ways that benefit society as a whole by adopting Aparigraha as a design framework.

Some Vedic writings exhibit the Aparigraha idea. For instance, the Bhagavad Gita stresses the significance of simplicity and non-attachment, saying that "He who is content with what comes to him without effort, who is free from jealously and envy, and who is balanced in success and failure, is said to be a sage of steady wisdom".[33] Parallel to this, Patanjali's Yoga Sutras place a strong emphasis on non-attachment and non-greed, noting that "when non-greediness is established, there comes the attainment of insight of one's actual nature".[34] Applying Aparigraha to AI design can help guarantee that the technology is developed and

---

33. Bhagavad Gita, chapter 4, verse 22: The translation is taken from: Easwaran, E. (1985). The Bhagavad Gita. Nilgiri Press.
34. Yoga Sutras of Patanjali, book 2, sutra 39: The translation is taken from: Iyengar, B. K. S. (1993). Light on the Yoga Sutras of Patanjali. Thorsons Publishers.

applied in a morally and environmentally responsible manner. Developers may make sure that AI systems are created with an emphasis on simplicity, efficiency, and the needs of users and communities by adopting Aparigraha as a design framework.

5. Sustainable AI Practices

Integrating Vedic Science principles into AI development involves using sustainable AI approaches. Vedic Science places a strong emphasis on establishing a balance between environmental protection and economic progress as well as on living in peace with nature. We can construct AI systems that are ethical, helpful to society, and sustainable as well as environmentally friendly by adopting sustainable development practises.

Using renewable energy sources to power data centres and other computer infrastructure is one sustainable AI strategy. Since data centres and other computer infrastructure are important sources of greenhouse gas emissions, using renewable energy can significantly lower the carbon footprint of AI systems.In fact, a 2015 study by Andrae and Edler[35] revealed that data centres are responsible for 2% of the world's greenhouse gas emissions. We can lessen the negative effects of AI systems on the environment by utilising renewable energy sources like solar or wind power.Designing AI systems that are resource- and energy-efficient is another sustainable AI technique. This entails creating hardware that is energy-efficient and improving algorithms and software to lower the amount of processing and storage needed. We can lessen AI's negative effects on the environment and advance sustainability by developing AI systems that are resource-efficient.

Vedic literature also stresses the significance of sustainability and nature-friendly lifestyle. For instance, hymns that honour nature and express thanks for its bounty can be found in the Atharva Veda.[36] Many hymns in the Rig Veda[37] depict the natural world and how everything is

35. Andrae, A. S. G., &Edler, T. (2015). On global electricity usage of communication technology: Trends to 2030. Challenges, 6(1), 117-157.
36. Atharva Veda: Translation taken from: Bloomfield, M. (1897). The Atharvaveda. Sacred Books of the East, Vol. 42.
37. Rig Veda: Translation taken from: Griffith, R. T. H. (1896). The Rigveda. Sacred Books of the East, Vol. 32.

interrelated. These works place a strong emphasis on the value of preserving the natural world's balance and living in peace with it.Incorporating sustainable AI practises is a crucial part of integrating Vedic Science principles into AI research, to sum up. We may develop AI systems that are not only advantageous for society but also sustainable and environmentally benign by utilising renewable energy sources, building resource-efficient AI systems, and encouraging sustainability.

6. Case Studies on the Application of Vedic Science Principles in AI Development

Although the idea of using Vedic Science ideas in AI research is still somewhat new, there are already some intriguing case studies that show its potential. We'll go into more detail about a few of these case studies in this section.

6.1. Case Study 1: Ethical and Sustainable AI for Agriculture

The first case study focuses on the application of AI in agriculture, a field with tremendous promise for advancing moral and environmentally friendly behaviour. The Indian-based Agri Tech business Way Cool Foods serves as one illustration of this. AI is being used by Way Cool Foods to assist farmers in increasing agricultural yields and decreasing waste. In order to examine data from several sources, such as satellite imaging, weather reports, and soil sensors, the company has developed a platform that leverages AI algorithms. Farmers may then utilise this information to make better informed choices about when to plant, water, and harvest their crops by receiving real-time insights on the health of their crops and the quality of their soil.[38]

The platform can help minimise water and fertiliser use by optimising resource use, which would ultimately lessen agriculture's environmental impact. The Vedic principle of "krishi-parashara," which emphasises the significance of sustainable agricultural methods for the preservation of natural resources, is in line with the usage of AI in agriculture.

---

38. Sharma, P., & Dubey, H. (2020). Integrating Vedic Science and Engineering Principles in Artificial Intelligence Development for Sustainable Future. International Journal of Intelligent Systems and Applications, 12(4), 33-42.

6.2. Case Study 2: AI for Social Good

The application of AI for social good is the subject of the second case study, which also relates to the tenets of Vedic Science. An artificial intelligence (AI) model that can forecast the risk that patients may develop cardiovascular illness has been created by researchers at the Indian Institute of Technology (IIT) Delhi. The algorithm was trained using information from over 8,000 patients, and it makes predictions based on a number of variables like age, gender, blood pressure, and cholesterol levels. Doctors can deliver more individualised and efficient treatment, thereby increasing patient outcomes, by utilising AI to forecast disease. The Vedic idea of "swasthya," which emphasises the value of sustaining good health through prevention and early disease diagnosis, is in line with the application of AI in healthcare.[39]

6.3. Case Study 3: AI and Environmental Sustainability

The third case study focuses on the use of AI to the advancement of environmental sustainability. The Energy Web Foundation is one non-profit leveraging blockchain and AI to develop a decentralised energy market as an illustration of this. The platform can aid in lowering carbon emissions and promoting the switch to a sustainable energy system by combining blockchain to track energy production and consumption and AI to maximise the use of renewable energy sources. The Vedic philosophy of "prakriti," which emphasises the significance of respecting and protecting the natural environment, is in line with the application of AI in energy.[40]

7. Conclusion

Incorporating Vedic scientific ideas into the creation and use of AI can be extremely helpful in advancing moral and sustainable AI. AI systems can be created to prioritise the well-being of all stakeholders and reduce their detrimental effects on society and the environment by including concepts like ahimsa, satya, asteya, brahmacharya, and

---

39. Srinivasan, S., & Gupta, P. (2019). Development of a machine learning based risk prediction model for cardiovascular diseases in India. PloS one, 14(7), e0217559.
40. Kalra, A., & Singh, S. K. (2018). Blockchain-based decentralized energy trading for sustainable development. IEEE Access, 6, 6174-6184.

aparigraha. The sustainability of AI can also be improved by employing sustainable AI methods like energy-efficient algorithms and ethical data management. In order to address current issues with agricultural, social good, and environmental sustainability, Vedic concepts can be used to the creation of AI, as shown in the case studies mentioned in this article. These case examples highlight the potential of Vedic science and engineering to advance moral and ethical AI that benefits both people and the environment.

In conclusion, the use of Vedic scientific ideas in the creation of AI can help to create a future that is more just and sustainable. To guarantee that AI is used for the benefit of all, it is essential that we prioritise ethical and sustainable AI practises as we improve AI technology. This objective can be accomplished and a better future for future generations can be created by incorporating Vedic concepts into AI development.

8. Future Directions for Research

In order to support moral and long-lasting breakthroughs in AI, future directions for study in the incorporation of Vedic scientific ideas in AI development are essential. The creation of AI systems that are especially created to include Vedic ideals like ahimsa, satya, and asteya is a significant area of research. More research into the ethical implications of these concepts and how they might be applied to AI decision-making processes is required in order to achieve this. As well as creating new hardware and software solutions with a focus on minimising environmental effect, researchers can work on creating new algorithms and methods for optimising energy efficiency. The creation of AI systems that support environmental sustainability might be a different area of study. These devices could make a substantial contribution to building a more sustainable future by limiting energy use and lowering carbon emissions. In order to enhance sustainability, research might concentrate on creating new technologies and procedures that lessen the negative effects of data centres, consume less energy, and investigate alternate energy sources. Research may also concentrate on the application of Vedic concepts to the management of AI advancement. To secure the moral and ethical use of AI technologies, new regulatory frameworks and norms may need to be created.Including ideas like ahimsa, satya, and asteya into AI governance guidelines can be very beneficial in

ensuring that AI systems are conceived, created, and used ethically.

The potential advantages of integrating Vedic scientific ideas with other moral and sustainability frameworks, such as the Earth Charter or the United Nations Sustainable Development Goals, could also be explored in this field of study. This multidisciplinary approach to AI research can open up new avenues for advancing moral and ethical AI development while also advancing more general societal, environmental, and ethical objectives. Ultimately, more study in this area could spur innovation and change in the creation and application of AI technologies. By encouraging the adoption of AI technologies that are created, developed, and applied with Vedic ideals and sustainability in mind, it can help create a more ethical and sustainable world.

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (165-177) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

Relevance of Sixteen Hindu Samskār in Shaping Human Values

-Dr. Udham Singh*

-Mr. Narottam Kumar**

Abstract

Samskār is a collective sacraments and ritualistic Hindu tradition that considered as basic traits to be human. This paper explores the relevance of sixteen Hindu *samskār* in shaping human values. *Samskār* is a ritualistic performance that transforms a person into a well cultured person by correcting people's habits and attitudes. The basic principles of samskār teach the person about moral conduct and living style of life. There are sixteen samskār that begin before birth of a child (*punshvan*) and continue till the death (*antyeṣṭi*). The basic principles of *samskār* teach people about moral conduct and living style of life. These *samskār* play a crucial role in imparting ethical, moral, and spiritual values to individuals, thereby shaping their character and guiding their behaviour. Inculcation of samskār and its observance in daily life is found to be very useful in improving human values. The gold is said to be purified if it undergone a heat process. Similarly, a person who inculcate *samskār* in his life is said to be purified human being with rich human values. These samskār propagates throughout the generation, a child gets *samskār* at right time and meanwhile the child grows to a young man and thereafter old age. The old man teaches the samskār to his children, which he had received from his parents. Thus, these *samskār* are transmitted and preserved from generation to generation. this paper aims to highlight the significance of these practices in promoting virtuous living and fostering a harmonious society.

Keywords : Hindu *samskār*, Human values, Society

---

* Assistant Professor, Department of Yogic Science, Gurukula Kangri (Deemed-to-be University), Haridwar, Uttrakhand 249404, India.

** Research Scholar, Department of Yogic Science, Gurukula Kangri (Deemed-to-be University), Haridwar, Uttrakhand 249404, India.

Introduction

Hinduism, one of the world's oldest religions, encompasses a rich tapestry of beliefs, practices, and rituals. Central to the Hindu faith are the *samskār*, a collection of ceremonies and rituals that mark significant milestones in an individual's life journey. These *samskār* rituals, deeply rooted in the religious and cultural traditions of Hinduism, have played a vital role in shaping human values for centuries. They offer a framework for spiritual growth, moral development, and the nurturing of social bonds within the Hindu community. In the contemporary context, where the world is undergoing rapid social, technological, and cultural changes, it is pertinent to examine the relevance of Hindu *samskār* in enhancing human values. With an increasing emphasis on materialism, individualism, and moral relativism, there is a pressing need to explore how these ancient rituals continue to guide individuals towards a more ethical and meaningful life.

In Hinduism, the term *samskār* refers to the various rites, rituals, and sacraments performed at different stages of life. Derived from the Sanskrit word "*samskāra*", which translates to "impression" or "imprint," Samskār holds deep significance in shaping an individual's character, values, and spiritual development. The term *samskār* is the collective sacraments and a thread of rituals in Hindu tradition which play an important role for shaping human values. Generally, human values refer to those ethos and values which are considered as basic traits to be a human. Values are often subjective and relative. They vary from person to person, time to time and place to place.[1] *Samskārs* are ceremonies marking important events, such as the birth of a child, in the life of a Hindu. The saāskūt term samskār means 'Perfecting' and is believed to raise an individual to a higher spiritual plane. These rituals are performed with the intention of invoking divine blessings, seeking protection, and fostering personal growth.

The central purpose of research paper is to deepen the understanding of the relevance of Hindu *samskār* in shaping human values in contemporary world with objectives: (a) To analyse principles and teachings embedded within *samskār* rituals and their relevance in

1. Shanthini, B. 2018. "An Empirical Study on Human Values & A Study with Reference to Adolescents." *International Journal of Engineering Development and Research* 6 (4): 422-26.

shaping human values in the contemporary context. (b) To explore relevance of *samskār* rituals on the ethical and moral development of individuals. (c) To develop understanding of basic concept of Sixteen Hindu *samskār*.

Importance of Samskār

In Indian culture, rituals have a special place for the progress of human life, which have a close relationship with the society and make a human being worthy of an ideal life or a real human being. Changing the form of an object and giving it a new form is a ritual. There is a law of sixteen *samskārs* in human life. This means that sixteen times in life an attempt is made to update the human being and make it new. Just as a goldsmith refines impure gold by putting it in the fire, in the same way, as soon as a child is born, putting it in the furnace of rituals, removing its bad qualities and putting virtue in it, is called *sanskar* in Vedic ideology. *Samskārs* facilitate personality development by planning, refining, and purifying human life, making the body and soul of people eligible for providing joy by removing the worldly complications and problems. The *samskār* method is the basis of human innovation, through *samskār* a human gets the right to become Dvij. Maharṣi Manu beautifully explains in the following shloka-

वैदिकैः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।[2]

It means, the conception ceremony of a dvija should be performed through Vedic virtuous deeds, because *samskār* purifies people and their body and mind.The soul is immortal and eternal, this is called the subtle body. The subtle body does not die even when the physical body is destroyed. It carries the essence of the sacraments with it in birth after birth, just as a tree gets absorbed in the seed. The tree is an extension of the seed, in the same way, in the end, the karma gets reduced to the *samskār*. In this way, to overwhelm the bad effects and enhance purity, there is need of introducing *samskārs*. The inauspicious impressions of the child's previous birth disappear after getting a pure environment, just as mint or coriander plants wither after getting unfavourable conditions of rain and get blossomed again after getting favourable conditions of rain.[3]

2. Manusmriti, 2.26
3. Satyarth Prakash, Second chapter

Purpose of Samskār

Through *samskār*, the ancient sages incorporated a plan to install virtues in human life. There were various stages of human development according to age. Therefore, the combination of *samskārs* was also done according to the age. The beginning of the *samskār* began with the arrival of the baby from the mother's womb. That education also began with the conception of the child. It was in the womb of his mother that Abhimanyu learned the lesson of entering the *Chakravyuha* during pregnancy. during pregnancy, the parents' instincts, health and mental feelings, diet and recreation certainly affect the unborn child. The child appears on the ground as soon as he rejects his/her mother's healthy nature. It is the duty of parents to perform the samskāra ceremony for the child.

The person should constantly strive and makes plans for the development of his offspring (child) through *samskāra* rituals. According to Hindu tradition, samskāra rituals are performed as public forms. All dear friends and relatives are invited to attend the rituals. The people present extend their best wishes and express their blessings to the child. They also offer prayers to the Supreme Lord for the development of that child. The transformation of a child through *samskāra* is beautifully elaborated in the shloka given by *Maharshi* Manu.

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
संस्काराणां संख्या षोडशसंस्काराणां वर्णनञ्च।।[4]

In this śloka, *Maharṣi* Manu states that it is by *samskāra* rituals that a person becomes entitled to the status of a *brāhman*. By birth, however, the childisin Shudra category. There is total sixteen *samskārs* which is being outlined in next section of this article. Samskārs ritualare organized according to life and age. Those rituals began with the conception of the child and continued until death. The first rite is conception and the last is funeral. The number of rituals differs from text to text. In general, the sixteen rituals are mentioned in Hindu tradition. The Manu, *Yajñavalkya* and *Viṣṇu* Smritis describe only the sixteen rituals which are most authentic. *Maharṣi* Dayānanda described sixteen *samskārs* but the number varies in different scriptures.[5]

---

4. Manusmriti 2.26
5. Shastri, Acharya Vaidyanath. 2002. The Sanskar Vidhi (Procedure

Description of Sixteen Hindu Samskār

Traditionally there are sixteen *samskār* are emphasized in Hindu scriptures.[6] There are several other Indian aspects that intervene and shape the human values in individuals but the *ṣodaśasamskār*, particularly shapes the human values across the life span, right from childhood to old age. *Samskār* is the ritualistic performance which transforms a person into a perfect personality by eradicating existing negative habits, negative attitudes, and impure tendencies.[7]

The fundamental work of *samskār* is to inculcate human values in the person to shape pure mind-set, attitudes, and behaviours. Earlier it is said that the sixteen samskār are deeply rooted across the human life span and cultural texture of the society. A beautiful scripture entitled '*Shikshapatri*', written by lord *Shri Swamīnārāyan*, enumerate goal of *samskār* through *śloka*-

संस्काराश्चाहिन्कं श्राद्धं यथाकालं यथाधनम्।
स्वस्वगृह्यानुसारेण कर्तव्यं च द्विजन्मभिरु।।[8]

Itmeans that human being is confined with various types of *samskār* from childhood till death. These *samskār* introduce the perfection of personality, ethics, and human values in the person. He has also suggested that one must follow these *samskār* according to the wealth and opportunity. Our rishis have provided the knowledge about our duties. The basic principles of *samskār* teach the person about moral conduct and living style of life. These rituals begin at before birth of a child (*punsvan*) and continue till the death (funeral ritual). The samskār are performed at the various stages of life. The traditionally accepted group of *samskār* is *shodashasamskār* and they are outlined below.

- *Garbhdhān samskār* : This is a prenatal ceremony performed at the time of conception. The main purpose of household life is to

---

of Sacraments of Swami Dayananda Saraswati). New Delhi, India: Sarvadehik Arya Pratinidhi Sabha.

6. Mishra, Devendra Nath. 2016. *Kaumarbhritya*. 3rd ed. Daryaganj, New Delhi: Chaukhamba Sanskrit Pratishthan.
7. Singh, Karam, and Bhavna Verma. 2012. "An Approach to Samskara in Ayurveda." *International Journal of Ayurvedic Medicine* 3 (3): 140-51. https://doi.org/10.47552/ijam.v3i3.142.
8. Satyaprasad, Swami, and Maharaj (2010). Sixteen Samskaras (Shikshapatri). Bhuj, Gujrat: Shree Swami Narayan Mandir.

produce good children for the country and religion. Parents desiring to have good children should perform this ritual with purity of body and mind.[9]

- *Punsvan samskār* : This is performed in the first trimester (second or third month) of pregnancy to get a good child. This ritual is very useful from the point of view of the mental development of the unborn child. For having healthy and good children, this samskār is very necessary.[10]
- *Simantonnayan samskār* : This is generally performed somewhere in third trimester (fifth or seventh month) of pregnancy.[11] The meaning of *simantonnayan* is to be blessed with good fortune. The main purpose of this ritual is to protect the unborn child and its mother. Keeping the mind of the woman happy, this ritual is generally done for the physical and especially for the mental and intellectual development of the unborn child.
- *Jatkarma samskār* : It is performed at the time of birth of a child to welcome the embryo into the external world. This rite also gives blessings of intelligence and health for the child. This is specially associated with cutting of child's navel string. The father gives blessings to his child. This *samskār* is done specially to feed child with mixture of ghee and honey by scarifying the *mantra*. Hereafter, the father performs the *yajna*.[12-13]

---

9. Satyaprasad, Swami, and Maharaj. 2010. *Sixteen Samskaras*. Bhuj, Gujrat: Shree Swami Narayan Mandir.
10. Soni, Gaurav, and Neelam. 2017. "An Analytical Study of Bal-Samskara W . S . R to Physio-Anatomical Changes for International Journal of Health Sciences and Research An Analytical Study of Bal-Samskara W . S . R to Physio-Anatomical Changes for Assessment of Developmental Milestones." *International Journal of Health Sciences & Research* 5 (8): 563-71.
11. Singh, Manoj. 2020. *Vaidik Sanatan Hindutva*. 2nd ed. Prabhat Prakashan.
12. Ghai, Purnima. 2020a. "Scientific Explanation of Jaatakarma (Birth Ceremonies) and Swarnaprashan Samskar." 2020. https:// thepureknowledge. blogspot.com/2020/09/scientific-explanation-of-jaatakarma.html.
13. Manusmriti 2.4

- *Namkaraṇ samskār* : This is famous *samskār* wherein names are given carefully to newborn child according to distinct factors. The *namkaran* ritual is usually performed on 10th or 12th day after birth of a child. But sage *yajnvalakya* recommends performing this *samskār* on 11th day of birth. This rite is done by the elder member of the family or the father. There is specified name to be uttered by concerned person into the child's ears.[14-15]
- *Nishkramaṇ samskār* : The prime aim of this ritual is that a child may gain maturity from this creation of the universe. The literal meaning of *nishkraman* is 'To come out' which means the child is taken out of the house and he is made to travel in pure air so that the child becomes healthy.It is usually done in 4th month after the childbirth.[16-17]
- *Annaprāshana* is being performed somewhere in the sixth month. The child consumes food which nourishes him/her both physically and mentally.[18-19]
- *Karṇavedhana Samskār* : It is by making a hole at the bottom of the child's ear. According to Āyurvedic science, due to this *karma* the specific *nadis* gets holed and the individual is prevented from the Hernia ailment. The ear has direct association with reproductive organs of the person. Therefore, by making hole in the ear, the child is prevented from reproductive problems. It is advised to perform this *Karṇavedhana samskār* before the

---

14. Kumar, Shobhit,V Y D S A M Of Kaumarbhritya, Uttar Khurja, and India Pradesh. 2017. "A Critical Appraisal on Various Samskara's with Their Scientific and Medical Importance in Pediatric Age Group." *International Journal of Ayurveda and Pharma Research* 5 (5): 78. http://ijapr.in.
15. Manusmriti 2.5-8
16. Ghai, Purnima. 2020b. "Scientific Explanation of Nishkraman Samskar (Outing Ceremony Of Baby for First Time)." 2020. https://thepureknowledge.blogspot.com/2020/08/nishkraman-samskar-outing-ceremony-of.html.
17. Manusmriti 2.9
18. Tewari, PV. 2018. *Kasyapa Samhita or Vrddhajivakiya Tantra*. 2nd, Repri ed. Varanasi: Chaukhambha visvabharati.
19. Manusmriti 2.9

yajnopavit ritual.[20]

- *Chūdakarma samskār* : It is also referred as *mundan samskār* wherein dirty hair of the baby is cleaned with the help of a razor. Shaving helps in the emergence of new beautiful, healthy hair. The main purpose of this ritual is to spread purity in the child. Somewhere in *manusmriti* it is instructed to perform this ritual in 1st or 3rd year. The specific activity is hair cutting, a *shikha* is kept and remaining hairs are cut. It is done either on the bank of river *ganga* or in gaushala.[21-22]
- *Vidyārambha samskār* : This is basically performed in the view of beginning of learning. This helps children excel in studies and perform well in all education level. This *samskār* should be introduced with priority of education. Child starts his education with the initial alphabets and few svara.[23]
- *Upanayan samskār* : It is also famous ritual which symbolizes spiritual rebirth help move the person into celibacy stage. It is also known as *yajnopav* it or *Janeu samskār* and considered to be very sacred which means having attained sacred threads, the longevity, power, and divine light of the body increases. This *samskār* is used perform at 8th year of child age during his/her education.[24-25]
- *Vedārambha samskār* : It means beginning of *veda* learning. The stage where child starts learning *Veda* under the guidance of the master. In this stage the students are exposed to sacred fire and instruct them to takes a vow to serve his master. A *sankalpa* is taken at the time of performing this ritual.[26] Soon after this father

20. Singh, Manoj. 2020. *Vaidik* Sanatan Hindutva. 2nd ed. Prabhat Prakashan.
21. Satyaprasad, Swami, and Maharaj. 2010. *Sixteen* Samskaras. Bhuj, Gujrat: Shree Swami Narayan Mandir.
22. Manusmriti 2.35
23. Satyaprasad, Swami, and Maharaj. 2010. *Sixteen Samskaras*. Bhuj, Gujrat: Shree Swami Narayan Mandir.
24. Satyaprasad, Swami, and Maharaj. 2010. *Sixteen Samskaras*. Bhuj, Gujrat: Shree Swami Narayan Mandir.
25. Manusmriti 2.11
26. Swami Satyaprasad Dasji, Sixteen Samskaras, Chapter 12: Vedarambh Samskara, P.32-33

offers charity to *brāhmins*. Students are supposed to pass the different tests (e.g., discipline, austerity, restraint) to study the veda.[27-28]

- *Keśānta samskār* : In this *samskār*, student donate a cow to his master on the completion of education. This is also called *godansamskār* and performed on the age of sixteen years.[29-30]
- *Samāvartan samskār* : It is being conducted when the students graduate from the university. It is the marker of end of education time and beginning of new duty. At the post-education student do charity to his masters and offer charity to his masters for obtaining blessings.[31-32]
- *Vivāh* (Marriage time) *samskār* : It is the most important one performed with different rituals in different various communities and castes. With reference to the Hindu scriptures there are 8-such type of *Vivah* which are *brahmi, daiva, arsha, prajapatya, asura,gandharva, raksha* and *pishacha*.[33-34]
- *Antyeṣṭi* (Funeral time) *samskār* : This is also termed as *antimsamskā*r, sometimes *mrityusamskār* or *agnisamskār*. There are two ultimate and opposite truth of human life, one is taking birth and other is death. Human beings are under clutches or bound by this cycle of birth and death. Those who abolished these two opposite fences, they have attained liberation. *Antyeñti* ritual is done to the death body with scarifying fire. It is performed to pacify the unfulfilled desires of the deceased person and to provide chance to his soul for liberation. This *samskār* is duty of

27. Khemka, Radheshyam, and Shiv Swaroop Yagik. 2020. *Samskar Prakash*. Gita Press Gorakhpur.
28. Manusmriti 2.44
29. Satyaprasad, Swami, and Maharaj. 2010. *Sixteen Samskaras*. Bhuj, Gujrat: Shree Swami Narayan Mandir.
30. Manusmriti 2.40
31. Khemka, Radheshyam, and Shiv Swaroop Yagik. 2020. *Samskar Prakash*. Gita Press Gorakhpur.
32. Manusmriti 3.1-3
33. Singh, Karam, and Bhavna Verma. 2012. "An Approach to Samskara in Ayurveda." *International Journal of Ayurvedic Medicine* 3 (3): 140-51. https://doi.org/10.47552/ijam.v3i3.142.
34. Manusmriti 3.4

persons towards their relative (death person). On the death of a person, his relatives, family members start crying over his death of beloved one but there is no such matter of crying because ultimately this going to creates misery and departed soul also do not get liberation. After scarifying fire to the death person, the *asthi-pushpa* are taken and being offered in the any kind of holy river (e.g., *ganga, yamuna, sarasvati, gandak* etc). Hereafter, the person who gave fire to death person, takes bath.

Samskār and Human Values

These *samskār* have its root in the ancient Indian culture. Value is a collective term for transmitted behaviour patterns of a group of individuals. Value system has a great influence on individual attitude, moral, character, and behavioural framework that plays an important role in education. Value is a series of certain deeds and the traditional belief that is being practiced in a particular society. The value has been practiced at different levels such as organizational level (public-private), research value, social-moral value, personal value. Value at an educational level is one of them wherein the education is being provided to students for shaping their character, good attitude, constructive behaviour, and good moral constructs.

Value is a symbolic, progressive process and organized a system of common thoughts and beliefs of a group or an individual. Value is strongly associated with education and cannot be separated from each other. The cultural patterns of a place, nation, and society act as a guiding principle to education and educational organization. Example, if an educational organization has a spiritual pattern of culture, then its educational procedures would emphasize the practice of moral and eternal values that plays an important role in achieving the goal/mission of the institution. Generally, values and ethos which is being practiced in university/college are known as educational culture. In today's world, the values, ethos, and cultures are not being maintained-adopted properly by students. The reason is the value-based education is not being provided to the students of today leading to lack of constructive thoughts in them. As a result, the goal and mission of a society, nation, and educational organization are not fulfilled. It is a proper value system wherein education germinates and has a nourishing influence on students.

Imparting teaching of *samskār* in schools, colleges, universities could be a precious step to develop sense of morality, to enhance good character, attitude, practices, and behaviour in students. Students imbibed with cultural values happened to be an ideal of future stakeholders. They infuse higher ideals and moral values in society. The teaching of values influences the discipline that is an important part of education. Thus, values and education are interdependent and complementary to each other. In today's world, there is applicability and need that human values should be inculcated in the students. Mind expanses due to inculcation of certain human values patterns than students become better human beings. In conclusion, there is a strong association and connection of culture to education in today's world.

Currently, human values are decreasing with great speed across the people. Why the human values, ethos, and morality are vanishing, why it absents in people? This becomes imperative question for societies to think about this issue. If we look upon the current situation, then we would find that there is lack of *samskār* education to different category of people (e.g., students, households, and father-mother). Since the foreign invaders entered our country then Indian culture and *sanskriti* started vanishing. Due to foreign invaders, many *samskār* (out of 16) were not being practiced or employed in/by society which probably continued to this era. Therefore, there is need to organize a social event wherein several people would participate and inculcate the knowledge of 16-*samskār*.

Contemporary relevance of Hindu Samskār in enhancing human values

Despite the modern challenges and changing societal dynamics, these rituals continue to play a crucial role in fostering human values and guiding individuals towards a more ethical and meaningful life. Here are some aspects highlighting the contemporary relevance of Hindu *samskār* in enhancing human values:

- **Nurturing Spirituality in a Materialistic World :** In an increasingly materialistic and fast-paced world, Hindu *samskār* rituals provide individuals with opportunities for spiritual nourishment and inner reflection. The spiritual nourishment fosters values such as humility, gratitude, contentment, and the recognition of the transcendent aspects of existence.
- **Reinforcing Moral and Ethical Principles :** In a time when

moral relativism and ethical dilemmas are prevalent, *samskār* rituals serve as reminders of the timeless moral and ethical principles embedded in Hindu teachings. These rituals emphasize values such as honesty, integrity, compassion, respect for all beings, and the importance of righteous conduct.

- **Promoting Family Values and Social Cohesion :** *Samskār* rituals have a strong family-oriented focus, promoting the values of love, respect, and unity within the family unit. In an era marked by changing family structures and individualistic tendencies, these rituals reinforce the significance of family bonds, inter-generational relationships, and the mutual support and care within families.
- **Cultivating Mindfulness and Self-Awareness :** Many *samskār* involve elements of mindfulness, self-reflection, and self-awareness. Through practices such as meditation, chanting, and ritual observances, individuals are encouraged to develop a deeper understanding of their thoughts, emotions, and actions. This heightened self-awareness leads to the cultivation of values such as self-discipline, emotional intelligence, self-control, and the ability to respond to situations with clarity and equanimity.
- **Environmental Consciousness and Sustainability :** Several *samskār* rituals have deep-rooted connections with nature and the environment. These rituals emphasize the sacredness of the natural world and promote a sense of reverence and responsibility towards the environment. In a time of pressing environmental challenges, the values of ecological harmony, conservation, and sustainable living embedded in *samskār* rituals hold contemporary relevance and encourage individuals to adopt more environmentally conscious lifestyles.
- **Integration of Modern Contexts and Reinterpretation :** While *samskār* rituals have ancient origins, they possess the flexibility to adapt to the changing needs and contexts of contemporary society. There is room for reinterpretation and contextualization of these rituals to address contemporary issues and challenges. By integrating modern elements and engaging with relevant themes, *samskār* rituals can address topics such as gender equality, social justice, mental health, and inclusivity, thus

contributing to the development of progressive human values.

Conclusion

The *samskār* would play an important role in shaping human values. Inculcation of *samskār* and its observance in daily life is found to be very useful in improving human values. The gold is said to be purified if it undergone a heat process. Similarly, a person who inculcate *samskār* in his life is said to be purified human being with rich human values. These *samskār* propagates throughout the generation, a child gets *samskār* at right time and meanwhile the child grows to a young man and thereafter old age. The old man teaches the *samskār* to his children, which he had received from his parents. Thus, these *samskār* are transmitted and preserved from generation to generation. Presently, this chain or series is not existing, no old man is found to be teaching *samskār* to his family members. Therefore, the knowledge and information of *samskār* getting vanished from society which is lead to lack of human values.

✦✦✦

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol. 12, No. 22 (178-184) January-June 2024 ISSN 2277-4351
UGC CARE listed (Arts & Humanities) RNI : UTTMUL 2012/53882

Evidence of Sāmaveda found from Excavation at Tarighat, Chhattisgarh

-Dr. Atula Kumar Pradhan

Abstract:

The excavation at Tarighat in Chhattisgarh revealed handsome number of seals, sealings and coins of early historical period. This is an important early historical site in Central India. This region was known as *'Daskhina Kosala'*. Its description also found in the various texts like *Ramayan* and *Mahabharata*. From the excavation numbers of seals and sealings are retrieved. One stone seal is retrieved from this site which is special mentioned. There are four letter are engraved. There are three readings are coming out from epigraphist like Sāmaveda or somabed . This perhaps is one of the earliest evidences which mention Samaveda. Besides these other seals, sealings and stone inscriptions are also coming out from the archaeological operations.

Keywords : Excavation, seals, sealings, Sāmaveda .

Tarighat (Lat:21 05'N, Long:81 40'E), Patan tehsil, district Durg, Chhattisgarh is an important early historical site in Central India. Among the river bank townships, Tarighat holds an important position in Indian archaeology. Its location in the ancient South Kosala territory has been strategically significant politically as well as economically. This site falls in the ancient trade route connecting north to south. This site is roughly 30 k.m from Raipur,the state capital of Chhattisgarh. The site is located on the left bank of Kharun, a tributary of Seonath River.

This region was known as '*Daskhina Kosala*'. Its descriptin also found in the various texts like *Ramayan* and *Mahabharata*. No early inscription signed the name of South Kosala. The earliest reference of name *Kosala* is found in a terracotta seal of 2nd C.A.D from Mallhar

* Assistant Professor & Head, School of History, Gangadhar Meher University, Sambalpur, Odisha.

excavation, district Bilaspur. The inscription read as *Gamasa Kosaliya* (Bajpai & Pandey 1978). Then the word Kosala also traced out from the *Prayag Prasasti* of Samundragupta (Sircar 1986:262-268). The state has got a rich cultural heritage which starts from the prehistoric period. So far as early historical site is concerned, Malhar takes the main attention due to its chronology. The excavation at Malhar gives a true chronology to the history of Chhattisgarh or South Kosala (Bajpai & Pandey 1978, Mitra 2010: 214-221). The exact site is discovered by the first author during the accidental visit to this area (Bhagat 2009: 236-238, 2010:149-152, 2011:351-358). Archaeological Survey of India has granted the license for excavation at Tarighat for the field session 2012-13.

Site :

Tarighat is approachable from Raipur via Bharenga at a distance of about 30 k.m. There are four mounds are of various sizes are existed. There is a *moat* (water channel) is flowing on the western part of the site. This ancient settlement extends in an area of about 5 acres along the river in the form of a series of four mounds of different sizes and heights. This site is locally known as '*Killa*'(fort). According to local tradition it was the fort of Jagatpal (*Jagatpal ki Killa*). For the purpose of excavation the whole of the fortified area has divided into plots designed as TGT-I, TGT-II, TGT-III and TGT-IV. The mound no.1 (TGT-I) is locally known as 'Ravan Bhata'. The operation started at this mound. Each plot was usually a distinct mound separated from each other by long depressions, probably representing ancient streets or separate fortifications. Among these four mounds, it is TGT-I have highest point of contour which gives sign that the area had been in occupation till the last days of the city. The mound was divided into horizontal grids each trench measured 10mX10m(Plate.1).Though in this field session we did not reach the natural soil by cutting through successive stratas due to the quick arrival of monsoon.

Chronology :

The Directorate of Culture and Archaeology, Government of Chhattisgarh conducted the excavation. The excavation unearthed successive strata of residential houses, streets and drains. The present continuing excavation revealed following cultural sequences:

Period I : Pre- Kuṣāṇ

Period II : Kuṣāṇ

Period III : Śātavāhan & Post-Satavahan

Period IV : Gupta and Post-Gupta (Sarabhapuriya and Somavamsi)

Period V : Kalchuri

The excavation at Tarighat has produced a unique mass of datable antiquities. The coins of Kushana, Satavahan, Sarabhapurias and Kalchuri have been helpful in building up the chronology of the particular site.

The earliest strata (Period I) reprint Pre-Kushan in nature. There are about 12 layers are exposed which represent five cultural periods, of these cultural periods, the earliest level of occupation was not represented by any structural remains but by one pit cut into depth of the soil. Due to heavy water logged further excavation is not carried out. Some copper fragments are traced out from this level.

In the succeeding period (Period-III), the site saw an enlarge settlement. Large number of Kushan coins and a coin hoard are traced out from the site. There is continuity in the ceramic industry also but a sharp decrease in number of dominated in this phase.All round development shows the developed urbanization in this period. Large numbers of iron and copper implements, various sizes of beads of terracotta and semi precious stones, copper coins, seals, sealing, terracotta art suggest that during this period, it was the most prosperous phase of Tarighat. This cultural phase is attested by the finding of Kushan coins (Plate.2), seals, and terracotta figurines and plaques. Large numbers of copper coins are retrieved from the excavation. One trench YA1, Qd.III, yielded a Kushan copper coin hoard in the depth of about 2mt .

One stone seal is retrieved from this cultural level (Plate.3). There are four letter are engraved (Bhagat et.al. 2013:190). There are three readings are coming out from epigraphist like Samaveda or somabed . Besides this, six circular dots are also engraved on the right below of the seal. This script is ascribed to 2nd C.A.D. This perhaps is one of the earliest evidences which mention Sāmaveda. One terracotta pendant engraved the brahmi letter ***Ma*** also retrieved from this level. Number of stone pendant with hole on the top are also found. One big pit filled with potteries is traced out from one trench.

The third period is attested with the evidence of Satavahan & post-Satavhana coins, seal,sealing and terracottas. So far as Tarighat is concerned, huge amount of Satavahan copper coins are retrieved from sections of the mounds. In Chhattisgarh Satavahan coins and the remains traces are traced out from Balpur and Mallhar (Sarma 1980:38, Mitra 2010: 214-221). But the excavation at Tarighat focuses a fresh light on the Satavhan settlement in South kosal region.Large number of copper coins are traced out from this cultural level and various *raingallis* of the site (Plate.4). All the figures from Tarighat are finely baked and some of them have a red slipped applied to them. The Satavahana types of figurines are obtained in the early historical level of several sites. The Satavahana terracottas have holes in places which were apparently intended for letting out the hot expanded air resulting from baking. Large numbers of terracotta beads and semi precious stone beads, skin rubbers, terracotta impressing net design, stoppers, reel, single and double perorated discs are retrieved. Copper objects like copper rings, antimony rod, finger rings etc. Iron objects like sickle, axe, knife and arrow heads.

From this cultural level seals of various materials are recovered which is very important for fix the chronology of the site. One stone seal which was found before the excavation. It has only two letters with symbols of moon (*Chandra*) and sun (*Surya*) engraved above them. It is engraved in early Brahmi characters of 3rd C.A.D. and read as VADHA (Plate.5).

The occupation came to an end because of heavy fire, traces of which are available throughout the site. It testifies thick burnt clay around the mound in this level. This evidence clearly visible in the exposed cutting impression of the river Kharun. This burnt patches contained charred bones, burnt clay and brickbats etc.

The period IV is assigned to Sarabhapuriya dynasty which is very contemporary to Gupta period. This period is succeeded to Satavhan period in a stratified deposit. This dynasty is known from the copper-plate grants, which were issued from Sarabhapura (not properly identified) and Sripura (modern Sirpur). All these grants are written in Sanskrit using box-headed variety of the Central Indian alphabet. The name of the dynasty is taken as Sarabhapuriyas because their earliest grants were issued from Sarabhapura.

The excavation yielded three gold coins of this dynasty. These types of coins are also known as repousse coin. Among these gold coins, one gold coin of Mahendradiya and other two are of Prasannmatra. So far as the coins of Sarabhapurias are concerned, very few gold coins of Mahendraditya are found. Here from the excavation the gold coin of Mahndraditya is traced out in the depth of 40 c.m. The obverse part of this coin is subdivided into two; upper part contains the symbols like *Garuda, Sankh* (conch), *Chakra* (wheel) and *Chandra* (crescent). The lower part portion contains the *Sri Mahndradiya* in the box headed variety of brahmi script. On the extreme bottom a *kalash* (pot) is placed.

Two gold coins of Prasannmatra also retrieved from the same level of this cultural phase. One gold coin contains the name *Sriprasannmatra* with the above described symbols of Mahendradiya gold coin. Second gold coin of Prasannamatra slightly varies in the context of symbols of *Chakra* and *Sankh*. The variety of symbols may indicate that this coin issued from other mints. The representation of the symbols authenticated the clues that the kings of this dynasty are the followers of Vishnu by faith.Besides these, one stone and ivory seal also retrieved from the excavation (Plate.6). The stone seal is engraved in box headed early Brahmi character of 4th -5th C.A.D. and read as *Śrī Pradhā* [*n*] or *Śrī Prāsāda*. One terracotta sealing is also retrieved from this cultural level. The sealing has some three lines engraved in the characters of 3rd - 4th C.A.D. and it reads as "*Brahmacharisa*[*nya*]" (Plate.7). Another bottom seal has three letters engraved in characters of about 3rd - 4th C.A.D. In big size and ornamental is engraved *Śrī*, above it to the left is the letter sa and to its right is some two letters or numeral engraved. The seal reads as "*Asadi*". There is a crescent like ornament shown below the letter A.

Conclusion

The findings of Satavan, post-Śātavāhana and Kuṣāṇ coins, early historic potteries, terracotta's, structural feathers and other material culture of Tarighat shows its date to early. The recovered stone seals depicted various clearly shows that this site might be an important trade and urban centre in the South Kosala. For the first time the seal of Samaveda is detected from the site which solved many quarries in archaeological perspectives. Excavation at Tarighat yielded almost an uninterrupted sequence of early cultures of Kharun river right from Pre-Kuṣāṇ to late medieval period.

Bibliography

- Bajpai, K.D. & S.K. Pandey. 1978. *Malhar* 1975-78, Sagar.
- Sircar, D.C. 1986. Select *Inscriptions*, Vol.I. Delhi.
- Mitra, S.K.2010. Recent Archaeological Investigation at Malhar. *Puratattva*. No.40. Delhi.
- Bhagat, J.R. 2009. Recent Exploration at Tarighat, Patan, Durg, Chhattisgarh. *Kosala*. No.2. Raipur.
- --, 2010. New Light on Exploration at Tarighat. *Proceedings of the National Seminar on Archaeology of Chhattisgarh & Latest Excavation at* Pachrahi. Raipur
- --, 2011. Forgotten Heritage of Kharun Valley. *Kosala*. No.3. Raipur.
- Bhagat, J.R, A.K. Pradhan & D.Goswami. 2013. *Puratattva*, Delhi.

Plates

Plate.1.General view of the Excavated site Plate.

2. Kuṣāṇ Coins

Plate.3. Stone Seal inscribed as Samaveda Plate.

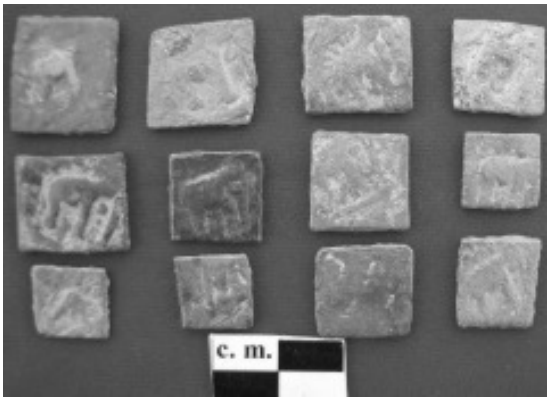

4. Satavhan Copper coins

Plate.5. Stone seal Plate.

6. Stone seal

Plate.7. Terracotta sealing

Vaidika Vāg Jyotiḥ is a half yearly Refereed & Peer-Reviewed International Vedic Journal of Gurukul Kangri (Deemed to be University), Haridwar. Manuscripts should be submitted to the Editor both in Electronic Form and in Hard Copy (Walkman 901 or 905, typed on A4 size paper). Research papers of late eminent vedic scholars recommended by reviewers can also be consider for publication.

Copyright © Gurukul Kangri Deemed to be University, Haridwar.

The Advice and information in this Journal are believed to be true and accurate but the person associated with the production of the journal can not accept any legal responsibility for any errors or omissions that may be made. All disputes are subject to jurisdiction of the District Court Haridwar, Uttarakhand only -***Editor in Chief***

Contact for :-

Submission of Manuscript

Chief Editor 'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

Gurukula Kangri (Deemed to be University)

Haridwar - 249 404 Uttarakhand, INDIA

Email - dineshcshastri@gmail.com

Tel : +91-9410192541

http:/www.gkv.ac.in

For further information Mail to :

Prof. Dinesh Chandra Shastri

Chief Editor (dineshcshastri@gmail.com)

Note : *For subscription and related enquiries feel free to contact Business Manager & editor*

ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882
(UGC CARE listed half yearly journal)
January-June 2024

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Refereed/Peer-Reviewed Research Journal on Vedic Studies

Aims & Objectives

1. *To rectify and clarify the illusionary thoughts expressed by critics on Vedas, by referring to the existing logical proof and arguments, in Shastras.*
2. *To extract the knowledge-scientific or otherwise, hidden in Vedas.*
3. *To publish the original Vedic findings.*
4. *To prepare special edition on Vedic doctrine, containing detailed arguments for notified Vedic research outcomes.*
5. *To accelerate from Brahma to Jaimini School of Vedic thoughts for removing the illusions prevailing about Vedas.*
6. *To publish critical edition of work carried out on Vedas by citing the facts that originally existed in Vedic books, rarely available.*

उद्देश्य

1. विद्वानों द्वारा किये गये और सम्प्रति किये जा रहे वेद से सम्बन्धित भ्रमपूर्ण विचारों की शास्त्रीय प्रमाणों एवं तर्क तथा युक्ति के आधार पर समालोचना तथा तत्सम्बन्धी समाधान करना।
2. वेदों में निहित ज्ञान–विज्ञान के विविध पक्षों को उद्घाटित करना।
3. वेद तथा वैदिक साहित्य से सम्बन्धित मौलिक अनुसंधानात्मक लेखों का प्रकाशन करना।
4. वैदिक सिद्धान्तों पर विस्तृत विवेचनात्मक विशेषांक तैयार करना। जिनमें पूर्व लिखित एवं प्रकाशित तत्सम्बन्धी लेखों/ग्रन्थों का भी उपयोग किया जायेगा।
5. ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की वैदिक विचारधारा को वेद विषयक भ्रान्तियों को दूर करने के लिए गति देना।
6. वेदविषयक ग्रन्थों की समीक्षा एवं अप्रकाशित अनुपलब्ध वैदिक ग्रन्थों के मूलपाठ का प्रकाशन करना।